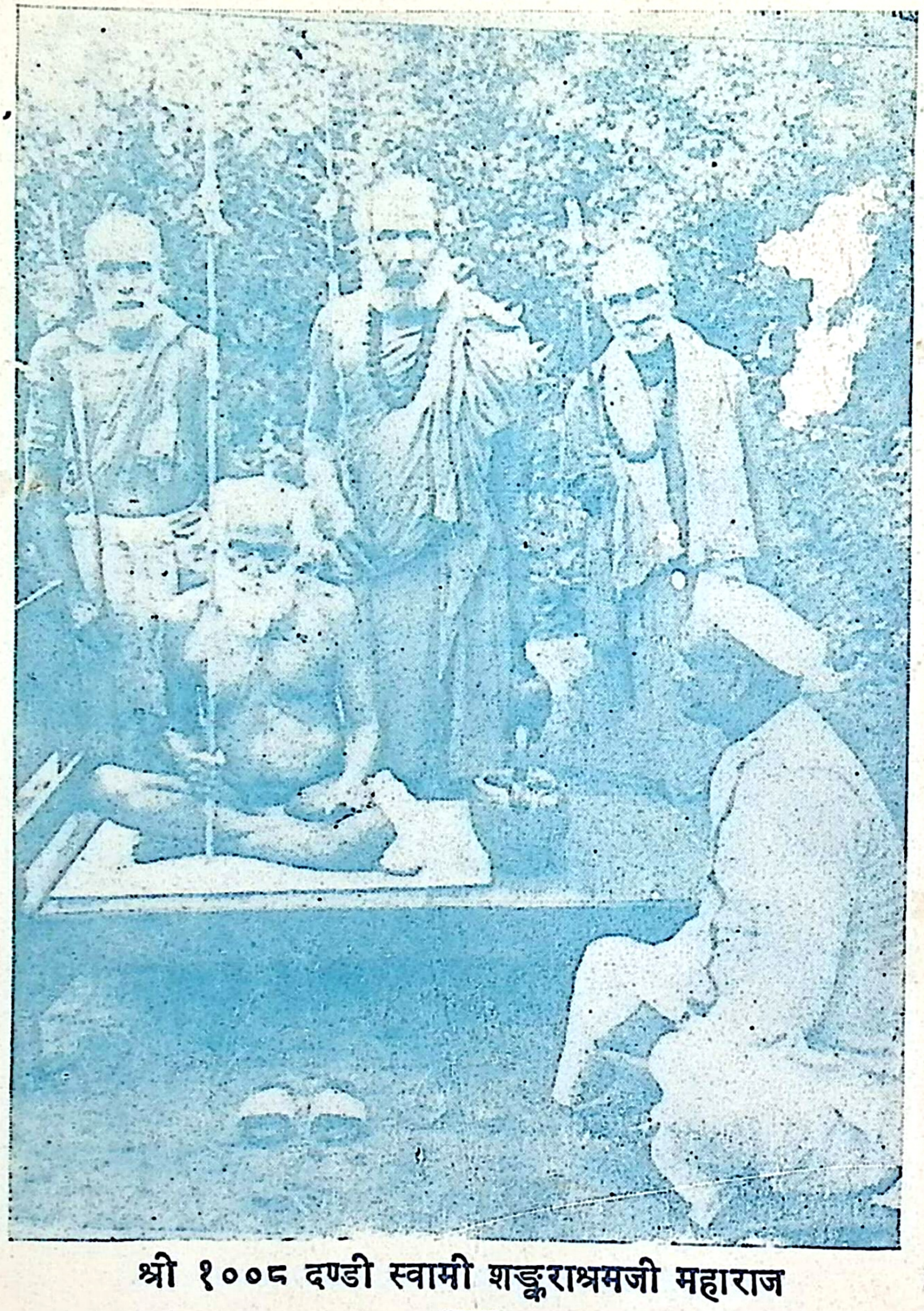

श्री १००८ दण्डी स्वामी शङ्कराश्रमजी महाराज
तथा

श्रीगुरुमण्डलार्चन-पद्धतिः

श्रीमद्गुरुमण्डलार्चन-कर्म-पद्धतिः ॥

[साङ्गोपाङ्ग–कर्मकाण्ड-सहिता]

[पञ्चनदस्थ 'लुधियाना' नगरस्थितानन्तश्रीविभूषितश्रीमत्शंकराश्रम-
स्वाम्यादेशाद् व्यासपूजनपर्वे सम्यक्परिपालनीया निगमागमसिद्धा
श्रीमद्गुरुमण्डलार्चनकर्मपद्धतिः लोकोपकाराय **श्रीमत्पण्डित-**
संडोपाह्वश्रीओंकारदत्त शर्मणा ज्ञानचन्दमहाभागेन च
स्वद्रव्येन सुप्रकाशिता ।]

—सम्पादक—

औत-स्मार्त्त-कर्मकांडके सुप्रसिद्ध विद्वान्, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयके
प्राच्य-विद्या-विभागमें वेद, वैदिक कर्मकाण्ड तथा पौरोहित्यके
आचार्य पंडित भीमसेन वेदपाठीजीके आत्मज **आचार्य**
पंडित सीताराम चतुर्वेदी, एम्० ए० (संस्कृत,
प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति,
हिन्दी,पालि),बी.टी., एल् एल्०बी०
साहित्याचार्य,अध्यक्ष,वेद-वेदाङ्ग-
सङ्गीत-सङ्गम,वेदपाठी-भवन
मुज़फ़्फ़रनगर ।

—:o:—

संवत् २०४१ वि० : सन् १९८४ ई०

प्रकाशक :
सिद्धपीठ, सिविल लाइन्स,
लुधियाना (पंजाब)।
पिन : १४१ ००१

◆

प्रेरक :
श्रीपंडित ओंकारदत्त संड तथा श्रीज्ञानचन्द आहूजा,
सिद्धपीठ, सिविल लाइन्स,
लुधियाना।

◆

द्वितीय संकरण :
संवत् २०४१ सन् १९८४ ई०

◆

मूल्य :
गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा

◆

प्राप्तिस्थान :
वेदपाठी-भवन,
मुज़फ्फ़रनगर
पिन : २५१ ००२

तथा

सिद्धपीठ,
सिविल लाइन्स
लुधियाना (पंजाब)

◆

मुद्रक :
युगान्तर प्रेस,
मुज़फ्फ़रनगर,
पिन : २५१ ००१

॥ श्रीः ॥

॥ वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम्
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम्
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ।

[श्रीनाथ आदि (व्रह्मा, विष्णु, महेश), गणेश, तीनों पीठों, भैरव, आठों सिद्धों, तीनों बटुकों, दोनों पादुकाओं, दसों दूतियों, तीनों मण्डलों, सोलहों वीरों, चौंसठों नाथों, नवों मुद्राओं, पाँचों वीरावलियों, मालिनिमन्त्रराज और चारों गुरुओंके मण्डलकी वन्दना करता हूँ ।]

(इसकी व्याख्या भूमिका पृष्ठ ८४-८५ पर देखिए)

◆

भूमिकाकी विषय-सूची।

१. निवेदन (संपादकीय) प्रथम तथा द्वितीय संस्करण १

२. श्री १००८ स्वामी श्रीशङ्कराश्रमजी महाराज ३

दण्डी स्वामीजी : श्रीस्वामीजी महाराजके पूर्वाश्रमकी कथा : सरयूपारीण ब्राह्मण : श्रीपट्टीमें वास : पंडित रामस्वरूप पांडेय : गृहत्याग : बहनका हृदय और परिवारवालोंकी ममता : हरिद्वारके लिये प्रस्थान : संन्यास-ग्रहण : स्वामीजी पंजाबमें : लुधियानेमें वास : ढंढोंके बागमें : परमहंस और अवधूत अवस्थामें : दशनामी साधु : संन्यासकी अवस्थाएं : गुरु-पूजन : श्रीमहाराजकी नित्यचर्या : श्रीपट्टीमें समाचार : श्रीभद्रकालीजीका मन्दिर : दंडीवाड़ा।

३. मठाम्नाय १७

मठाम्नायका इतिहास : शारदा मठ : गोवर्द्धन मठ : ज्योतिर्मठ : शृङ्गेरी मठ : महानुशासनम्।

४. नित्यकर्म-विधि और देवपूजनकी पद्धति २५

ब्राह्म मुहूर्त्तमें जागना : सूर्यका दर्शन : नित्य-कर्म : शिष्टाचार : मौन आचरण : विशेषाचार : क्षौर : तैल-मर्दन : दन्तधावन : स्नान : वस्त्रका विधान : आसन : शिखा-बन्धन : तिलक, चन्दन और भस्म : कुशाका प्रयोग : यज्ञोपवीत : माला :

जपका विधान : गायत्री-मन्त्रका महत्त्व : आचमन : सन्ध्या-वन्दन : प्राणायाम : पञ्च महायज्ञ : तर्पण : भोजन : । सायङ्काल विधि : दीपक : शयन-विधि : स्वप्न-दर्शन : सुस्वप्न : स्वप्न-विचार : दुःस्वप्न-व्याख्या : अङ्ग फड़कनेका फल : यात्रा-मङ्गल : शुभ शकुन : अपशकुन ।

५. मूर्त्तियोंकी पूजा ५१

निषिद्ध वस्तु : फूल चढ़ानेका नियम : दीपक : आसन : षोडशोपचार : आरती : चरणामृत : प्रदक्षिणा ।

६. सनातनधर्म और वर्ण-व्यवस्था ५७

सनातनधर्म : वर्ण-व्यवस्था : आश्रम-व्यवस्था ।

७. षोडश संस्कार ५९

गर्भाधान : पुंसवन : सीमन्तोन्नयन : जातकर्म : अन्नप्राशन : चूडाकरण : उपनयन : समावर्त्तन : विवाह आदि ।

८. देवता तथा अवतार ६२

मूर्त्तिपूजा : गौ माता ।

९. यज्ञ ६६

कर्म-यज्ञ : भक्ति-यज्ञ : ज्ञान-यज्ञ : ब्रह्म-यज्ञ ।

१०. व्रतोत्सवका महत्त्व ६८

एकादशी : काम्य व्रत : अन्य व्रत ।

११. श्राद्ध ७०

१२. गुरु और गुरु-पूजाका महत्त्व ७४
१३. आगमरहस्ये गुरु-पूजन-पञ्चाङ्गम् ७७

ध्यान : यन्त्र : यन्त्रार्थ : पटल : गुरु-मन्त्र (षडक्षर, त्रयोविंशाक्षर, गुरु-गायत्री शिवागमे : नाम (गुरुपारम्पर्यक्रम शैव पक्षे,) : प्रार्थना-स्तोत्र : गुरोः शिव-पादुका-स्तोत्रम् : कवच-कीलक : गुरु-लक्षणानि : गुरु शब्दका अर्थ : गुरु-मण्डलम् ।

१४. व्याधि और मृत्यु जीतनेका मन्त्र ८५
१५. दंड-तर्पणके श्लोक ८६
१६. नारायण (आशीर्वाद) ८६
१७. यतीका स्थान-परिवर्त्तन ८६
१८ श्रीस्वामी शङ्कराश्रमजी महाराज, समाधि-मन्दिर, श्रीस्वामीजीकी मूर्ति, श्रीलक्ष्मीनारायणकी मूर्तियाँ, श्रीशङ्कर-पार्वतीकी मूर्तियाँ ८९-९३
१९. सिद्ध-पीठका न्यास-पत्र ९४
२०. वंश-सारणी
२१. दंडी स्वामी श्रीशङ्कराश्रमजी महाराजका संक्षिप्त पूर्वाश्रम वंश तथा जीवन-परिचय १०२
२२. प्रारंभिक ट्रस्टी १०५
२२. वर्त्तमान ट्रस्टी १०६
२३. श्रीदंडी स्वामीजी (ध्यानमुद्रामें) १०८

•—•

श्रीगुरुमंडलार्चन-पद्धतिकी विषय-सूची

१ अनुक्रम १
२ कर्त्तव्यता २
३ पवित्र-धारण और प्राणायाम २
४ मंगल मन्त्र २
५ संकल्प ५
६ गणपति-अम्बिका-पूजन ६
७ पञ्चोंकार-पूजन १६
८ भैरव-पूजन, आसन-पवित्रीकरण १६
९ कलश-स्थापन-पूजन १७
१० पुण्याहवाचन २१
११ मातृकापूजन २४
१२ वसोर्द्धारा-पूजन २९
१३ नान्दीश्राद्ध ३१
१४ आचार्य-वरण ३४
१५ वास्तु-पूजन ३६
१६ सर्वतोभद्र-पूजन ४८
१७ श्रीशालग्राम-पूजन ५७
१८ योगिनी-पूजन ६५
१९ क्षेत्रपाल-पूजन ८१
२० श्रीयन्त्र-पूजन ९८
२१ श्रीगुरुपादुका-पूजन ११२
२२ श्रीगुरुमंडलार्चन-पद्धति ११५

२३ सूर्यादि ग्रहोंका स्थापन-क्रम ११९
२४ सूर्यादिग्रहोंका आवाहन, पूजन १३३
२५ अथ पंचभूसंस्काराग्निस्थापन-कुशकण्डिका ११८
२६ सूर्यादिग्रह-अधिदेवता-पंचलोकपाल-क्षेत्रपाल-इन्द्रादि दश दिक्पालोंमेंसे प्रत्येकका अष्टोत्तरशत हवन। १३८
२७ अथ क्षेत्रपाल-बलिदान १४५
२८ अथ गुरुपूजा १४७
२९ अथ पीठपूजा १५२
३० अथावरणपूजा १५२
३१ श्रीगुरुदेव-स्तुतिः १६६
३२ अथाऽऽवाहितदेवतानां विसर्जनम् १७०
३३ षोडशमातृका-चक्रम्, सप्तघृतमातृकाचक्रम् १७१
३४ नवग्रहचक्रम् १७२
३५ कुण्डस्वरूपम् १७३
३६ सर्वतोभद्रचक्रम्, चतुःषष्टियोगिनीचक्रम् १७४
३७ क्षेत्रपालचक्रम् १७५
३८ श्रीयन्त्रम् १७६
३९ आवरण-चक्रम् १७७
४० गुरुमंडल-र्चनचक्रम् १७८
४१ गुरु-पूजनसे पूर्व-कर्मकी विधि १७९
४२ वेदी-क्रम
४३ पूजन-सामग्री १८०

◆

निवेदन

[प्रथम संस्करण]

लगभग पाँच वर्ष पूर्व मुझे श्री १०८ स्वामी शंकराश्रमजी महाराजका मंगलमय दर्शन प्राप्त करनेका परम सौभाग्य लुधियानेमें प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे मेरे पूर्व जन्मके पुण्योंके कारण श्रीस्वामीजी महाराजकी अपार कृपा और स्नेह-भावना मेरे प्रति निरन्तर बढ़ने लगी। मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि उन्होंने मुझे यह कार्य सौंपा कि कहींसे गुरुमंडलार्चन-पद्धति प्राप्त की जाय और उसके अनुसार लुधियानेमें गुरुमंडलार्चन विधिवत् कराया जाय। श्रीस्वामीजी महाराजकी कृपाका ही यह फल था कि उसकी पद्धति काशीके प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पंडित दौलतराम शर्मा गौड़जीके यहाँ प्राप्त हो गई और लुधियानेकी पंडित–मंडलीके सहयोगसे उस पद्धतिके अनुसार गुरुमंडलार्चनका कर्मकांड प्रतिवर्ष होने लगा।

पिछले दो वर्षोंसे यह विचार किया जाने लगा कि यदि पूरी पद्धति छाप ही दी जाय तो बड़ा हित होगा। श्री १०८ स्वामीजी महाराजने मुझे यह भी आदेश दिया कि इसका पंचांग (पटल, नाम, पद्धति, कवच, स्तोत्र) भी आम्नाय-सप्तविंशतिसे खोजकर निकाला जाय। संयोगसे या यों कहिए कि स्वामीजी महाराजकी सदिच्छासे यह पंचांग भी श्री१०८ नारायण स्वामीजीसे प्राप्त हो गया और इस प्रकार यह पद्धति सर्वांगपूर्ण हो गई।

पिछले वर्षसे ही लुधियानेके प्रसिद्ध धनिक तथा श्री१०८ स्वामीजी महाराजके परम भक्त स्व० राय साहब श्रीश्रीकृष्ण गुप्तजीने इस ग्रन्थके प्रकाशनका संकल्प किया और उसके लिये आवश्यक धनराशि भी मुझे सौंप दी। अथक प्रयत्न करनेपर भी जितनी शीघ्रताके साथ यह ग्रन्थ

प्रकाशित होना चाहिए था उतनी शीघ्रताके साथ नहीं हो सका। यह श्री १०८ स्वामीजीकी कृपाका फल ही है कि काशीके गोविन्द मुद्रणालय तथा मास्टर खेलाड़ीलालके प्रेसकी तत्परता, श्रीघनश्याम मिश्र ज्योतिषीजीके परिश्रम तथा प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पंडित नारायणजी मिश्र कर्मकांडीके सहयोगसे यह ग्रन्थ प्रकाशित हो गया। मैं इस उत्साहके लिये श्री श्रीकृष्णगुप्तजीको हृदयसे साधुवाद देता हूँ और मंगल-कामना करता हूँ कि उन्हें अक्षय पुण्य और यश प्राप्त हो।

अक्षय-नवमी, सं० २०१८
काशी।

सीताराम चतुर्वेदी

[द्वितीय संस्करण]

यह द्वितीय संस्करण श्रीस्वामीजीके परम भक्त पंडित ओंकारदत्त शर्मा तथा श्रीज्ञानचन्द्रजीके आर्थिक सहयोगसे प्रकाशित किया जा रहा है।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी,
सं० २०४१ वि०
वेदपाठी–भवन,
मुजफ्फरनगर

सीताराम चतुर्वेदी

श्री १०८ स्वामी श्रीशंकराश्रमजी महाराज

दण्डी स्वामीजी

श्री १०८ स्वामी श्रीशंकराश्रमजी महाराज दंडी स्वामी इस युगके बड़े पहुँचे हुए महात्मा थे जो लगभग पंसठ वर्षोंतक पूर्वी पंजाबके लुधियाने नगरमें एक कुटीमें एकान्तवास कर रहे थे। लुधियाना नगरके पश्चिमी अंचलमें जहाँ कुछ वर्ष पूर्व सुनसान जंगल और मैदान था वहीं उनके भक्तोंने जो रमणीक उपवनमें कुटिया बनवादी थी उसीमें वे ६० वर्षोंतक एकाकी, द्वन्द्वातीत होकर ब्रह्म-साधना करते थे। न कहीं आते-जाते थे न अधिक जन-सम्पर्क रखते थे। दर्शन करनेवाले दूरसे दर्शन करके चले जाते थे; उनके शरीरको कोई स्पर्श नहीं कर सकता था। उनकी एकान्तनिष्ठता और निर्लिप्तता इतनी प्रबल थी कि लुधियानेमें भी ऐसे गिने-चुने लोग ही होंगे जो उनके पूर्वाश्रमका या इस चतुर्थाश्रमका ठीक-ठीक नाम भी जानते हों। सभी लोग उन्हें दण्डी स्वामीके नामसे ही जानते थे क्योंकि आषाढ शुक्ला पूर्णिमाको गुरुपूजाका जो विशाल मेला उनके दर्शनके लिये लगता है वह दंडी स्वामीजीका ही मेला कहलाता है। जिसमें लाखों नरनारी उनके अपूर्व दर्शन करके कृतार्थ होते थे क्योंकि सार्वजनिक रूपसे वे गुरु-पूर्णिमाके दिन और उसके छह मास पश्चात् द्वितीय क्षौरके दिन पौष शुक्ल पूर्णिमाको ही दर्शन देते थे।

श्रीस्वामीजी महाराजके पूर्वाश्रमकी कथा

आर्योंने सप्तसिंधुमें अपने गोत्र, प्रवर, कुल और शाखाओंका अधिक विस्तार होनेपर जैसे पश्चिममें समस्त योरपमें व्याप्त होना प्रारम्भ किया उसी प्रकार उन्होंने पूर्वकी ओर भगवती भागीरथीके पुण्य प्रवाह-क्षेत्रकी ओर भी बढ़ना प्रारम्भ किया। यह उनके लिये स्वाभाविक भी था और सरल भी। उपनिषत्कालतक आर्योंने काशी, कोशल और विदेहमें अपने प्रबल राज्य तो स्थापित कर ही लिए थे, साथ ही बुद्धि-वैभवकी पारमिता भी इस कोटि-तक पहुँचा दी थी कि वहाँके राजाओंने

ब्रह्मज्ञान भी हस्तामलकवत् सिद्ध कर लिया था। इसी ब्रह्मज्ञानके कारण ही उन शासकों में इतनी मानसिक एकता विद्यमान थी कि जलजातुकर्ण्य ही उन तीनोंके पुरोहित रहे और भिन्न राज्य होते हुए भी उनकी भावात्मक अभिन्नता सदा अक्षुण्ण रही। विभिन्न वर्णोंमें भी उस समय इतनी अभिन्नता विद्यमान थी कि ब्रह्म-शक्तिके बिना क्षात्र शक्ति और क्षात्र शक्तिके बिना ब्रह्मशक्ति निष्फल मानी जाती थी। यही कारण था कि जब क्षत्रिय लोग पूर्वकी ओर बढ़े तो वे अपने साथ परम निष्ठावान् तपस्वी ब्राह्मणोंको भी साथ लेते गए क्योंकि उनका विश्वास था कि ऋषियों और तपस्वियोंकी तपस्याके बलपर ही राज्य भी स्थिर रहता है और योग-क्षेम भी होता है।

सरयूपारीण ब्राह्मण

इन प्रतापी दार्शनिक शासकोंके साथ जो तेजःपूर्ण ब्राह्मण पूर्वकी ओर आए उन्होंने अपना प्रथम विस्तार कान्यकुब्ज प्रदेशमें किया और उस प्रदेशमें रहनेके कारण उनका नाम ही कान्यकुब्ज पड़ गया। धीरे-धीरे जब इन कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंका भी परिवार निरन्तर बढ़ने लगा तब वे सरयू पार करके सरयूके उत्तरी भागमें बसकर फैल गए। ये कोशल प्रदेशमें बसे हुए ब्राह्मण ही सरयूके पार रहनेके कारण सरयूपारीण कहलाने लगे। ये सरयूपारीण ब्राह्मण सप्तर्षियोंमें मान्य महर्षि वशिष्ठकी वरिष्ठ परम्परामें परिपुष्ट होनेके कारण बड़े आचारनिष्ठ, विद्वान् तपोधन और चरित्रवान् थे। समय पाकर इनका भी इतना गोत्र-विस्तार हुआ कि विक्रम संवत्की १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें इन आचारवान् ब्राह्मणोंका विशाल समुदाय वर्तमान गोरखपुर और देवरिया जनपदमें फैल गया। ये सभी ब्राह्मण अत्यन्त व्युत्पन्न, मेधावी, वेद-शास्त्र आदि चौदहों विद्याओंके बड़े दिग्गज विद्वान् और आचारमें अत्यन्त धर्मधुरीण थे। उनकी दी हुई आचार-व्यवस्था सर्वमान्य होती थी और उनका आचार-व्यवहार सर्वत्र अनुकरणीय माना जाता था। आजतक भी काशीके मूर्धन्य पंडित सब इसी प्रदेशके सरयूपारीण ब्राह्मण ही हैं।

उसी ब्रह्मसेवित गोरखपुर प्रदेशके नागचौरी गाँवमें अत्यन्त विद्वान् तथा निष्ठावान् वैदिक ब्राह्मणोंका बड़ा समृद्ध परिवार निवास करता था। ज्यों-ज्यों उस परिवारमें वृद्धि होती गई त्यों-त्यों वे भी अपनी जीविका और योगक्षेमके लिये अन्य स्थानोंमें बढ़ने लगे। इनमेंसे कुछ परिवारोंको तो उनके गुणज्ञ आश्रयदाता लोग ही अपने साथ विभिन्न स्थानोंमें

अपना पुरोहित या गुरु बनाकर लिए चले गए और कुछ लोगोंने स्वतः अपनी विद्या अथवा गुणके कारण अन्य स्थानोंमें सुखाश्रय पाकर वहाँ अपना आवास बना लिया। इस प्रकार जीविकार्जन, भूमि-प्राप्ति अथवा अन्य किसी प्रकारके आश्रयके कारण अनेक विद्वान् विभिन्न प्रदेशोंमें जा बसे। इन्हीं अनेक कारणोंसे नागचौरी ग्रामके ब्राह्मण भी नागचौरीसे हटकर दो अन्य स्थानोंमें रुकते हुए गुलालपुरमें जा बसे।

श्रीपट्टीमें वास

इसी गुलालपुर ग्रामसे श्री १०८ स्वामीजी महाराजके पूर्वाश्रमके पितामह ही सर्वप्रथम भगवती जाह्नवीके वामकूलपर विन्ध्यक्षेत्रमें मीरजापुर जनपदके श्रीपट्टी नामक ग्राममें नवासेपर अपनी ननिहाल चले आए। वहींपर उनके पुण्य-स्वरूप श्री १०८ स्वामीजी महाराजके पूर्वाश्रमके पितुःश्री पंडित ठाकुरदयालु पांडेयजीका जन्म हुआ। पंडित ठाकुरदयालु पांडेयजी बचपनसे ही बड़े बुद्धिमान् और अध्यवसायी थे। उन्होंने अपने पूर्वजोंकी प्रशंसनीय परम्पराका निष्ठापूर्ण निर्वाह करते हुए मवैयाके परम विद्वान् तथा धर्मनिष्ठ पंडित दामोदर तिवारीजीसे धर्मशास्त्र, पुराण और साहित्य-शास्त्रका विशद अध्ययन करके व्यापक यश अर्जित किया। उनके अगाध पांडित्य और सात्त्विक जीवनका तथा उनकी अत्यन्त भावुकतापूर्ण भागवत कथाका इतना अधिक आदर हुआ कि मध्यप्रदेशके अनेक ब्राह्मण परिवार अत्यन्त श्रद्धावनत होकर उनके शिष्य हो गए। पंडित ठाकुरदयालु पांडेयजीकी सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि उन्होंने केवल ब्राह्मणोंको ही अपना शिष्य बनाया क्योंकि उनका यह सात्त्विक विश्वास था कि केवल ब्राह्मणोंके अन्नसे ही सात्त्विक निष्ठा बनी रह सकती है अन्यथा अन्य वर्णोंका अन्न खानेसे रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धिका संशय बना रहता है। उसका कारण यही है कि मनुष्य जिस प्रकारका अन्न खाता है उसी प्रकारकी उसकी बुद्धि हो जाती है।

पंडित रामस्वरूप पांडेय

पंडित ठाकुरदयालु पांडेयजीके दो सुयोग्य और धर्मनिष्ठ पुत्ररत्न हुए। उनमेंसे ज्येष्ठ थे पंडित रामस्वरूप पांडेय और कनिष्ठ थे पंडित श्यामाचरण पांडेय। श्री १०८ स्वामीजी महाराजका ही पूर्वाश्रमका नाम पंडित रामस्वरूप पांडेय था। पंडित रामस्वरूप पांडेयजीका जन्म आषाढ शुक्ला सप्तमी सं० १९०० के आस पास हुआ था। अपने पूज्य

पितृचरण पंडित ठाकुरदयालु पांडेयजीके समान ही इन्होंने भी मवैंया ग्राममें ही अत्यन्त मनोयोगपूर्वक वेद, शास्त्र, पुराण आदिका सम्यक् अध्ययन किया और अपने प्रतिष्ठित पूर्वजोंकी प्रशस्त परम्पराके अनुसार अपने अपार पांडित्य और समुज्ज्वल आचरणसे व्यापक सम्मान और यश अर्जित किया। विद्या विनय-सम्पन्न होनेपर सरैया ग्रामके प्रख्यात पंडित श्रीवेणीमाधव शुक्लकी सहोदरा पूजनीया श्रीमती मक्तूला देवीके साथ बड़ी धूमधामसे इनका विवाह सम्पन्न हो गया।

गृहत्याग

पंडित रामस्वरूपजी अत्यन्त सात्त्विक प्रकृतिके परम धर्मनिष्ठ स्वाभिमानी पुरुष थे। इनका नित्यका नियम था कि स्वाध्याय, सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्मसे निवृत्त होकर ये प्रतिदिन गंगाजीके उस पार माता विन्ध्यवासिनी देवीका दर्शन करने जाया करते थे। उन दिनों श्रीपट्टी ग्रामके क्षत्रिय भूमिपतियोंने मदान्ध होकर वहाँ बड़ा अत्याचार मचा रक्खा था। वे लोग निरन्तर खेती-बारीके सम्बन्धमें यथासंभव सभी प्रकारसे वहाँके ब्राह्मणोंको इतना कष्ट देते रहते थे कि पंडित ठाकुरदयालुजीको और पंडित रामस्वरूपजीको निरन्तर किसी न किसी प्रपंचमें कचहरी दौड़ना पड़ता था। यह नित्यकी यातना तो चल ही रही थी कि इसी बीच एक दिन बड़ी अप्रिय घटना हो गई। नित्यकी भाँति ये प्रातः कृत्य करके माता विन्ध्यवासिनीके दर्शन करने जा ही रहे थे कि सहसा इनके कुछ मित्र इनके घर आ पहुँचे। भारतीय शिष्टाचारके अनुरूप उनके आतिथ्य-सत्कार-की उचित व्यवस्थाका आदेश घरमें देकर और उन मित्रोंसे क्षमा माँगकर ये यथानियम माता विन्ध्येश्वरीका दर्शन करने चले गए। जब ये दर्शन करके लौटे तो इन्हें सूचना मिली कि आदेशके अनुसार मित्रोंका भली प्रकार आदर-सत्कार नहीं हुआ। मित्रोंके इस अपमानसे इनके स्वाभिमानी हृदयको इतनी ठेस लगी कि इन्होंने न किसीसे कुछ कहा-सुना, न पूछा, चुपचाप अपनी धर्मपत्नीजी से छतरी माँगी और घरबार छोड़कर अकेले चल दिए।

बहनका हृदय और परिवारवालोंकी ममता।

घरसे चलकर सीधी बटिया पकड़े हुए ये मिश्रधाम नामक ग्राम जा पहुँचे जहाँ इनकी बहन लकेसरा (लोकेश्वरी) का विवाह हुआ था। भाई-

बहनमें परस्पर इतना प्रेम था कि इनके आनेपर लकेसरा देवीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने बहुत स्नेहसे इनकी आवभगत की। वहाँसे बिदा लेनेतक भी उन्होंने किसीको यह नहीं जानने दिया कि मैं घर छोड़कर जा रहा हूँ और अब कभी घर नहीं लौटूँगा। वह स्नेहशीला बहन यह क्या जानता थी कि भाईसे यह अन्तिम भेंट है। अपनी बहनसे विदा लेकर ये सीधे काशी चले आए और वहाँ नवाबगंज मुहल्लेके गुफाबागमें जाकर अकेले रहने लगे।

इनके चले जानेका समाचार मिलते ही घरमें कुहराम मच गया। इनके पिता और माताजीके क्लेशका तो कोई पार ही नहीं था। इनकी धर्मपत्नी भी ढाई वर्षके बालक भगवतीप्रसादको गोदमें लिए हुए शोक-शागरमें निमग्न हो गई। इनकी बहन लकेसरादेवी तो इनके गृहत्यागका समाचार सुननेपर सहसा ऐसी व्याकुल और स्तब्ध हो गई कि उनकी बोलती बन्द हो गई और जबतक जीवित रहीं तबतक उनके मुँहसे एक शब्द नहीं निकला। वे गूँगी हो गईं उनकी वाक्शक्ति सदाके लिये लुप्त हो गई। इनका छोटा भाई भी इनके वियोगमें अत्यन्त विषण्ण हो गया और उसकी नवोढा पत्नी भी परिवारके इस दुःखमय वातावरणमें परम अधीर हो गई।

हरिद्वारके लिये प्रस्थान

जिस घरसे इतना योग्य और युवा पुत्र इस प्रकार चला जाय उस घरमें शान्ति कहाँ रह सकती है। इनकी माताजी अलग दिन रात रोती-कलपती रहती थीं, पत्नी अलग बिलखती रहती थीं, पिताजी अलग व्याकुल थे और गाँववाले भी इस संतप्त परिवारके शोकसे कम दुखी नहीं थे। चारों ओर इनकी खोज होने लगी। थोड़े ही दिनों पीछे गाँववालोंको आते-जाते लोगोंसे समाचार मिला कि पंडित रामस्वरूपजी काशीमें हैं। फिर क्या था! गाँवके अनेक प्रभावशाली व्यक्ति इन्हें मनानेके लिये काशी आ पहुँचे। सब लोगोंने इन्हें बहुत समझाया-बुझाया, माताके कोमल हृदयके मर्माघातका चित्र प्रस्तुत किया, पत्नीके सात्त्विक क्लेशका करुण वर्णन किया, अबोध शिशुकी अनाथताका मार्मिक प्रसंग छेड़ा, पिताजीकी अवर्णनीय मानसिक व्यथाका शब्दांकन किया किन्तु किसी प्रकारके प्रबोधन, प्रलोभन और मोहमन्थनका इनके हृदयपर कोई प्रभाव

नहीं पड़ा। इतना ही नहीं, जब इन्होंने देखा कि यहाँ नित्यप्रति गाँवसे कोई न कोई आता ही रहता है और यह उत्पात निरन्तर चलता ही रह सकता है तो एक दिन इन्होंने झोला–डंडा उठाया और काशी छोड़कर हरिद्वारके लिये प्रस्थान कर दिया।

संन्यास-ग्रहण

हरिद्वार पहुँचते-पहुँचते इनका विराग पूर्णतः प्रबल हो गया। प्राक्तन जन्मके विराग–संस्कार अत्यन्त सशक्त होकर इनकी बुद्धिको बल देते जा रहे थे। हरिद्वार पहुँचकर ये देहरादूनस्थ चन्द्रमणि मठके श्री १०८ स्वामी महादेव आश्रमजीके ससम्पर्कमें आ गए और उन्हींसे दशनामी सम्प्रदायमें प्रविष्ट होकर इन्होंने संन्यास लेकर दंड ग्रहण कर लिया। दंडग्रहण करनेके अनन्तर ये मुख्यतः हरिद्वारमें ही निवास करते हुए तपस्या और ब्रह्मसाधना करने लगे। जिस मठाम्नायमें इन्होंने दीक्षा ली उसका सम्बन्ध द्वारकाके शारदा मठसे है। इस सम्प्रदायका नाम है कीटवार, इस सम्प्रदायके संन्यासियोंकी उपाधि है तीर्थ और आश्रम, इनका क्षेत्र है द्वारका, देवता हैं सिद्धेश्वर, देवी हैं भद्रकाली, आचार्य हैं विश्वरूप, तीर्थ है गोमती, स्वरूप है ब्रह्मचारीकी उपाधि, वेद है सामवेद, महावाक्य है 'तत्त्वमसि', गोत्र है अविगत, और सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा अन्य उनके आस-पासके पश्चिम दिशाके देश ही इस शारदा मठके अधीन हैं। जो आवागमनसे बिमुक्त हो जाता है उसे आश्रम कहते हैं। कीट आदि जीवोंकी हिंसा न करने और सब प्राणियोंपर दया करनेके कारण यह सम्प्रदाय कीटवार कहलाता है। जो आत्मस्वरूपको जानता हुआ और अपने धर्मका पालन करता हुआ अपने आत्मानन्दमें मग्न रहता है उसे स्वरूप कहते हैं। इस दृष्टिसे श्री १०८ स्वामीजी महाराजने अपने सम्प्रदायको दीक्षाको पूर्णतः सफल सिद्ध कर दिया था।

स्वामीजी पंजाबमें

जिन दिनों ये हरिद्वारमें निवास करते थे उन्ही दिनों पंजाबके खन्ना प्रदेश-निवासी सरदार रामसिंह भी हरिद्वार स्नान करने आए हुए थे। संयोगसे श्रीस्वामीजी महाराजसे उनकी भेंट हो गई। बातचीतके प्रसंगमें स्वामीजीने काशी जानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीरामसिंह इनकी सरलता और त्याग-भावनासे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने तत्काल कहा–

ठीक है, चलिए। रामसिंहके साथ श्रीस्वामीजी महाराज गाड़ीपर चढ़ गए। अगले दिन सबेरे गाड़ीसे उतरे तो देखा कि यह तो काशी नहीं, कोई दूसरा ही स्थान है। रामसिंहने खन्ना स्टेशनपर इन्हें उतार लिया और वहीं नहरके किनारे इनके निवास और भिक्षाकी व्यवस्था कर दी। कुछ दिनोंके उपरान्त कुछ लोग इन्हें लुधियाने लिवा लाए और ये लाहौरियेके बगीचेमें रहने लगे। थोड़े दिनों पश्चात् ये वहाँसे भी हट आए और विचित्र बात यह हुई कि इनके हटते ही वह बगीचा भी सूख गया।

लुधियानेमें वास

लाहौरियोंके बगीचेसे हटकर स्वामीजी वहीं एक बुर्जमें रहने लगे जिसमें अनेक सर्प दिनरात फन निकाले हुए घूमते रहते थे। इतना ही नहीं, उसीके पास ही स्थानीय पुलिसकी चाँदमारी हुआ करती थी। गोलियाँ निरन्तर इनके पासको सनसनाती निकल जाती थीं किन्तु इनके तपःपूत शरीरको स्पर्श करनेकी धृष्टता वे नहीं कर सकती थीं। इनकी सात्त्विक तपस्या, निरीहता, एकान्त निष्ठा, शान्त प्रकृति, उदासीन भावना और त्यागवृत्तिपर लोग इतने श्रद्धामुग्ध हुए कि इनकी सेवा करनेके लिये लोग नदी पार कर-करके जाने लगे।

ढंढोंके बागमें

लाला ब्रजलाल ढंढाके पुत्र लाला रामलाल और यशवन्तरायने सिविल लाइन्सकी ओर सूखे रेतीले अंचलमें बँगले बनवानेके लिये कुछ भूमि मोल लेकर श्री १०८ स्वामीजी महाराजसे निवेदन किया कि हमने बँगले बनवानेके लिये कुछ भूमि मोल ले ली है। इसपर स्वामीजी महाराजने कहा कि वहाँ साधुओंकी कुटिया क्यों नहीं बनवा देते। तब ढंढोंने उनसे प्रार्थना की कि महाराज यदि आप उस भूमिको अपने चरण-रजसे पवित्र कर दें तो कुटी भी बन जायगी। श्रीस्वामीजी महाराजने अपनी स्वीकृति दे दी। फिर क्या था ! बातकी बातमें कुटी बन गई और उनपर कृपा करके श्रीस्वामीजी भी ढंढोंके बागमें आकर कुटीमें रहने लगे। फिर तो ढंढोंने वहाँ बाग लगवा दिया, कुआँ खुदबा दिया, बिजलोका पम्प लगाकर सींचनेकी व्यवस्था करा दी। थोड़े ही दिनोंमें अमराई और फुलवारी लहलहा उठी। यहाँ रहकर भी स्वामीजी कहीं आते-जाते नहीं थे। स्त्रियाँ तो उनके पास आ-जा सकती ही नहीं थीं, दर्शन करना होता था तो दूरसे दर्शन करके चली जाती थीं।

परमहंस और अवधूत अवस्थामें

लुधियानेमें निवास करते समय ढंढोंके साथ ही श्रीस्वामीजी हरिद्वार और प्रयागके कुम्भके अवसरपर बाहर गए थे अन्यथा वे अपनी कुटीमें ही साधना करते रहे और दंडी संन्यासीके धर्मका निर्वाह करते रहे। यद्यपि दंडी संन्यासीके लिये यह शास्त्र-विहित है कि वह दंडी संन्यासीके आचारका १२ बर्षतक पालन करनेके उपरान्त जलमें दंड-विसर्जन करके परमहंस अवस्थामें प्रविष्ट हो जाय किन्तु श्री १०८ स्वामीजो महाराजने सं० २०१८ तक नियमपूर्वक दंडतर्पण किया और लगभग ११७ वर्षकी अवस्थामें रोपड़की नहरसे ऊपर पुण्यसलिला वैदिक नदी शतद्रुकी स्वच्छ शीतल धारामें अत्यन्त वैदिक विधिपूर्वक दंडविसर्जन किया। दंड-तर्पणमें नित्यप्रति यह श्लोक पढ़कर श्रीस्वामीजी महाराज दंड-तर्पण करते थे और यही पढ़कर दंडविसर्जन भी कराया गया—

सुरास्तिष्ठन्ति दण्डाग्रे दण्डमूले तु पूर्वजाः।
दण्डग्रन्थीषु गन्धर्वाः दण्डमध्ये च मानवाः॥
अस्माकं ये कुले जाताः नामगोत्रसमुद्भवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु दण्डसम्बन्धि-वारिणा॥

दशनामी साधु

श्री १०८ स्वामीजी महाराजने दशनामी सम्प्रदायमें दीक्षा ली थी। इस दशनामी साधु सम्प्रदायका भी अत्यन्त विशद इतिहास है। केवलाद्वैतके प्रसिद्ध प्रवर्तक श्रीमच्छंकराचार्यजीके चार प्रधान शिष्य थे—श्रीपद्मपादाचार्य, श्रीहस्तामलकाचार्य, श्रीमंडनाचार्य तथा श्रीत्रोटकाचार्य। इनमेंसे पद्मपादाचार्यजीके दो शिष्य थे तीर्थ और आश्रम, हस्तामकाचार्यजीके दो शिष्य थे वन और अरण्य, मण्डनाचार्यजीके तीन शिष्य थे गिरि, पर्वत और सागर तथा त्रोटकाचार्यजीके तीन शिष्य थे सरस्वती, भारती और पुरी। इन्हीं दस शिष्योंके नामसे दशनामी पद्धतिका प्रचलन हुआ। भगवान् शंकराचार्यजीके चारों मठोंमें इन दस प्रशिष्योंकी शिष्य-परम्परा ही चली आ रही है। पुरी, भारती और सरस्वतीकी शिष्य-परम्परा शृंगेरी मठके अन्तर्गत; वन और अरण्यकी परम्परा गोवर्धन मठके अन्तर्गत, तीर्थ और आश्रमकी परम्परा शारदा मठके अन्तर्गत तथा गिरि, पर्वत और सागरकी परम्परा जोशी मठके अन्तर्गत है।

दंडी संन्यासियोंके लिये साधारण नियम यह है कि वे गेरुआ वस्त्र

पहनें, सिर मुँड़ाए रहें, भस्म तथा रुद्राक्षकी माला धारण किए रहें, अग्नि, धातु या धातुके पात्रका स्पर्श न करें, अपने हाथसे रसोई न बनावें, केवल ब्राह्मणके घरकी या साथमें रहनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मचारीसे रसोई बनवाकर ग्रहण करें, एक छोटे तकियेके सहारे चटाईपर विश्राम करें और केवल एक ही बार भिक्षा ग्रहण करें।

संन्यासकी अवस्थाएँ

संन्यासकी छह अवस्थाएँ बताई गई हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत, अवधूत ।

स्कन्द पुराणकी सूत-संहितामें चार प्रकारके संन्यासियोंका विवरण आया है—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। कुटीचक संन्यासी अपने तथा मित्रोंके घर भिक्षा करते, शिखा, यज्ञोपवीत दंड-कमंडलु और काषाय वस्त्र (कौपीन-कन्था) ग्रहण करते, तीन समय स्नान करके गायत्रीका जप करते, विभूति रमाते, त्रिपुण्ड्र लगाते, त्रिसन्ध्या-वन्दन और शिवकी पूजा करते, माता, पिता और गुरुकी आराधना करते, अभ्यागत या साधु-संन्यासीका स्वागत करते, समस्त सांसारिक सुख और संबंध छोड़कर निश्चिन्ततापूर्वक अपने घर, ग्राम या नगरमें ही कुटी बनाकर रहते हैं। ये कुटीचक साधु लोग यति और भिक्षुसे भिन्न होते हैं।

बहूदक संन्यासी अपना घरबार छोड़कर, सात घरोंसे भिक्षा लेकर निर्वाह करते हैं, एकसे नहीं। ये लोग गोपुच्छके बालोंकी डोरी बँधा हुआ त्रिदंड, शिक्य, जलपात्र, कौपीन, कमंडलु, शरीर ढकनेका कंथा, खड़ाऊँ, छत्र, मृग या व्याघ्रका चर्म, सूची, पक्षिणी, रुद्राक्ष–माला, योगपट्ट, बहिर्वास, खनित्र और कृपाण ग्रहण करते, भस्म और त्रिपुण्ड्र लगाते, शिखा और यज्ञोपवीत धारण करते, वेदाध्ययन और देवाराधन करते, मौन होकर इष्टदेवकी पूजा करते, सन्ध्या समय गायत्री जपते, देवपूजन, मन्त्र-जपका अनुष्ठान करते, तितिक्षा और सदाचारके साथ तीर्थोंमें घूमते, धर्मोपदेश करते तथा जितेन्द्रिय होकर बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर प्राणायाम करते हैं। कुटीचक संन्यासी कुटी छोड़कर भ्रमण करने लगे तो बहूदक हो जाता है और बहूदक कुटी बनाकर रहने लगे तो कुटीचक हो जाता है।

हंस संन्यासी सदा अपने साथ कमंडलु, शिक्य, भिक्षापात्र, कन्था, कौपीन, अंगवस्त्र, आच्छादन, बहिर्वास और वंश-दंड धारण करते, एक समय स्नान करके शरीरमें भस्म लगाते, त्रिपुण्ड्र धारण करते, शिवलिंगकी

अर्चना करते, शिखाके साथ सिर मुंड़ाते, या जटा रखते, प्रतिदिन करपात्री होकर केवल आठ ग्रास भोजन करते, मानसिक पूजा-ध्यान करते, सन्ध्याको गायत्रीका जप और अध्यात्म–चिन्तन करते, तीर्थ-सेवन तथा कृच्छ् और चान्द्रायण व्रत करते, वीतराग, शान्त, जितेन्द्रिय और परोपकारी होकर एक गाँवमें केवल एक रात, नगरमें पाँच रात और क्षेत्र (तीथ)में सात रातसे अधिक नहीं ठहरते। ऐसे संन्यासी शरीर त्याग करनेके पश्चात् तपः लोकमें जाते हैं।

परमहंस सब कुछ (शिखा, यज्ञपवीत, दंड, कमंडलु, भोजन-वस्त्र आदिकी सामग्री) छोड़कर केवल कोपीन, आच्छादन-वस्त्र, कन्था, योगपट्ट, बहिर्वास, पादुका, छत्र, अक्षमाला और वंशदंड धारण करते, भस्म लगाते और तीन बार ॐकार जपकर त्रिपुण्ड्र धारण करते, अनेक स्थानोंसे भोजन-सामग्री एकत्र करके दिनमें केवल एक बार भोजन करते और शीत-उष्ण, मान-अपमानसे ऊपर उठ जाते हैं, स्नानका भी उनके लिये कोई बंधन नहीं रह जाता और वे सब जीवोंको आत्मवत् समझने लगते हैं। ऐसे परमहंस सन्यासी शरीर छोड़नेके पश्चात् सत्यलोकमें जाते हैं।

परमहसके भी दो प्रकार हैं—दंडी परमहंस और अवधूत परमहंस। दंडी परमहंस वे होते हैं जो दंड छोड़कर परमहंस होते हैं और जो अवधूत वृत्तिका अवलंब लेते हैं वे अवधूत परमहंस कहलाते हैं।

कुछ लोग परमहंस अवस्थाके पश्चात् तुरीयातीत और अवधूत नामक दो अवस्थाएँ और बताते हैं। उनका कथन है कि तुरीयातीत संन्यासीकी गोमुख वृत्ति हो जाती है अर्थात् वे कन्द, मूल, फलपर निर्वाह करते हैं, शरीर धारण करनेके लिये तीन घरोंसे भिक्षा लेते हैं, नग्न रहते हैं, ऋतु-क्षौर (दो मासमें एक बार क्षौर) कराते हैं, निरन्तर महावाक्योंके उपदेश देते हैं, निदिध्यासनके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार करते हैं और शरीर त्याग करनेके पश्चात् आत्माको परमात्मामें लीन करके मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अवधूत संयासी वायुस्नान करते हैं, सोऽहम्‌की भावनासे प्रणव (ॐकार) रूपी ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय होकर जीवन्मुक्त हुए विचरण करते हैं। इन्हें शरीर-धर्मकी कोई चिन्ता नहीं रहती—किसीने नहला दिया नहा लिए, खिला दिया खा लिया अर्थात् ये लोग पूर्ण जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

श्री १०८ स्वामीजी महाराजने सं० २०१८ में आषाढ शुक्ला पूर्णिमाको-दंड विसर्जन करके अवधूत अवस्था प्राप्त कर ली और पूर्णतः उस निर्विकल्प समाधिकी दशाको पहुँच गए जिस दशामें योगिजन

ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं। इस युगमें ऐसे बहुत कम महात्मा, साधु या योगी हमारे देशमें हैं जिन्होंने अपने तपःपूत सात्त्विक जीवनसे और अपने त्याग, निर्लिप्तता और अनीहासे उदात्त साधना करके इतनी प्रबल वाक्सिद्धि और संकल्प-सिद्धि प्राप्त कर ली हो। ऐसे ही महापुरुषोंके लिये महाकवि भवभूतिने कहा है—

लौकिकानां हि साधूनां अर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थो नु धावति॥

[जो लौकिक साधु होते हैं वे तो वही बात करते हैं जो होनेवाली होती है किन्तु जो आद्य ऋषिकल्प महापुरुष होते हैं वे तो जो कह देते हैं वही होता है।] ऐसे ही महर्षि-कल्प महापुरुषोंमें श्री १०८ स्वामीजी महाराज थे।

गुरु—पूजन

कुछ वर्षोंसे श्री १०८ स्वामीजी महाराजके अनेक भक्तोंने आषाढ शुक्ल पूर्णिमाको श्रीचरणकी पूजा प्रारम्भ कर दी थी क्योंकि उसी दिन श्रीस्वामीजी महाराज वार्षिक क्षौर कराते थे। फिर यह पूजन-विधान वर्षमें दो बार प्रति छह महीनेपर किया जाने लगा। पाँच दिन पूर्वसे ही विद्वान् ब्राह्मण अत्यन्त निष्ठाके साथ पूर्ण वैदिक विधि-विधानसे मंगलाचरण, शिखाबन्धन, पवित्र-धारण, आचमन, प्राणायाम, स्वस्तिवाचन, देव-नमस्कार, प्रधान संकल्प, गणपत्यादि पूजन, वरुणपूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, वसोर्धारा—पूजन, नान्दी श्राद्ध, आचार्यादि वरण, दिग्रक्षण, वास्तुपूजन, सर्वतोभद्र—मंडलमें देवताओंका स्थापन और पूजन, शालग्रामका पूजन, यौगिनी-पूजन, क्षेत्रपाल-पूजन, श्रीसूक्तसे श्रीयन्त्रका पूजन, गुरुमंडलार्चन, गुरुपादुका-पूजन, नवग्रह-स्थापन-पूजन, अग्निस्थापन, होम, गुरुदेव अर्थात श्री १०८ स्वामीजी महाराजका पूजन, अग्निपूजन, स्विष्टकृत् होम, आर्तिक्य, मंत्रपुष्पांजलि, क्षमा-प्रार्थना, अभिषेक, विसर्जन, तिलक, आशीवदि आदि पुण्य कृत्य करते हैं। अन्तिम दिन क्षौर करानेके पश्चात् श्री १०८ स्वामीजी महाराज पूजनके लिये कुटीसे बाहर आते थे और एक आसनसे बैठकर सबको दर्शन देते थे। इस पुण्यपर्वपर पहले तो लाला रामलाल ढंढा ही यजमानके रूपमें पूजा करते थे किन्तु सं० २०१० में उनका वैकुंठवास होनेके पश्चात् उनके ज्येष्ठ भ्राता लाला मुन्नीलालजी पूजन करने लगे। इस पूजन-पर्वपर लाखों आबालवृद्ध नरनारी दूरदूरसे आकर

दर्शन करके अपना जीवन धन्य करते हैं। मीलोंतक सड़कोंपर शामियाने लग जाते हैं। मार्गमें इतनी अपार भीड़ हो जाती है कि गाड़ी-घोड़े-मोटरका आना-जाना रुक जाता है, ठंडे जलके पौसरे लग जाते हैं, सब दर्शनार्थियोंको प्रसाद वितरित किया जाता है, आश्रमके सामने सड़कके दोनों ओर पूरा बाजार लग जाता है। अब तो प्रति रविवारको उस आश्रममें भजन कीर्तन भी होने लगा है जिसमें सहस्रों नरनारी आकर अपना जीवन सफल करते और आध्यात्मिक चेतना लेकर जाते हैं।

लुधियाना-निवासियोंका यह परम सौभाग्य है कि श्री १०८ स्वामीजी महाराज-जैसे सिद्ध पुरुष वहाँ निवास करते थे जिनकी कृपाकोरसे उस नगरमें समृद्धि और सात्त्विक जीवनका स्रोत निरन्तर बहता चलता है।

श्रीस्वामीजी महाराजकी नित्यचर्या

श्री १०८ स्वामीजी महाराजकी जीवन-चर्या भी बड़ी अद्भुत थी। वे प्रातःकाल तीन बजे ही उठ जाते थे। क्योंकि—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

[सब प्राणियोंके लिये जो रात्रि होती है उसमें संयमी महापुरुष जागते हैं क्योंकि एकान्त साधनाके लिये उससे बढ़कर शान्त वेला और मिल कब सकती है। और जिस समय सारा संसार जागता है वही उन महापुरुषोंके लिये रात्रि होती है।] वे उस समय उठकर ब्रह्मचिन्तन करते थे। उसके पश्चात् नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुनः ध्यानमग्न हो जाते थे। कई वर्षोंतक उन्होंने अन्न तो पूर्णतः छोड़ दिया था। कभी-कभी बीच-बीचमें सात-सात आठ-आठ दिनोंपर नारियलका पानी, गौका दूध या तरबूजका पानी आदि तरल पदार्थ ही नाम मात्रको लेते थे और वह भी ठंढा करके। वे केवल अपनी तपस्या और अपने आत्मबलके आधारपर ही अपना शरीर-धर्म निबाहते चले जा रहे थे अन्यथा जिस प्रकार उन्होंने भोजनका नियमन किया था उस प्रकार तो शरीर-रक्षा ही संभव नहीं है। संभवतः लुधियानावालोंके पुण्यसे और उनपर कृपा करके ही उन्होंने अपने शरीरको इस प्रकार साधकर स्थिर कर लिया था अन्यथा इस कलिकालमें जहाँ अनेक तथाकथित साधु लोग भी निन्दा-स्तुति और विज्ञापनबाजीमें पड़कर महन्ती चलाते हैं वहाँ इस प्रकारकी तपस्या, त्याग, एकान्त-निष्ठा, संयम आदि संभव कहाँ है।

श्रीपट्टीमें समाचार

जबसे श्री १०८ स्वामीजी महाराजने काशीको छोड़; तबसे श्रीपट्टीवालोंको उनका कोई समाचार नहीं मिला। इस बीच श्रीपट्टीमें उनके परिवारमें बहुत्त परिवर्तन हौ गए। श्री स्वामीजीके पूव-श्रमके पितुःश्री पंडित ठाकुरदयालु पांडेय दिवंगत हो गए और कनिष्ठ भ्राता भीअकाल-कवलित होकर स्वर्ग सिधार गए। गांववालोंने अपनी कुटिल नीति और विद्वेष-भावनासे अपना तुच्छ स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये विधवाओंको लड़ा निया। इस त्वंचाहंचमें श्रीरामस्वरूपजी [श्री स्वामीजी] के पुत्र श्री भगवतीप्रसादको किसी प्रकारकी कोई शिक्षादीक्षा नहीं मिल पाई। अनेक प्रकारक दुश्चिन्ताओं और आर्थिक कठिनाइयोंसे युद्ध करते हुए थोड़ी–सी पूर्व पुरुषोंकी भूमि के आश्रयपर वे अपना और परिवारका किसी–किसी प्रकार पोषण करते रहे।

लगभग साठ वर्षोंतक श्रीस्वामीजी महाराजके सम्बन्धमें किसीको कोई समाचार श्रीपट्टीमें नहीं प्राप्त हुआ। इस बीच श्रीपट्टी ग्रामके श्रीचन्द्रिका दुबेके यहाँ लुधियानेके स्वामी ओंकारानंन्दजी कभी-कभी घूमते-फिरते चले आया करते थे। उन्होंने हो एक बार प्रसंगवश सन्देश दिया कि श्रीपट्टीके पूर्वाश्रमके निवासी कोई संन्यासी लुधियानेमें एकान्तवास करते हैं। फलतः पंडित भगवतीप्रसाद पांडेयके पुत्र श्रीविश्वनाथ पांडेय (प्रणव) सन् १६४६ के जून मासमें देहरादूनके अखिल भारतीय सामाजिक शिविरमें भाग लेकर उधरसे ही लुधियाने चले गए और वहाँ एक धर्मशालामें ठहरकर श्री १०८ स्वामीजी महाराजके दर्शनके लिये जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर जब इन्होंने अपना परिचय दिया तो श्रीस्वामीजीने इन्हें मुँह नहीं लगने दिया। जब स्वामीजी महाराजके भक्तोंको इनका परिचय मिला तो उन्होंने बड़ा स्वागत-सत्कार किया। गुरु–पूर्णिमाके पश्चात् जब श्रीविश्वनाथ पांडेय घर लौटने लगे तो अनेक भक्त भी श्रीस्वामीजी महाराजकी जन्मभूमिका दर्शन करने श्रीपट्टी साथ चले और उन्होंन यथाशक्ति उस स्थानको श्रीसम्पन्न किया। पडित भगवतीप्रसाद पांडेय, उनकी पत्नी और उनके चारों पुत्रों [विश्वनाथ, छबिनाथ, कृपानाथ और प्रभुनाथ] के नाम पाँच-पाँच सहस्र रुपया जमा कर दिया, मिर्जापुरमें उनके लिए एक मकान मोल लेकर बनवा दिया, सरसों ग्राममें छावनी और कुआँ बनवा दिया और श्री छविनाथ पांडेय तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती जयशीला पांडेयके लिये काशीमें प्रह्लादघाटपर

मकान बनवा दिया । ये परिवार भी प्रायः गुरु पूर्णिमाके अवसरपर लुधियाने जाते रहते हैं । श्रीस्वामीजीके समय ही श्रीछविनाथ पांडेयकी धर्म-पत्नी डा० श्रीमती जयशीला पांडेय तथा उनके बच्चों–कल्पलता, मुकुल, मंजुल भी उनके दर्शन कर आए और प्रणवजीके पुत्र नरेन्द्र भी सपत्नीक वहाँ जाते रहते हैं ।

श्रीभद्रकालीजीका मन्दिर

श्री १०८ स्वामीजीकी ही प्रेरणासे श्रीरामलाल ढंढा और उनके बन्धुओंने श्रीभद्रकालीकी बड़ी दिव्य प्रतिमा जयपुरमें बनवाई और लुधियानेमें लाकर प्रतिष्ठित की । इस प्रकारकी दिव्य प्रसन्नवदना श्रीभद्रकालीजीकी मूर्ति समस्त भारतमें दूसरी नहीं है । इसी मन्दिरमें दंडी साधुओंके लिये आश्रम भी बना हुआ है जहाँ वर्ष भर दो-चार दंडी स्वामी निरन्तर निवास करते ही रहते हैं ।

दंडीवाड़ा

श्री १०८ स्वामीजी महाराजके आदेशसे ही अब उनके वर्तमान आश्रमके पास ही लुधियानेके अनेक भक्तोंने एक सुन्दर दण्डीवाड़ा बनवा दिया है जिसमें लगभग आठ-दस दंडी स्वामी नियमित रूपसे निवास कर सकते हैं और जिसके साथ पूजन, भजन, कीर्तन इत्यादिके लिये भी व्यवस्था है ।

विश्वास है कि लुधियानावालोंकी यह धार्मिक प्रवृत्ति निरन्तर बनी रहेगी और श्रीस्वामीजी महाराजकी अपार अनुकम्पासे उनका निरन्तर कल्याण होता रहेगा ।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

मठाम्नाय

जिस समय नास्तिक, अनात्मवादी बौद्ध लोग, वैदिक धर्म, कर्म, आचार, व्यवहारकी मर्यादाको समूल नष्ट करनेकी चेष्टा कर रहे थे तथा धर्म-प्रधान भारत भूमिमें सनातनधर्मको लुप्त करनेके निमित्त वैदिक धर्मपर अनेक प्रकारसे प्रहार कर रहे थे, उस समय शङ्कर भगवान्ने स्वयं श्रीमत् शङ्कराचार्य स्वरूपसे अवतार धारण करके सनातनधर्मकी रक्षा की।

श्रीमच्छङ्कराचार्यजीने युधिष्ठिर संवत्के वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिको रविवारके दिन दक्षिण प्रदेशके केरल राज्यके अन्तर्गत पूर्णा- नदीके तीरपर केलादी नामक ग्राममें धर्मात्मा शिवगुरु नामक ब्राह्मण पिताके घर सती-साध्वी सुभद्रा माताके उदरसे जन्म ग्रहण किया था।

श्रीशंकराचार्यजी अलौकिक विभूति थे। जन्म ग्रहण करनेके उपरान्त उन्होंने प्रथम वर्षमें ही मातृभाषामें निपुणता प्राप्त की, द्वितीय वर्षमें पुराण, इतिहास, स्मृति आदि ग्रन्थोंको पूर्ण रूपसे मथ डाला, तृतीय वर्षमें चूडाकर्म संस्कारके अनन्तर उनके पिताका शरीरान्त हो गया, पाँचवें वर्षमें उपनयन संस्कार होनेके पश्चात् वे विद्या प्राप्त करनेके निमित्त गुरुकुलमें गए, सातवें वर्षमें सब विद्याओंका पूर्ण अध्ययन करके वे अपने घर लौट आए, आठवें वर्षमें वे एक दिन नदीमें स्नान करने गए तो ग्राहने पकड़ लिया किन्तु जब उन्होंने संन्यास लेनेकी प्रतीज्ञा की तो उसने छोड़ दिया। इसपर अपनी माताजीसे आज्ञा लेकर उन्होंने गृहत्याग कर दिया। गृहस्थाश्रम त्यागकर वे नर्मदा नदीके तटपर विचरने लगे। वहाँ उन्होंने श्रीमद्गोविन्दभगवत्पाद-जीसे सर्वस्व त्यागकर संन्यासकी दीक्षा ली। बारहवें वर्षसे परमानन्दमग्न होकर, गुरुजीसे आज्ञा लेकर वे प्रस्थानत्रयीके अध्ययनार्थ काशीपुरी पधारे। काशीजीमें निवास करके और प्रस्थानत्रयी तथा अन्य ग्रन्थोंका पूर्ण रूपसे अध्ययन करके अपनी चौदह वर्षकी अवस्थामें श्रीमत् शङ्कराचार्य महाराजने काशीसे दिग्विजयके निमित्त भारतवर्षमे भ्रमण करना आरम्भ किया। क्रमशः

शास्त्रार्थ करके नास्तिक, बौद्ध, द्वैतवादी, अधर्माचारी आदि सब पाखंडियोंको पराजित करके पूर्ण रूपसे इन्होंने सनातनधर्मकी रक्षा की। वैदिक धर्म, कर्म उपासनादिको सदैव सुरक्षित रखनेके निमित्त उन्होंने भारतवर्षको चार खण्डोंमें विभक्त करके उनमें सनातनधर्मके रक्षार्थ चार मठोंको पृथक्-पृथक् स्थापित कर दिया और उन मठोंमें अपने योग्य शिष्योंको मठाधीश बनाकर उन्हें यथोचित धर्मकी रक्षाके निमित्त उपदेश दिया। वे चार मठ ये हैं :—

(१) युधिष्ठिर संवत् २६४६ में कार्तिक शुक्ला पञ्चमीको बदरिकाश्रममें ज्योतिर्मठ स्थापित्त करके श्रीत्रोटकाचार्यजीको मठाधीश बनाया जिसे सब लोग जोशीमठ कहते हैं।

(२) युधिष्ठिर संवत् २६४८ में कार्तिक शुक्ला पंचमीको द्वारकामें शारदा मठ स्थापित करके श्रीहस्तामलकाचार्यजीको वहाँका मठाधीश बनाया।

(३) युधिष्ठिर संवत् २६४८ में फाल्गुन शुक्ला नवमीको रामेश्वरम्में श्रृंगेरी मठ स्थापित करके श्रीसुरेश्वराचार्यजीको उसका मठाधीश बनाया।

(४) युधिष्ठिर संवत् २६५५ में वैशाख शुक्ला नवमीको जगन्नाथपुरीमें गोवर्धन मठ स्थापित करके श्रीपद्मपादाचार्यजीको मठाधीश बनाया।

इस प्रकार नास्तिकोंका मूल नष्ट करके और वैदिक सनातन धर्मका पूर्ण रूपसे प्रचार करके श्रीजगद्गुरु श्री ११०८ श्रीमच्छङ्कराचार्यजी महाराज बत्तीस वर्षकी अवस्थामें अपने परमात्म-रूपमें लीन हो गए।

—स्वामी श्रीमहादेवाश्रम

॥ ॐ तत्सत् ॥

मठाम्नाय

(१) शारदा मठ

प्रथमः पश्चिमाम्नायः शारदामठ उच्यते।
कीटवारः सम्प्रदायस्तस्य तीर्थाश्रमौ शुभौ ॥ १ ॥

द्वारकाख्यं हि क्षेत्रं स्यात् देवः सिद्धेश्वरः स्मृतः ।
भद्रकाली तु देवीस्यादाचार्यो विश्वरूपकः ।
गोमतीतीर्थममलं ब्रह्मचारिस्वरूपकः ।
सामवेदस्य वक्ता च तत्र धर्मं समाचरेत् ॥ ३ ॥

जीवात्मपरमात्मैक्यबोधो यत्र भविष्यति ।
तत्त्वमसि महावाक्यं गोत्रोऽविगत उच्यते ॥ ४ ॥

सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रा महाराष्ट्रास्तथान्तराः ।
देशाः पश्चिमदिक्स्था ये शारदामठभागिनः ॥ ५ ॥

त्रिवेणीसङ्गमे तीर्थे तत्त्वमस्यादिलक्षणे ।
स्नायात्तत्त्वार्थभावेन तीर्थनामा स उच्यते ॥ ६ ॥

आश्रमग्रहणे प्रौढ आशापाशविवर्जितः ।
यातायातविनिर्मुक्तः एष आश्रम उच्यते ॥ ७ ॥

कीटादयो विशेषेण वार्यन्ते जीवजन्तवः ।
भूतानुकम्पया नित्यं कीटवारः स उच्यते ॥ ८ ॥

स्वस्वरूपं विजानाति स्वधर्मपरिपालकः ।
स्वानन्दे क्रीडितो नित्यं स्वरूपो बटुरुच्यते ॥ ९ ॥

[भारतके पश्चिमकी ओर द्वारकाजीमें शारदा मठ है जिसका कीटवार सम्प्रदाय है। तीर्थ और आश्रम, इस मठके संन्यासियोंकी उपाधियाँ हैं। द्वारका इनका क्षेत्र है। देवता सिद्धेश्वर हैं। देवी भद्रकाली हैं। आचार्य विश्वरूप हैं। गोमती तीर्थ है। ब्रह्मचारीकी उपाधि स्वरूप है। वेद सामवेद है। महावाक्य "तत्त्वमसि" है। गोत्र अविगत है। सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र तथा अन्य उनके अन्तर्गत पश्चिम दिशाके देश शारदा मठके अधीन रक्खे गए हैं।

तत्त्वमसि आदि लक्षणसे युक्त त्रिवेणी तीर्थ-संगममें तत्त्वार्थ भावसे जो स्नान करता है, उसको तीर्थ कहते हैं। आशा-रूपी पाशसे विमुक्त होकर जो संन्यास आश्रममें दृढ रहता तथा यात-आयात भावना अर्थात् आवागमनसे रहित हो जाता है उसको आश्रम कहते हैं। कीट आदि जीवोंकी जो हिंसा नहीं करता और सब प्राणियोंपर दया-दृष्टि रखता है उसको कीटवार कहते हैं। जो अपने आत्म-स्वरूपको जानता, स्वधर्मका पालन करता और अपने आत्मानन्दमें क्रीडा करता है, उसको स्वरूप कहते हैं।]

(२) गोवर्धन मठ

पूर्व्वाम्नायो द्वितीयः स्याद्गोवर्द्धनमठः स्मृतः।
भोगवारः सम्प्रदायो वनारण्ये पदे स्मृते ॥ १ ॥
पुरुषोत्तमं तु क्षेत्रं स्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता।
विमलाख्या हि देवीस्यादाचार्यः पद्मपादकः ॥ २ ॥
तीर्थं महोदधि प्रोक्तं ब्रह्मचारी प्रकाशकः।
महावाक्यं च तत्र स्यात् प्रज्ञानं ब्रह्म चोच्यते ॥ ३ ॥
ऋग्वेदपठनं चैव कश्यपः गोत्रमुच्यते।
अङ्गबङ्गकलिङ्गश्च मगधोत्कलबर्ब्बराः ॥ ४ ॥
गोवर्द्धनमठाधीनाः देशाः प्राचीव्यवस्थिता।
सुरम्ये निर्जने स्थाने वने वासं करोति यः ॥ ५ ॥
आशान्बधविनिर्मुक्तो वननामा स उच्यते।
अरण्ये संस्थिते नित्यमानन्दे नन्दने वने ॥ ६ ॥
त्यक्त्वा सर्वमिदं विश्वमारण्यं परिकीर्त्यते।
भोगो विषय इत्युक्तो वार्य्यते येन जीविनाम् ॥ ७ ॥
सम्प्रदायो यतीनाञ्च भोगवारः स उच्यते।
स्वयं ज्योतिर्विजानाति योगयुक्तिविशारदः ॥ ८ ॥
तत्त्वज्ञानप्रकाशेन तेन प्रोक्तः प्रकाशकः।

[भारतके पूर्वकी ओर जगन्नाथजीमें गोवर्धन मठ है। भोगवार सम्प्रदाय है। वन और अरण्य इस मठके संन्यासियोंकी उपाधियाँ हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र है। जगन्नाथजी देवता हैं। विमलाख्या देवी हैं। आचार्य पद्मपाद हैं। महोदधि तीर्थ है। ब्रह्मचारीकी उपाधि प्रकाश है। वेद ऋग्वेद है। महावाक्य "प्रज्ञानं ब्रह्म" है। कश्यप गोत्र है।

बिहार, बङ्गाल, उड़ीसा, मगध आदि पूर्व दिशाके प्रान्त गोवर्धन मठके अधीन रक्खे गए हैं।

सुन्दर निर्जन वनमें जो वास करता और आशा बन्धनसे विमुक्त रहता है, उसकी उपाधि 'वन' है। जो अरण्यमें रहता और परमात्मारूपी नन्दन वनमें आनन्दित रहता हुआ समस्त सांसारिक भावनाओंको त्याग देता है, उसकी उपाधि 'अरण्य' है। जिसके द्वारा प्राणी भोग आदि विषयोंसे निवृत्ति

प्राप्त करते हैं, यतियोंके उस सम्प्रदायको भोगवार कहते हैं। तत्त्वज्ञान-प्रकाशके द्वारा जो स्वयम् आत्म-ज्योतिको जानता तथा योग-युक्ति-विशारद है, उसको प्रकाश कहते हैं।]

(३) ज्योतिर्मठ

तृतीयस्तूत्तराम्नायो ज्योतिर्नाम मठो भवेत्।
श्रीमठश्चेति वा तस्य नामान्तरमुदीरितम् ॥ १ ॥
आनन्दवार विज्ञेयः सम्प्रदायोऽस्य सिद्धिदः।
पदानि तस्य ख्यातानि गिरिपर्व्वतसागराः ॥ २ ॥
बदरीशाश्रमः क्षेत्रं देवो नारायणः स्मृतः।
पूर्णागिरि च देवी स्यादाचार्य्यस्त्रोटकः स्मृतः ॥ ३ ॥
तीर्थञ्चालकनन्दाख्यं ह्यानन्दो ब्रह्मचार्य्यभूत्।
'अयमात्मा ब्रह्म' चेति महावाक्यमुदाहृतम् ॥ ४ ॥
अथर्व्ववेदवक्ता च भृग्वाख्यो गोत्रमुच्यते।
कुरुकाश्मीरकम्बोजपाञ्चालादिविभागतः ॥ ५ ॥
ज्योतिर्मठवशा देशा उदीची दिगवस्थितः।
वासो गिरिवने नित्यं गीताध्ययनतत्परः ॥ ६ ॥
गम्भीराचलबुद्धिश्च गिरिनामा स उच्यते।
वसन् पर्व्वतमूलेषु प्रौढं ज्ञानं बिभर्ति यः ॥ ७ ॥
सारासारे विजानाति पर्व्वतः परिकीर्त्यते।
तत्त्वसागरगम्भीरो ज्ञानरत्नपरिग्रहः ॥ ८ ॥
मर्य्यादां नैव लङ्घेत सागरः परिकीर्त्यते ॥ ९ ॥
आनन्दो हि विलासश्च वार्य्यते येन जीविनाम्।
सम्प्रदायो यतीनां च नन्दवारः स उच्यते ॥ १० ॥
सत्यं ज्ञानमनन्तं यो नित्यं ध्यायेत तत्त्ववित्।
स्वानन्दे रमते चैव आनन्दः परिकीर्त्तितः ॥ ११ ॥

[उत्तर प्रान्तमें बदरीनारायणजीमें ज्योतिर्मठ है। आनन्दवार इसका सम्प्रदाय है। गिरि, पर्वत और सागर इस मठके संन्यासियोंकी उपाधियाँ हैं। क्षेत्र बदरिकाश्रम है। बद्रीनारायण देवता हैं। पूर्णागिरि देवी हैं। आचार्य त्रोटकाचार्य है। तीर्थ अलकनन्दा है। ब्रह्मचारीकी उपाधि आनन्द है। वेद

अथर्वण है। महावाक्य "अयमात्मा ब्रह्म" है। भृग्वाख्य गोत्र है। कुरु, काश्मीर कम्बोज, पाञ्चाल आदि उत्तर दिशाके प्रान्त ज्योतिर्मठके अधीन हैं।

जो गिरि तथा वनमें निवास करता है और नित्य गीताके अध्ययनमें तत्पर रहता है उस गम्भीर अचल बुद्धिवालेको गिरि कहते हैं। जो पर्वतके मूलपर वास करता है, आत्मज्ञानमें प्रौढ है तथा जो सार और असारको जानता है, उसको पर्वत कहते हैं। जो तत्त्वसागरमें गम्भीर है, जिसने ज्ञान-रत्नको धारण कर लिया है तथा जो मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता उसको सागर कहते हैं। जिसने प्राणियोंको सांसारिक विलास-रूपी आनन्दसे मुक्त कर दिया है, यतियोंके उस सम्प्रदायको नन्दवार कहते हैं। जो तत्त्ववित् "सत्यं ज्ञानमनन्तं" का नित्य ध्यान करता तथा आत्मानन्दमें रमण करता है, उसको आनन्द कहते हैं।]

(४) शृङ्गेरी मठ

चतुर्थो दक्षिणाम्नायः शृङ्गेरी तु मठो भवेत्।
सम्प्रदायो भूरिवारो भूर्भुवः गोत्रमुच्यते॥ १॥

पदानि त्रीणि ख्यातानि सरस्वती भारती पुरी।
रामेश्वराह्वयक्षेत्रमादिवराहो च देवता॥ २॥

कामाक्षी तस्य देवी स्यात् सर्व्वकामफलप्रदा।
पृथ्वीधराख्य आचार्य्यस्तुङ्गभद्रेति तीर्थकम्॥ ३॥

चैतन्याख्यो ब्रह्मचारी यजुर्वेदस्य पाठकः।
अहं ब्रह्मास्मि तत्रैव महावाक्यं समीरितम्॥ ४॥

आन्ध्रद्राविडकर्णाटकेरलादिप्रभेदतः।
शृङ्गेर्य्यधीना देशास्ते ह्यवांचि दिगवस्थितः॥ ५॥

स्वरज्ञानरतो नित्यं स्वरवादी कवीश्वरः।
संसार-सागरासारहर्त्ताऽसौ हि सरस्वती॥ ६॥

विद्याभारेण सम्पूर्णः सर्वभारं परित्यजन्।
दुःखभारं न जानाति भारती परिकीर्त्यते॥ ७॥

ज्ञानतत्त्वेन संपूर्णः पूर्णतत्त्वपदे स्थितः।
परं ब्रह्मरतो नित्यं पुरीनामा स उच्यते॥ ८॥

भूरिशब्देन सौवर्ण्यं वार्य्यते येन जीविनाम्।
सम्प्रदायो यतीनाञ्च भूरिवारः स उच्यते॥ ९॥

चिन्मात्रं चेतिरहितं अनन्तमजरं शिवम् ।
यो जानाति स वै विद्वान् चैतन्यं तद्विधीयते ॥ १० ॥
मर्य्यादैषा सुविज्ञेया चतुर्मठविधायिनी ।
तानेतान् समुपाश्रित्य ह्याचार्य्याः स्थापिता क्रमात् ॥ ११ ॥

[भारतके दक्षिण प्रदेशके शृङ्गेरी नामक स्थानमें शृङ्गेरी मठ है। जिसका भूरिवार सम्प्रदाय है। सरस्वती, भारती, पुरी इस मठके संन्यासियोंकी उपाधियाँ हैं। रामेश्वर क्षेत्र है। आदिवराह देवता हैं। देवी कामाक्षी हैं। तीर्थ तुङ्गभद्रा हैं। आचार्य पृथ्वीधर हैं। ब्रह्मचारीकी उपाधि चैतन्य है। वेद यजुर्वेद है। महावाक्य "अहं ब्रह्मास्मि" है। भूर्भुवः गोत्र है।

आन्ध्र, द्रविड, कर्णाटक आदि दक्षिण दिशाके प्रान्त शृङ्गेरी मठके अधीन रक्खे गए हैं। जो स्वर-ज्ञानमें निरन्तर रत रहता है, जो स्वरवादमें कवीश्वर है, संसारके सारासारको जिसने हस्तामलकवत् कर लिया है, उसको सरस्वती कहते हैं। विद्याभारमें जो पूर्ण है, अन्य सर्व भारोंको जिसने त्याग दिया है तथा जो दुःख भारको नहीं जानता है उसको भारती कहते हैं। जो ज्ञान-तत्त्वसे सम्पूर्ण होकर पूर्ण तत्त्वके पदपर स्थित है तथा जो परब्रह्ममें नित्य रत रहता है, उसको पुरी कहते हैं। भूरि शब्दसे अपने-अपने वर्णमें सुरक्षित रहनेके निमित्त जो प्राणियोंको सुशिक्षित किए रखता है उस यती-सम्प्रदायको भूरिवार कहते हैं। जो चिन्मात्र, ईति-रहित, अनन्त, अजर शिवजीको जानता है, उस विद्वान्को चैतन्य कहते हैं। इस प्रकार चारों मठोंकी मर्यादा नियत करके उनके सञ्चालनके निमित्त जगद्गुरु ११०८ श्रीमत् शङ्कराचार्य महाराजने अपने योग्य शिष्योंको आचार्य पदपर नियत कर दिया।

इन सम्प्रदायोंके यतियोंको किस प्रकार आचरण करना चाहिए इसका विवरण महानुशासनमें इस प्रकार दिया गया है—

अथ महानुशासनम्

आम्नायाः कथिताह्येते यतीनाञ्च पृथक् पृथक् ।
ते सर्वे चतुराचार्य्या नियोगेन यथाक्रमम् ॥ १ ॥
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा ।
कुर्वन्त्वेवं सततमटनं धरणीतले ॥ २ ॥
स्वस्वराष्ट्रप्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम् ।
मठे तु नियतो वास आचार्य्यस्य न युज्यते ॥ ३ ॥

वर्णाश्रमसदाचारा अस्माभिर्यें प्रसाधिताः ।
रक्षणीयस्तु एवैते स्वे स्वे भागे यथाविधि ॥ ४॥
यतो विनष्टिर्महती धर्मस्यान्न प्रजायते ।
मान्द्यं संत्याज्यमेवात्र दाक्ष्यमेव समाश्रयेत् ॥ ५ ॥
परस्परविभागे तु प्रवेशो न कदाचन ।
परस्परं न कर्त्तव्या आचार्य्येण व्यवस्थितिः ॥ ६ ॥
मर्य्यादाया विनाशेन लुप्येरन्नियमाः शुभाः ।
कलहाङ्गारसम्पत्तिरतस्तां परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥
परिव्राजार्य्यमर्य्यादां मामकीनां यथाविधि ।
चतुःपीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादिविशारदः ।
योगज्ञः सर्व्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात् ॥ ९ ॥
उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग्भवेत् ।
अन्यथा रूढपाठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ॥ १० ॥
न जातु मठमुच्छिन्द्यादधिकारिण्युपस्थिते ।
विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्म्मः सनातनः ॥ ११ ॥
अस्मत्पीठसमारूढः परिव्राडुक्तलक्षणः ।
अहमेवेति विज्ञेयो यस्य देव इति श्रुतेः ॥ १२ ॥
एकं एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणसंमतः ।
तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहुयुंज्यते क्वचित् ॥ १३ ॥
सुधन्वानां समौत्सुक्यं निवृत्यै धर्म्महेतवे ।
देवराजोपचारांश्च यथावदनुपालयेत् ॥ १४ ॥
केवलं धर्ममुद्दिश्य विभवो बाह्यचेतसा ।
विहितश्चोपकाराय पद्मपत्रनयं व्रजेत् ॥ १५ ॥
सुधन्वा हि महाराजस्तदन्ये च नरेश्वराः ।
धर्म्मपारं पुरीमेतां पालयन्तु निरन्तरम् ॥ १६ ॥
चातुर्वर्ण्यं यथायोग्यं वाङ्मनःकायकर्म्मभिः ।
गुरोः पीठं समर्चेत विभागानुक्रमेण वै ॥ १७ ॥
धारामालंब्य राजानः प्रजाभ्यः करभागिनः ।
कृताधिकारा आचार्य्या धर्म्मतस्तद्वदेव हि ॥ १८ ॥

धर्म्मो मूलं मनुष्याणां सदाचार्य्यावलम्बनः।
तस्मादाचार्य्यः सुमणेः शासन सर्व्वतोऽधिकम् ॥ १९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शासनं सर्वसम्मतम्।
आचार्य्यस्य विशेषेण ह्यौदार्य्यं भरभागिनः ॥ २० ॥

निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
आचार्य्याः क्षिप्तदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवः ॥ २१ ॥

इत्येवं मनुरप्याह गौतमोऽपि विशेषतः।
विशिष्टशिष्टाचारोऽपि मूलादेव प्रसिद्धयति ॥ २२ ॥

तस्मादाचार्योपदेशो दण्डश्च परिपाल्यते।
तस्मादाचार्यभूपालावनिन्द्यौ सर्वसम्मतौ ॥ २३ ॥

धर्मस्य पद्धतिरेषा जगतः स्थितिहेतवे।
सर्ववर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रे विधीयते ॥ २४ ॥

कृते विश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायां ऋषिसत्तमः।
द्वापरे व्यास एव स्यात् कलावत्र भवाम्यहम् ॥ २५ ॥

नित्य-कर्म-विधि और देव-पूजनकी पद्धति

संसारमें जन्म लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ तीन ऋण लेकर आता है—देव-ऋण, पितृ-ऋण और ऋषि-ऋण। इन ऋणोंसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्यको विशेष प्रकारसे आचरण करना चाहिए। देव-ऋणसे मुक्त होनेके लिए यज्ञ और देव-पूजन करना चाहिए; पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये समान कुल-शीलकी कन्यासे विवाह करके सन्तान उत्पन्न करना चाहिए और ऋषि-ऋणसे उऋण होनेके लिये अनेक बिद्याओंका अध्ययन और अध्यापन करना चाहिए।

ब्राह्ममुहूर्त्तमें जागना

इन तीनों प्रकार के ऋणोंसे उऋण होनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको अपना जीवन विशेष प्रकारके संयमके साथ बिताना चाहिए, जिसका सबसे पहला नियम यह है कि प्रत्येक मनुष्यको ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठना चाहिए। रात्रिके चार प्रहरोंमेंसे चौथे प्रहरका तीसरा भाग ब्राह्म मुहूर्त्त कहलाता है। सूर्योदयसे ५८ पल पूर्वतक प्रातःकाल, प्रातःकालसे ५७ पल पूर्वतक अरुणोदय और अरुणोदयसे ५५ पल पूर्वतक उषःकाल होता है। जो व्यक्ति ब्राह्म मुहूर्त्तमें

सोता है उसका सारा पुण्य क्षीण हो जाता है। ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठनेवालेको रोग आलस्य नहीं होते, आयु बढ़ती है, बुद्धि निर्मल होती है, विवेक बढ़ता है और शरीर स्वस्थ रहता है।

सूर्यका दर्शन

सूर्यका दर्शन सदा बड़ा पुण्यकारी होता है किन्तु उदय, अस्त और मध्याह्नके समय तथा जलमें पड़े हुए सूर्यके प्रतिबिम्बको और ग्रहण होते हुए सूर्यमण्डलको नहीं देखना चाहिए। इससे नेत्रकी ज्योति कम या नष्ट हो जाती है। प्रातःकाल उठकर यह श्लोक पढ़ते हुए दोनों हाथ खोलकर देख लेने चाहिएं क्योंकि हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, हथेलीमें सरस्वती और हाथके मूलमें ब्रह्माजीका निवास रहता है। इसलिये प्रातःकाल हाथोंका दर्शन करना चाहिए—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥

इसके पश्चात् पृथ्वीको हाथ जोड़कर और प्रार्थना करके पृथ्वीपर पैर रखना चाहिए।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमंडले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इसके पश्चात् अपने-अपने धर्म, विश्वास और निष्ठाके अनुसार अपने-अपने देवताओंका स्मरण करना चाहिए और गणेश, लक्ष्मी तथा तुलसीकी वन्दना करके गौ, गुरु, माता-पिता और वृद्धोंको प्रणाम करना चाहिए क्योंकि नित्य प्रति अपनेसे बड़ोंको प्रणाम करनेसे आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥

नित्यकर्म

शौचाचार : जिनका यज्ञोपवीत हो चुका हो उन्हें चाहिए कि शौच या लघुशंकाके समय यज्ञोपवीतको दाहिने कानमें लपेट ले और अपना सिर वस्त्रसे ढक ले जिससे यज्ञोपवीत अशुद्ध न हो और शौच होनेसे शरीरसे जो गर्मी निकल जाती है उसके कारण सहसा सर्दीका प्रभाव न हो क्योंकि कानके द्वारा ही शरीरमें शीतका प्रवेश होता है। कुछ लोग यज्ञोपवीतको ही सिरपरसे घुमाकर चढ़ा लेते हैं किन्तु उससे सर्दी-गर्मीके दोषका निराकरण

नहीं होता। याज्ञवल्क्य-स्मृतिके अनुसार मौन होकर दाहिने कानपर यज्ञोपवीत टाँगकर दिनमें उत्तरको ओर मुँह करके और रात्रिको दक्षिणकी ओर मुँख करके मल-मूत्र इत्यादि करना चाहिए और उस समय जल-पात्रका स्पर्श नहीं करना चाहिए। इसके पश्चात् मृत्तिकासे मूत्राशयको एक बार और मलाशयको तीन बार मृत्तिका लगाकर फिर भलीभाँति जलसे शुद्ध करके खड़े होकर दाहिने हाथसे लाँग बाँध चुकनेपर जल-पात्रको उठावे अर्थात् बाएँ हाथसे न तो पात्रका स्पर्श करे न धोतीका। फिर रक्खी हुई मिट्टीको तीन भागोंमें बाँट ले। पहले भागसे बाँएँ हाथको दस बार, दूसरे भागसे दोनों हाथोंको सात बार और तीसरे भागसे जलपात्रको माँजकर धो ले। इसके पश्चात् बाँएँ और दाहिने पैरको चार-चार बार धोकर पात्रको भली-भाँति माँज-धोकर अपनी वाँईं ओर बारह कुल्ले करे। मूत्राशय मलाशय तथा हाथ आदि धोनेके नियम गृहस्थके लिये हैं। ब्रह्मचारीको इससे दूना, वानप्रस्थको इससे तिगुना और संन्यासीको चौगुना शौचाचार करना चाहिए। यह विधि दिनके लिये है। रात्रिको यह शौचाचार आधा, रोगमें या शीघ्रतामें उसका भी आधा और यात्रामें उसका भी आधा करना चाहिए। शौचाचारसे बची हुई मिट्टीको राक्षस ग्रहण कर लेते हैं इसलिये उसे भलीभाँति धोकर बहा देना चाहिए। तात्पर्य इतना ही है कि भली-भाँति शरीरके अंगोंको स्वच्छ कर लेना चाहिए। शौचके समय बातचीत नहीं करनी चाहिए, नाक-मुख बन्द रखना चाहिए क्योंकि साधारण स्वाथ्यकी दृष्टिसे भी नाक और मुख के खुले रहनेसे मलकी दुर्गन्ध और उसका दूषित वायु प्रविष्ट होनेकी संभावना रहती है।

शिष्टाचार

मनुस्मृतिके अनुसार अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, कुएं, तालाब (वापी आदि), ब्राह्मण, गौ और पवनके समीप मल-मूत्र त्याग करनेवालेकी बुद्धिका नाश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जिसे हम आदरकी दृष्टिसे देखते हैं उसके सम्मुख मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए,। यह साक्षात् अशिष्टताका लक्षण है। इतना ही नहीं, किसीके भवन, मन्दिर, पाठशाला या सभाभवनके पास भी मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए, न कुएंपर जूता पहनकर चढ़ना चाहिए। साधारण शिष्टाचारमें इस प्रकारका व्यवहार निषिद्ध समझा जाता है —

> प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
> प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥

इसके अतिरिक्त सामान्य स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी यह विधान किया गया है कि जलाशय (तालाब) से दस हाथ दूरपर लघुशंका और सौ हाथ दूरपर मल त्याग करे। इसी प्रकार नदी तथा जलतीर्थसे चालीस हाथ दूर लघुशंका करे और चार सौ हाथ दूरीपर मल त्याग करे। जलकी धारोंमें तो मलमूत्रका त्याग करना अत्यन्त निषिद्ध और निन्दनीय है ही। किसी जल-तीर्थ और नदीसे चुल्लूमें जल लेकर बाहर जाकर हाथ धोना या कुल्ला करना चाहिए, जलाशय या नदीके भीतर नहीं क्योंकि उससे जलमें दोष आता है और रोगके कीटाणु फैलनेकी आशंका बनी रहती है।

धर्म-शास्त्रोंने इस प्रकार अत्यन्त विवेकके साथ सब परिस्थितियोंमें आचारका विधान कर दिया है। इसी आधारपर शंखस्मृतिमें स्पष्ट कर दिया गया है कि-अपने घरमें सब बातोंमें पूर्ण आचारका पालन करना चाहिए। दूसरेके घर पहुँचकर उसका भी आधा कर देना चाहिए जिससे दूसरेको असुविधा न हो। शूद्रके घर जाकर उसका भी आधा कर देना चाहिए क्योंकि वहाँ सब प्रकारकी सुविधा नहीं मिल सकती और यात्रामें तो शूद्रके ही समान आचरण करना चाहिए—

स्वगेहे पूर्णमाचारं परगेहे तदर्धकम्।
तदर्धं शूद्रगेहे तु पथि शूद्रवदाचरेत्॥

मौन आचरण

मौन रहनेसे बड़ी शक्ति मिलती है। आयुर्वेदमें तो यहाँतक लिखा है कि शुक्रक्षयकी अपेक्षा वाक्क्षय कहीं अधिक हानिकर और भयंकर होता है। इसीलिये मौनका हमारे यहाँ बड़ा महत्त्व है। अत्रि-स्मृतिमें विशेष रूपसे बताया गया है कि मल-मूत्र-त्याग, मैथुन, हवन, लघुशंका, दातौन, स्नान, भोजन और जपके समय सदा मौन रहना चाहिए—

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रवे दन्तधावने।
स्नानभोजनजापेषु सदा मौनं समाचरेत्॥

विशेषाचार

जम्हाई लेने, छींकने और थूकनेके समयके लिये भी एक विशेष आचारका विधान है। छींक आनेपर 'शतं जीवेम शरदः' कहना चाहिए और यदि कोई बालक सामने छींक रहा हो तो उसे 'शतं जीव शतं जीव' कहना चाहिए। कोई गिर पड़े तो उसे 'उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ' या 'उठो उठो'

कहना चाहिए। जम्हाई आनेपर चुटकी बजानी चाहिए। धर्मशास्त्रके अनुसार इस प्रकारका व्यवहार करनेवालेको स्वर्ग मिलता है और न करनेवालेको दोष और पापका भागी बनना पड़ता है।

शंखायनके मतानुसार छींकने, थूकने, निद्रा लेने, कपड़ा पहनने और नेत्रोंमें जल आ जानेसे जो दोष होता है वह दाहिने कानको अँगूठेसे स्पर्श करनेसे दूर हो जाता है। छींकके संवंधमें यह विश्वास किया जाता है कि किसी कार्यके आरंभमें यदि छींक हो जाय तो झगड़ा होता है, धीमी छींक हो या मनुष्य स्वयं छींके तो भयकी आशंका होती है किन्तु ऊँचे स्वरसे छींक हो तो शुभ मानी जाती है।

क्षौर

धर्म-शास्त्रमें विशेषतः वाराहीतन्त्रमें क्षौरके संबंधमें विधान दिया गया है कि एकादशी, अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, व्यतीपात या श्राद्धके दिन, रवि, मंगल और और शनिवारको, यात्राके समय, प्रातः-सन्ध्या करनेसे पूव और पुण्य काममें क्षौर नहीं कराना चाहिए। रविवारको क्षौर करानेसे एक मास, मंगलको क्षौर करानेसे आठ मास और शनिवारको क्षौर करानेसे सात मास आयु क्षीण होती है। इसके विपरीत बुधवारको क्षौर करानेसे पाँच, सोमवारको सात, गुरुवारको दस और शुक्रवारको क्षौर करानेसे ग्यारह मास आयु बढ़ती है किन्तु जिसका ज्येष्ठ पुत्र जीवित हो उसे शनिवारको क्षौर नहीं कराना चाहिए। साधारणतः गृहस्थको सोमवार और गुरुवारको क्षौर नहीं कराना चाहिए।

तैल-मर्दन

आयुर्वेदके अनुसार तैल-मर्दनसे शरीर नीरोग, स्वस्थ, स्फूर्त्तिशाली और कांतिमान् होता है, किसी प्रकारका चर्म-रोग शरीरमें नहीं हो पाता, रक्त शुद्ध होता है और चित्त प्रफुल्लित रहता है। आयुर्वेदमें कहा गया है कि तेलमें घीसे दस गुनी अधिक शक्ति होती है किन्तु खानेसे नहीं, लगानेसे—

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः।
पयसः दशगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम्॥
घृताद्दशगुणं तैलं मर्दने न तु भोजने।

किन्तु तैल-मर्दनके लिये भी यह विधान है कि रवि, मंगल, गुरु और

शुक्रवारको तथा षष्ठी, एकादशी, द्वादशी, अमावास्या, पूर्णिमा तिथियोंमें और संक्रान्ति, व्यतीपात, व्रत और श्राद्धके दिन तेल नहीं लगाना चाहिए किन्तु कार्तिक कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल यदि रवि, मंगल और गुरुवार भी पड़ते हों तब भी तेल लगा लेना चाहिए। उसी संबंधमें यह नियम दिया गया है कि रविवारको तेल लगानेसे ज्वर होता है, मंगलवारको मृत्यु, गुरुवारको हानि और शुक्रवारको दुःख होता है किन्तु रविवारको तेलमें पुष्प डालकर, गुरुवारको दूर्वा डालकर, मगलवारको मृत्तिका डालकर और शुक्रवारको गायका गोबर डालकर तेल लगानेसे दोष नहीं लगता। सुगन्धित तेल लगानेवाले तथा प्रतिदिन नियमसे तेल लगानेवालेको कभी कोई दोष नहीं लगता। जो नियमसे न लगाते हों उन्हें सोम, बुध तथा शनिवार को तेल लगाना चाहिए क्योंकि सोमवारको तेल लगानेसे शोभा, बुधवारको धन तथा शनिवारको सुख मिलता है—

तैलाभ्यंगे रवौ तापं सोमे शोभा कुजे मृतिः।
बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःख शनौ सुखम्॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका।
गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यंगो न दोषभाक्॥
नित्यमभ्यंगके चैव वासिते नैव दूषणम्।

दन्त-धावन

यद्यपि दाँतोंकी स्वच्छता अनिवार्य रूपसे नित्य ही करनी चाहिए किन्तु धर्म-शास्त्रके अनुसार संक्रांति, व्यतीपात, व्रत, उपवास, श्राद्धके दिन, प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमाको, रविवार तथा अपने जन्म-दिनकी तिथि, वार और नक्षत्रको दातौन नहीं करनी चाहिए वरन् उसके बदले बारह कुल्ले अधिक कर लेने चाहिएं।

इतना ही नहीं, दातौनके संबंधमें यह भी विधान है कि ब्राह्मणको दस, क्षत्रियको नौ, वैश्यको आठ, शूद्रको सात और स्त्रीको चार अंगुल लम्बी दातौन करनी चाहिए और यह देख लेना चाहिए कि आधी सूखी या बिना छिलकेकी या अशुद्ध स्थानपर पड़ी हुई और कीड़े लगी हुई दातौन न हो।

मुख स्वच्छ करनेके लिये भी यह नियम है कि मध्यमा, अनामिका तथा अंगूठेसे दाँत और मुख मलकर स्वच्छ करना चाहिए, तर्जनी उंगुलीसे

नहीं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सूर्योदयसे पहले पूर्वकी ओर मुख करके और सूर्योदयके पश्चात् उत्तरकी ओर मुख करके दातौन करनी चाहिए। दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुख करके कभी दातौन नहीं करनी चाहिए। दातौन धोकर उससे यह प्रार्थना करनी चाहिए—

ॐ आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते ।।

मुखदुर्गन्धनाशाय दन्तानां च विशुद्धये।
ष्ठीवनाय च गात्राणां कुर्वेऽहं दन्तधावनम् ।।

यह प्रार्थना करके दातौन करनी चाहिए, दातौन कर चुकनेके पश्चात् उसे चीरकर उससे जीभ छील लेनी चाहिए और फिर उसे धोकर फेंक देना चाहिए।

स्नान

प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें दो कान, दो आँख, नाक, मुख, रोमकूप तथा मल और मूत्रके नौ प्रकारके छिद्र हैं जो रात्रिमें शयन करते समय मल एकत्र करनेके कारण अपवित्र हो जाते हैं इसलिये उन्हें शुद्ध करनेके लिये स्नान अवश्य करना चाहिए। जो नित्य स्नान नहीं करता उसके अनेक रोग लग जाते हैं, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, शरीर दुगंध देने लगता है और आलस्य बढ़ता है। शास्त्रोंमें विधान है कि जलसे शरीर शुद्ध होता है, सत्यसे मन शुद्ध होता है, विद्या और तपसे आत्मा शुद्ध होता है और ज्ञानसे बुद्धि शुद्ध होती है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ।।

स्नान करते समय सबसे पहले वरुण देवकी प्रार्थना करनी चाहिए—

अपामधिपतिस्त्वं च तीर्थेषु वसतिस्तव।
वरुणाय नमस्तुभ्यं स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे ।।

इसके पश्चात् गंगाजीकी प्रार्थना करनी चाहिए—

विष्णुपादाब्जसंभूते गंगे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ।।

इसके पश्चात् नाभि-मात्र जलमें खड़े होकर तीर्थोंका आवाहन करना

चाहिए और देवताओंका स्मरण करना चाहिए किन्तु गंगाजीमें किसी भी तीर्थको स्मरण करनेकी आवश्यकता नहीं।

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहि मे तीर्थं तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

इस प्रकार जलकी प्रार्थना कर चुकनेपर फिर संकल्प लेकर 'प्रातःस्नानमहं करिष्ये' कहना चाहिए। गंगा आदि तीर्थोंमें स्नान करते समय मृत्तिका लेकर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर उसे लगावे -

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

मिट्टी लगानेसे रोम कूपोंमें भरा हुआ समस्त मल मिट्टीमें आ जाता है इसलिये मृत्तिका लगाकर, नाभितक जलमें खड़े होकर, तीर्थोंका आवाहन करके दोनों हाथोंसे जलको हिलाकर स्नान करना चाहिए क्योंकि जलके ऊपर इन्द्रकी दी हुई ब्रह्महत्या विराजमान रहती है। गङ्गाजीमें अन्य तीर्थोंका आवाहन करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल गङ्गाजीकी ही प्रार्थना पर्याप्त है। गङ्गाजीमें दातौन और कुल्ला नहीं करना चाहिए और स्नान करनेके पश्चात् गङ्गाजीमें न तो भीगी धोती बदलनी चाहिए, न तो निचोड़नी चाहिए। यदि घरमें स्नान करना हो तो पात्रमें जल लेकर पूर्वकी ओर मुख करके, तीर्थोंका आवाहन और संकल्प करके उस जलसे स्नान करना चाहिए। किन्तु उसके लिये भी यह नियम है कि संक्रांति, रविवार, सप्तमी, ग्रहण, सन्तानोत्पत्ति, मृतक अशौच, जन्मतिथिके दिन और अस्पृश्यको छू लेनेपर गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिए। जहाँतक हो नदी या कुएँके तत्काल निकले हुए जलसे स्नान करना चाहिए। उससे शरीरको शक्ति और स्फूर्ति मिलती है। किन्तु कभी नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि धोबीका कपड़ा धोनेका पत्थर और जितनी दूरतक धोए जानेवाले वस्त्रका छींटा पड़ता है उतनी दूरका जल अपवित्र हो जाता है।

रोग अथवा अन्य किसी कारणसे या असमर्थतासे स्नान करना संभव न हो तो पहुँचेतक हाथ और घुटनोंतक पैर धोकर तथा कपड़े बदलकर

कर या गीले कपड़ेसे शरीर पोंछकर दोनों घुटनोंके भीतर हाथ करके आचमन करनेसे स्नान हो जाता है।

स्नान करनेके अनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे जलके बाहर एक अंजलि जल छिड़क देना चाहिए जिससे स्नानके कारण जल दूषित करनेका दोष दूर हो जाता है—

यन्मया दूषितं तोयं शरीरमलसम्भवम्।
तस्य पापस्य शुद्धचर्थं यस्मै तत्तेऽमलोदकम्॥

इसके अनन्तर स्नानांग-तर्पण करके सन्ध्या आदि करे किन्तु उसके लिये भी नियम यह है कि जलमें सूखे वस्त्र पहनकर और जलके बाहर गीले वस्त्र पहनकर सन्ध्या नहीं करनी चाहिए। स्नान-दोष-निवारण-मन्त्रसे जलके बाहर अंजलि देकर नीचे लिखे मन्त्रसे अपनी दाहिनी ओर अपनी चोटी-का अग्रभाग निचोड़ देना चाहिए—

लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो ये व्यवस्थिताः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः॥

वस्त्रका विधान

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको कभी एक वस्त्र धारण करके भोजन, देवपूजन और सन्ध्या-तर्पण नहीं करना चाहिए। अँगोछा आदि दूसरा वस्त्र कन्धेपर अवश्य रख लेना चाहिए। जलमें सूखा वस्त्र पहनकर और स्थलपर गीला वस्त्र पहनकर जो सन्ध्या, तर्पण, सूर्यका पूजन और श्राद्ध इत्यादि करता है उसकी सब क्रिया निष्फल होती है। पितृ-कार्योंमें ऐसे वस्त्र नहीं धारण करने चाहिएँ जो जले, फटे या दूसरेके हों और उन ऊनी वस्त्रोंको भी नहीं पहनना चाहिए जिनमें कौवेकी बींट आदि लगी हुई हो।

आसन

धर्मशास्त्रमें आसनके संबंधमें यह व्यवस्था है कि जो मोक्ष और लक्ष्मी प्राप्त करना चाहता हो वह व्याघ्र–छालापर बैठकर सन्ध्या, पूजन या साधना करे; जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता हो वह काले मृगकी छालापर बैठकर साधना करे और अन्य कार्यों तथा उद्देश्योंके लिये मृगछाला, कम्बल कुशा तथा ऊनका आसन सबसे अधिक पवित्र होता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बाँसपर बैठनेसे दरिद्रता, पत्थरपर व्याधि, भूमिपर दुःख, छेद-वालीं लकड़ीपर अभाग्य, तृणपर धन और यशका नाश तथा पत्तोंपर बैठनेसे चित्तभ्रम होता है।

शिखा-बन्धन

शिखाके नीचे ज्ञान-चक्र होता है इसलिये उसकी रक्षाके निमित्त शिखाधारण करने का विधान है। शिखा बांधे-विना जो कर्म किया जाता है वह सब निष्फल होता है इसलिये नीचे लिखा मन्त्र या गायत्री मन्त्र पढ़कर शिखा बाँधनी चाहिए—

चिद्रूपिणि महामाये दिव्य तेजःसमन्विते।
तिष्ठ देवि शिखा-मध्ये तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे॥

तिलक, चन्दन और भस्म

बिना तिलक लगाए सन्ध्या, पितृकर्म तथा देव-पूजन आदि सब पुण्य कर्म निष्फल होते हैं। चन्दन आदिके अभावमें जलसे भी तिलक किया जा सकता है। उसके लिये नियम यह है कि ललाटमें केशवका, कंठमें पुरुषोत्तमका, नाभिमें नारायणका, हृदयमें वैकुंठका, बाँएं पार्श्वमें दामोदरका, दाहिने पार्श्वमें वामनका, दाहिनी भुजापर हरिका, बाँई भुजामें कृष्णका, बाँएं कानपर यमुनाका, दाँएं कानपर गंगाका और सिरपर हृषीकेशका ध्यान करते हुए चन्दन लगाते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

चन्दनस्य महत्पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा॥

जहाँ अग्निहोत्र होता हो वहाँ अग्निकुण्डका भस्म लगानेका बड़ा माहात्म्य है। प्रातःकाल जल-मिश्रित और सायंकाल सूखा भस्म लगाना चाहिए। 'ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः' कहकर ललाटमें, 'ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्' कहकर कंठमें, 'ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्' कहकर दोनों भुजाओंमें और 'ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' कहकर हृदयमें भस्म लगानी चाहिए।

कुशाका प्रयोग

भारतीय धार्मिक साहित्यमें कुशाका बड़ा महत्त्व माना गया है। कुशा पास रहनेसे भूत-प्रेत बाधा नहीं होती और जलमें कुशा डालकर स्नान करनेसे अनेक दोषोंका परिहार होता है। सब प्रकारके धार्मिक कृत्योंमें कुशाका प्रयोग होता है। तिब्बत और चीनमें भी कुशाका बड़ा सम्मान है। संभवतः यह संस्कार भारतसे ही वहाँ गया है।

सब प्रकारके धर्म-कार्यमें दो कुशाओंकी पवित्री दाहिने हाथकी अनामिका उँगलीकी जड़में और तीन कुशाओं की पवित्री बाँएं हाथकी अनामिका उँगलीकी जड़में धारण करनी चाहिए, उँगलीके पोरों या अन्य जोड़की लकीरोंपर नहीं। तीन कुशाओंका मोटक पितृकार्यमें दाहिने हाथमें और

देवकार्यमें बाँईं कटिमें धारण करना चाहिए। एक प्रादेश (अंगूठेसे तर्जनीतक) लम्बा कुश तो दर्भ कहालाता है, दो प्रादेशका कुश और हाथकी कोहनीसे कनिष्ठिका उंगलीकी जड़तक लम्बा बर्हि कहलाता है। इससे अधिक लम्बा तृण होता है जिसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। किसी प्रकारके कार्यमें मार्ग, चिता-स्थान, यज्ञमें बिछा हुआ, पिंडके नीचे या ऊपर रक्खा हुआ और आसनकी कुशाको काममें नहीं लाना चाहिए। भाद्रपदकी अमावास्याको हुम् फट् कहकर जड़-सहित कुशा उखाड़नी चाहिए। यह कुशा बारह मास पवित्र मानी जाती है। इसके अतिरिक्त किसी भी अमावस्याको उखाड़ी हुई कुशा एक मासतक, पूर्णिमाको उखाड़ी हुई पन्द्रह दिनतक और किसी अन्य दिन उखाड़ी हुई कुशा उसी दिन पवित्र रहती है। किसी भी काममें लानेसे पूर्व नीचे लिखे मन्त्रसे कुशोंका पूजन करना चाहिए—

ब्रह्मणा सह संभूत परमेष्ठि निसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव ॥

यज्ञोपवीत

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भ या जन्मसे आठवें वर्षमें, क्षत्रियका ग्यारहवें वर्षमें और वैश्यका बारहवें वर्षमें होना चाहिए। किन्तु कुलपरम्पराके अनुसार अन्य समय भी किया जा सकता है। यदि ब्राह्मणके बालकको ब्रह्मवर्चस्वयुक्त बनाना हो तो उसका यज्ञोपवीत पाँचवें वर्षमें कर देना चाहिए। यदि क्षत्रियके बालकको क्षात्र-तेजसे युक्त बनाना हो तो आठवें वर्षमें और यदि वैश्यके पुत्रको समृद्ध बनाना हो तो नौवंमें यज्ञोपवीत कर देना चाहिए। द्विज मात्रको सदा दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिएँ। यदि कन्धेपर दूसरा वस्त्र न हो तो तीसरा यज्ञोपवीत धारण कर लेना चाहिए। लघुशंका या शौचके समय यदि कानपर जनेऊ चढ़ाना भूल जाय या यज्ञोपवीत टूट जाय तो दूसरा जनेऊ बदल लेना चाहिए। नया यज्ञोपवीत पहिननेसे पूर्व यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

पुराने यज्ञोपवीतको ऊपरसे निकालना चाहिए और यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम् ॥

माला

मालाके संबंधमें यह विधान है कि शंख-मणिकी माला लेकर जप करनेसे सौगुना, मूँगेसे सहस्रगुना स्फटिक मणिसे दस सहस्रगुना, मोतीसे लाखगुना, कमलके बीचसे दस लाखगुना तथा कुशाकी ग्रन्थि और रुद्राक्षकी मालासे जप करनेका अनन्त-गुना फल मिलता है। मालाके सुमेरुको छोड़कर १०८ दानेकी माला सबसे उत्तम होती है। माला जपनेका नियम यह है कि अनामिका उँगलीके अग्रभागपर माला रखकर अंगूठेसे दबाते हुए मध्यमासे फेरे और सुमेरुको कभी न लाँघे। जब सुमेरु आ जाय और दुबारा जपना हो तो सुमेरुके पाससे मालाको घुमाकर जप करना चाहिए। माला फेरते समय किसी दूसरेसे बोलना नहीं चाहिए अन्यथा पुण्यका छठा भाग समाप्त हो जाता है। यदि भूलसे बोल दिया जाय तो विष्णुका स्मरण करके फिर जप प्रारम्भ कर देना चाहिए। सदा अपना दाहिना हाथ कपड़ेसे ढककर जप करना चाहिए अन्यथा जप निष्फल होता है। इसीलिये गोमुखीमें हाथ डालकर जप करनेका विधान है। प्रातःकाल हाथकी हथेली सीधी रखकर और उँगलियोंको ऊपरकी ओर करके, सायंकाल हाथको उलटकर तथा मध्याह्नमें हृदयके समीप टेढ़ा हाथ करके जप करना चाहिए। प्रातःकाल नाभिके पास, मध्याह्नमें हृदयके पास और सायंकाल नासिकाके पास हाथ रखकर जपना चाहिए। सुमेरुका उल्लंघन करनेसे और उँगलीके अग्रभाग तथा पर्व अर्थात् पोरोंकी लकीरपर किया हुआ जप निष्फल होता है।

यदि माला न हो तो हाथपर भी जप किया जा सकता है जिसे करमाला कहते हैं। गायत्री-कल्पमें लिखा है कि अनामिका उँगलीके बीचके पोरसे आरंभ करके अनुक्रमसे अनामिकाके नीचेके पोरसे होते हुए कनिष्ठिकाके नीचे बीच और ऊपरके पोर तथा अनामिका, मध्यमा और तर्जनीके ऊपरके पोर और तर्जनीके मध्य तथा नीचेके पोरतक क्रमसे दस-तक संख्याका जप अंगूठेके अग्रभागसे करना चाहिए। इसमें मध्यमा उँगलीके मूल और बीचके पोरको सुमेरु कहते हैं इसलिये इतका लंघन नहीं करना चाहिए। दुबारा जपते समय तर्जनीके नीचेके पोरके पश्चात् मध्यमाके मूलसे अँगूठेको ले जाकर पुनः जप करना चाहिए। जप प्रारम्भ करनेसे पूर्व नीचे लिखे मन्त्रसे मालाकी प्रार्थना करनेसे पूर्ण फल मिलता है।

ॐ महामाये महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥

ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जप-काले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

जपका विधान

गोमुखीमें हाथ डालकर दाहिने हाथसे जप करना चाहिए। यदि गोमुखी न हो तो वस्त्रसे हाथ ढक लेना चाहिए। जप समाप्त करनेके पश्चात् आसनके नीचे जल छोड़कर उस जलको मस्तकमें लगा लेना चाहिए। ऐसा न करनेसे जपका सारा फल इन्द्र ले जाते हैं। एक मन्त्र जपते समय दूसरा नहीं जपना चाहिए। जपते समय काँपनेसे सिद्धि नष्ट हो जाती है, ऊँघनेसे दुःख होता है, बोलनेसे रोग होता है, माला गिरनेसे नाश होता है और मालाका सूत्र टूटनेसे मृत्यु होती है। इसलिये बहुत सावधान होकर जप करना चाहिए। घरमें जप करनेसे एक-गुना, गौके पास सौगुना, किसी वन, उपवन या तीर्थमें सहस्र-गुना, पर्वतपर दस सहस्र-गुना, नदी-तीरपर लाख-गुना, देवालयमें करोड़-गुना और शिवके समीप अनन्त-गुना फल होता है।

विधि-यज्ञ अर्थात् अमावास्या और पूर्णिमा आदिके दिन किए हुए पूजन आदि उत्तम कर्म करनेकी अपेक्षा जप करनेका दस गुना फल होता है। जिस जपको कोई सुन न सके उसका फल सौगुना और बिना ओठ हिलाए मनमें किए जप (अजपा जाप) का फल सहस्र-गुना अधिक पुण्यदायक होता है।

गायत्री मन्त्रका महत्त्व

गायत्रीके एक मन्त्रका जप करनेसे दिनका पाप नष्ट होता है, दस बार जप करनेसे रात दिनका' एक सौसे एक मासका, एक सहस्रसे एक वर्षका, एक लाखसे जन्म भरका, दस लाखसे अन्य जन्मका और एक करोड़से सब जन्मोंका पाप नष्ट होता है।

आचमन

आचमन किए बिना जो कर्म किया जाता है वह निष्फल होता है इसलिये पुण्य कार्यके आरम्भमें आचमन अवश्य करना चाहिए। किन्तु गरम, बुलबुलेवाले और फेनवाले जलसे आचमन नहीं करना चाहिए, न आचमन करते समय सुड़कनेका शब्द होना चाहिए। आपत्ति-काल या रोगके समय गरम जलसे आचमन किया जा सकता है। आचमन करते समय दाहिने हाथका बाँएँ हाथसे स्पर्श कर रखना चाहिए। बाँएँ हाथसे दाहिने हाथका स्पर्श न होनेसे जल शुद्ध नहीं होता।

हाथमें जल लेकर अंगूठे तथा कनिष्ठिकाको अलग करके बाँएँ हाथसे दाहिने हाथका स्पर्श करते हुए नीचे लिख मन्त्र बोलते हुए प्रत्येक नामके साथ एक-एक आचमन कर चुकनेपर एक पूर्ण आचमन होता है ।

ॐ केशवाय नमः । ॐ माधवाय नमः । ॐ नारायणाय नमः ।

इन तीनों आचमनोंका एक आचमन होता है। इसलिये जहाँ द्विराचम्यका विधान है वहाँ दो बार उपर्युक्त तीन-तीन आचमन करने चाहिएं। इसके पश्चात् 'ॐ हृषीकेशाय नमः' कहकर दूसरे पात्रसे जल लेकर हाथ धो लेना चाहिए। दाहिने कानमें गंगाजी और नासिकामें अग्निका वास है इसलिये जलके अभावमें कान और नासिकाका तीन-तीन बार स्पर्श करनेसे आचमन हो जाता है।

सन्ध्या-वन्दन

धर्मशास्त्रका विधान है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको तीन समय अर्थात प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल सन्ध्या करनी चाहिए। जो लोग सन्ध्या नहीं करते उन्हें शुभ कर्म करनेका पूरा फल नहीं मिलता। इसलिये धर्मकी रक्षा, यश, कीर्ति, तेज और धनकी वृद्धि चाहनेवालेको प्रातः और सायं सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। ऊपर बताया जा चुका है कि जलमें सूखा वस्त्र पहनकर और जलके बाहर गीला वस्त्र पहनकर सन्ध्या-बन्दन नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य आलस्यके कारण प्रातः और सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता वह अवश्य नरक-गामी होता है।

सन्ध्याके लिये समयका नियम यह है कि प्रातःकाल तारोंके रहते हुए-की सन्ध्या उत्तम, तारे लुप्त होनेपर की हुई मध्यम और सूर्योदय होनेपर की हुई सन्ध्या अधम कहलाती है। सायंकालकी सन्ध्या सूर्यास्तसे तीन घड़ी पहले श्रेष्ठ, तारोंके निकलनेतक मध्यम और तारोंके निकल चुकनेपर की हुई अधम कहलाती है।

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता ॥

सायंकाल पश्चिमकी ओर मुंह करके जबतक तारे उदय न हों और प्रातःकाल सूर्यकी ओर मुंह करके जबतक सूर्यका दर्शन न हो तबतक सन्ध्याके पश्चात् जप करते रहना चाहिए। प्रातः और मध्याह्न कालमें गायत्रीका जप बैठकर करना चाहिए और सायंकालके समय दाहिना घुटना खड़ा करके जपना चाहिए। गृहस्थ और ब्रह्मचारीको गायत्रीके प्रारम्भमें ॐ

लगाकर जपना चाहिए। अन्तमें ॐ लगानेसे वृद्धि नहीं होती और सूर्यास्तके तीन घड़ी पीछेतक ही सन्ध्या करनी चाहिए। इसके उपरान्त सन्ध्या करनेवालोको प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

प्रातःकाल खड़े होकर दोनों हाथ मिलाकर स्वस्तिक मुद्रा करके, मध्याह्नमें दोनों हाथ ऊपर उठाकर और सायंकाल दोनों हाथ मुकुलित करके अर्थात् मुँदे हुए कमलके समान बन्द करके उपस्थान करना चाहिए।

इसी प्रकार सूर्यको अंजलि देनेका भी नियम है कि प्रातःकाल खड़े होकर थोड़ा झुककर तीन अंजलि, मध्याह्नमें सीधे खड़े होकर और सायंकाल बैठकर एक अंजलि जल देना चाहिए।

पूर्वकी ओर मुख करके, शिखा बाँधकर, तिलक लगाकर और आचमन करके अँगूठेकी जड़से ओठ पोंछकर, सन्ध्या प्रारम्भ करनी चाहिए। पवित्री धारण करके बाँएँ हाथमें बहुत-सी कुशाएँ और दाहिने हाथमें तीन कुशाएँ लेकर, गायत्री-मन्त्र पढ़कर, शिखा बाँधकर ईशान कोणकी ओर मुख करके आचमन करना चाहिए।

प्राणायाम

सन्ध्याके साथ ही प्राणायामका भी विधान है। प्रायायाम करनेसे अनेक प्रकारके रोग, दोष और व्याधियाँ दूर होती हैं। इसलिये जो नीरोग रहना चाहे और बहुत कालतक जीवन चाहे उसे प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। प्राणायामका विधान यह है कि पद्मासन लगाकर ऋषियों और देवताओंका स्मरण करके तीन प्राणायाम करने चाहिएँ—पूरक, कुम्भक और रेचक। तीनों क्रियाओंसे मिलकर एक प्राणायाम होता है। नाकके दाहिने छिद्रको अँगूठेसे दबाकर, बाँएँ छिद्रसे साँस ऊपर खींचते हुए, नाभिमें विष्णुका ध्यान करके तीन बार प्राणायामका मन्त्र पढ़नेको पूरक करते हैं। दाहिने छिद्रको दबाए हुए, बाँएँ छिद्रको भी मध्यमा और अनामिका उँगलीसे दबाकर, साँस रोककर, कमलके आसनपर बैठे हुऐ रक्त-वर्ण चतुर्मुख ब्रह्माका हृदयमें ध्यान रखकर तीन बार मन्त्र पढ़नेको कुम्भक कहते हैं। इसके पश्चात् नासिकाके दाहिने छिद्रको खोलकर, श्वेतवर्ण वाले त्रिनेत्र शिवजीका ध्यान करते हुए धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए तीन बार मन्त्र पढ़नेको रेचक कहते हैं। यदि दो मिनटमें पूरक किया गया हो अर्थात् साँस ऊपर चढ़ाई गई हो तो चार मिनट-तक श्वास रोकना चाहिए और एक मिनटमें निकाल देना चाहिए अर्थात् पूरक, कुम्भक और रेचकमें समयकी दृष्टिसे दो, चार और एकका अनुपात होना चाहिए।

पंच महायज्ञ

प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन पाँच महायज्ञ अवश्य करने चाहिएँ—ब्रह्मयज्ञ, पितृ-यज्ञ, देव-यज्ञ, भूत-यज्ञ और मनुष्य-यज्ञ (या अतिथि-यज्ञ)। चूल्हेमें लकड़ी जलानेसे, चक्की पीसनेसे, झाड़ू लगानेसे, ओखली कूटनेसे और जलके स्थानमें अर्थात् घड़े आदिके नीचे दब जानेसे जो अनेक जीवोंकी हत्या हो जाती है उन पापोंके नाशके लिये ये पाँच यज्ञ किए जाते हैं। वेद तथा पुराण आदि पढ़ना तथा पढ़ाना ब्रह्म-यज्ञ कहलाता है ; श्राद्ध या तर्पण करना पितृ-यज्ञ; देवताओंका पूजन या हवन करना देव-यज्ञ; बलिवैश्वदेव करना भूत-यज्ञ और अतिथि-सत्कार करना मनुष्य-यज्ञ या अतिथि-यज्ञ कहलाता है।

तर्पण

प्रत्येक व्यक्तिको तर्पण अवश्य करना चाहिए। तर्पणका जल सूर्योदयसे आधे प्रहरतक अमृत होकर, एक प्रहरतक मधु होकर, डेढ़ प्रहरतक दूध होकर और साढ़े तीन प्रहरतक जलके रूपमें पितरोंको प्राप्त होता है किन्तु घरमें तिल और कुशासे तर्पण करना चाहिए। घरपर रविवार, मंगलवार, शुक्रवार, प्रतिपदा और षष्ठी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी, भरणी, कृत्तिका, मघा और अपने जन्म-नक्षत्रमें तिलसे तर्पण नहीं करना चाहिए किन्तु गंगा आदि तीर्थोंमें उपर्युक्त निषिद्ध दिनोंमें भी प्रत्येक अमावास्या और महालया पक्षमें तिलसे तर्पण करना चाहिए। यदि नित्य तर्पण न हो सके तो अमावास्या और महालया-पक्षमें तो तर्पण अवश्य करना ही चाहिए। जो मनुष्य नास्तिकता और चंचलताके कारण तर्पण नहीं करते हैं उनके पितर अत्यन्त प्यासे होकर उनका पसीना पीते हैं और जो तर्पण करते हैं उन्हें धन, धान्य, यश, विद्या और संततिकी प्राप्ति होती है। तिल और कुशाके बिना तर्पण करनेसे पितरोंको जल नहीं मिलता इसलिये तिलके अभावमें और जिस दिन तिलका निषेध है उन दिनोंमें सोने या चाँदीके साथ तर्पण करना चाहिए।

तर्पण और श्राद्ध करनेके अनन्तर कौवे और श्वानकी बलि छोड़कर अन्य बलि गौको खिला देनी चाहिए। यदि ब्राह्मणको भोजन करानेका संकल्प किया हो तो उसे संकल्प किया हुआ अन्न देकर अन्य निमंत्रित ब्राह्मणोंको परोसकर ब्राह्मणोंसे भोजन करनेकी प्रार्थना करे। ब्राह्मणोंको चाहिए कि मौन होकर भोजन करें, पाकके गुणका वर्णन न करें। श्राद्ध करनेवालेका यह धर्म है कि पाकका गुण वर्णन करते हुए नम्रता-पूर्वक

बार-बार परोसे, भोजन करनेके पश्चात् हाथ धुलाकर ब्राह्मणोंको ताम्बूल आदि देकर उन्हें यथा-शक्ति वस्त्र और दक्षिणा दे तथा इसके पश्चात् ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर अपने कुटुम्बियों तथा इष्ट-मित्र आदिको भोजन करावे। श्राद्धमें दौहित्रको भोजन करानेसे पितृश्वर प्रसन्न होते हैं। उनके भोजन कर चुकनेपर कौवेको काकबलि और कुत्तेको श्वान-बलि देनी चाहिए और फिर पितरोंका प्रसाद समझकर स्वयं मौन होकर भोजन करना चाहिए।

भोजन

भोजनसे पूर्व ब्राह्मण जलसे चौकोर, क्षत्रिय त्रिकोण और वैश्य गोल मंडल बनावे। पैरपर पैर रखकर, पैरके नीचे वस्त्र रखकर और उत्तरकी ओर मुख करके भोजन नहीं करना चाहिए। बाएँ हाथसे जल भी नहीं पीना चाहिए। भगवान्का दर्शन करके, तुलसी, चरणामृत और प्रसाद लेकर भोजन करना चाहिए। यदि समस्त विधि न की जा सके तो 'आपोशान' के तीन ग्रास अवश्य लेने चाहिएँ अर्थात् 'ॐभूपतये स्वाहा, 'ॐभुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा' कहकर तीन ग्रास निकाल देने चाहिएँ और फिर 'ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा' कहकर आचमन करना चाहिए और आत्माको अग्निरूपी समझकर पाँचों उँगलियोंसे निम्नांकित एक-एक मन्त्र पढ़कर पाँच ग्रास भोजन करना चाहिए—'ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। ॐ उदानाय स्वाहा। ॐ समानाय स्वाहा।' इसके पश्चात् आचमन करना चाहिए। भोजन कर चुकनेपर यह मन्त्र पढ़कर आचमन करना चाहिए—'ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा।' बचे हुए जूठे अन्नको नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर दक्षिण दिशामें फेंक देना चाहिए—

> मद्भुक्तोच्छिष्टशेषं ये भुञ्जन्ते पितरोऽधमाः।
> तेषामन्नं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥

इसके पश्चात् सोलह कुल्लोंसे मुख स्वच्छ करके पान, सुपारी, इलायची, लौंग, कपूर इत्यादिसे मुख शुद्ध करके उसके पश्चात् पुनः कुल्ला करके नीचे लिखे श्लोक बोलता हुआ सौ पग चले और अपने पेटपर दाहिना हाथ फेरता रहे—

> अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च बडवानलम्।
> आहारपरिपाकाय संस्मरामि वृकोदरम्॥

आतापी भक्षितो येन वातापी च महाबलः ।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥

एक वस्त्र पहने हुए भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् कन्धेपर अंगोछा डाल लेना चाहिए । अपनी पत्नीके साथ बैठकर एक पात्रमें भोजन नहीं करना चाहिए । भोजन करती, छींकती, जम्हाई लेती, बेपर्दे बैठी हुई, आँखोंमें आँजन या तेल लगाती हुई या प्रसव करती हुई स्त्रीको नहीं देखना चाहिए । इससे तेज नष्ट होता है ।

यदि बलिवैश्वदेव न किया गया हो तो स्वयं बलिवैश्वदेव करके अपने भोजनके लिये पात्रमें पाक लेकर उसके चारों ओर जलसे मंडल बना लेना चाहिए ।

सायंकाल-विधि

सूर्यास्त होने से पूर्व सायं-सन्ध्या करके तथा सूर्यास्त होनेपर गायत्रीका जप और भजन करनेके पश्चात् स्वयं पुराणका पाठ करके या सुनकर रात्रिका प्रथम पहर बिताना चाहिए ।

दीपक

जिसके घरमें सूर्यास्तसे सूर्योदयतक दीपक जलता है उसके घरमें कभी दरिद्रता नहीं आती, इसलिये सायंकाल दीपक जलाकर नीचे लिखी स्तुति करके श्रीरामचन्द्रजीकी जय बोले और इच्छानुसार भजन करे—

दीपो ज्योतिः परब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः ।
दीपो हरतु मे पापं सन्ध्यादीप नमोऽस्तु ते ॥

शुभं करोतु कल्याणं आरोग्यं सुख-सम्पदाम् ।
मम बुद्धिप्रकाशं च दीपज्योति नमोऽस्तु ते ॥

शयन-विधि

रातको सोनेसे पहले दिनके सब कार्योंको स्मरण कर लेना चाहिए और यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो भगवान्का नाम लेकर क्षमा-प्रार्थना कर लेनी चाहिए और फिर अपराध न करनेका दृढ संकल्प करना चाहिए । मध्य रात्रिके पश्चात् महानिशा प्रारंभ हो जाती है इसलिये रात्रिके १२ बजेके पश्चात् भोजन नहीं करना चाहिए । पूर्व या दक्षिणकी ओर ही सिर करके सोना चाहिए क्योंकि पूर्वकी और सिर करके सोनेसे धन

मिलता, दक्षिणकी ओर सिर करके सोनेसे आयु बढ़ती, पश्चिमकी ओर सिर करके सोनेसे चिन्ता होती और उत्तरकी ओर सिर करके सोनेसे हानि तथा मृत्यु होती है। लाठी और जलका पात्र पास रखकर, पैर धो और सुखाकर शय्यापर सोना चाहिए। गीले पैरसे भोजन तो करना चाहिए किन्तु गीले पैरसे सोना नहीं चाहिए। ऐसा करनेसे आयु बढ़ती है। निम्नांकित प्रार्थना करके सोना चाहिए—

जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः।
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः॥

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पंचैते सुखशायिनः॥

नीचे लिखा मन्त्र पढ़नेसे सर्प नहीं आते—

सर्पापसर्प भद्रं ते दूर गच्छ महाविष।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीक-वचनं स्मर॥

इसके पश्चात् तीन वार आस्तीकः कहकर तालियाँ बजानी चाहिएँ। जितनी दूरतक तालीकी ध्वनि जाती है उतनी दूरतक सर्प नहीं आता। इसके पश्चात् चोरको दूर करनेका मन्त्र पढ़ना चाहिए—

तिस्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।
तासां स्मरणमात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः॥

इसके पश्चात् तीन बार 'कफल्लकः' कहकर ताली बजानी चाहिए। जितनी दूरतक तालीकी ध्वनि जाती है उतनी दूरतक चोर नहीं आता। यदि आता भी है तो वह निष्फल लौट जाता है। इसके पश्चात् देवीका स्मरण करके सो जाना चाहिए—

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभोः॥

स्वप्न-दर्शन

मनुष्य जैसे संकल्प-विकल्प करता है, जैसी उसकी मानसिक अवस्था होती है, उसीके अनुसार उसे स्वप्न दिखाई देते हैं। यदि उसे यात्रा करनी होती है तो स्वप्नमें उसकी गाड़ी छूटती है, यदि परीक्षा देता हो तो उसे स्वप्नमें दिखाई देगा कि मैं देरसे पहुँचा हूँ अर्थात् मनकी आशंकाएँ स्वप्नमें मूर्त्त हो जाती हैं। कभी-कभी अधिक भोजन करनेसे भी स्वप्न आते हैं

किन्तु सब प्रकारके स्वप्नोंका संबंध हमारे मनसे रहता है। हमारा मन भी विश्व-मानसका ही एक अंग है इसीलिये कभी-कभी भावी घटनाए भी स्वप्नमें दिखाई पड़ जाती हैं। आजकलके मनोवैज्ञानिकों और मनोविश्लेषण-शास्त्रियोंने स्वप्नका बड़ा महत्त्व मानते हुए बताया है कि मनुष्यकी अनेक दमन की हुई काम-वासनाएँ, इच्छाएँ, सकल्प तथा द्वन्द्व आदि स्वप्नके रूपमें अभिव्यक्त होते हैं।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया अवस्थाओंमेंसे स्वप्न अवस्थामें हमारा मन पूर्णतः स्वच्छन्द होकर भ्रमण करता है। जाग्रत अवस्थामें अपने परम्परागत संस्कार, भय, शालीनता, सामाजिक नियम आदि कारणोंसे मन अपने जिन संकल्पों, इच्छाओं और वासनाओंको तृप्त नहीं कर पाता है उन्हें आत्मा या चैतन्यकी विश्रामावस्थामें हमारा मन निर्द्वन्द्व होकर अत्यन्त क्रमहीन रूपसे सूक्ष्म शरीरके माध्यमसे तृप्त करता रहता है। इस तृप्तिका प्रमाण है काम-स्वप्न जिसमें सूक्ष्म-शरीर-द्वारा की हुई तृप्तिका प्रत्यक्ष प्रणाम वीर्य-स्खलन होता है। इस प्रकार हमारा मानस ही संपूर्ण स्वप्न-सृष्टिका एक मात्र कारण है जिसमें वह केवल इस जन्मके भूत, भविष्य, वर्त्तमानके ही नहीं वरन् पिछले अनेक जन्मोंके स्मृत-कृत संस्कारोंको अभिव्यक्त करता रहता है। प्रायः मानस–शास्त्री और स्वप्न-विज्ञान-वेत्ता पिछले जन्मोंकी अभिव्यक्तिका अस्तिरव स्वप्नमें नहीं मानते किन्तु यह निर्विवाद तथ्य है कि हम अनेक ऐसे स्वप्न भी देखते हैं जिनका कोई सम्बन्ध हमारे इस जीवनके अनुभवसे नहीं होता। ऐसे सब स्वप्न निश्चय ही उन अनेक जन्मोंकी स्मृतिकी आवृत्ति करते हैं जो हमारे कारण–शरीरके द्वारा सूक्ष्म शरीरमें अनेक पिछले जन्मोंमें अनुभूत होते रहे हैं।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इन सभी प्रकारके स्वप्नोंका कारण तो हमारा मानस ही है। वह मानस जाग्रत अवस्थामें जिस प्रकृतिमें अवस्थित रहता है उसीकी प्रतिक्रिया वह स्वप्नमें अभिव्यक्त करता है। यदि हमारा मानस स्वस्थ होता है तो अच्छे स्वप्न दिखाई देते हैं, अस्वस्थ, विकल या चिन्ताग्रस्त होता है तो दुःस्वप्न दिखाई देते हैं। इसलिये कहा गया है कि जो मनुष्य सुखी रहना चाहे उसे प्रसन्न रहना चाहिए, ईश्वरकी आराधना करनी चाहिए और मनको वशमें रखना घाहिए।

सुस्वप्न

रात्रिके प्रथम प्रहरका स्वप्न एक वर्षमें, दूसरे प्रहरका आठ मासमें, तीसरे प्रहरका तीन मासमें, चतुर्थ प्रहरका १५ दिनमें, अरुणोदयके समयका

१० दिनमें और प्रातःकालका देखा हुआ स्वप्न उसी समय जाग उठनेपर तत्काल फल देता है। किन्तु चिंतित, रोगी, नग्न, मूत्र और पुरीषके रोगसे पीडित, भयाकुल तथा खुले हुए बालवालेको स्वप्नका फल नहीं होता है। यदि कोई स्वप्न देखकर निद्रा-मग्न होकर सो जाय या रातको ही अपना स्वप्न दूसरेसे कह दे तो उसको भी स्वप्नका फल नहीं मिलता। हमारे देशके स्वप्न-वक्ताओंका मत है कि स्वगोत्रीको स्वप्न सुना दिया जाय तो निश्चय ही घोर विपत्ति आती है, दुर्गतिशील प्राणीको सुनानेसे दुर्गति होती है, नीचको सुनानेसे रोग होता है, शत्रुको सुनानेसे भय, मूर्खको सुनानेसे कलह तथा स्त्रीको सुनानेसे धनहानि और रातको चोरका भय होता है। निद्राकी अवस्थामें स्वप्न सुनानेसे शोक और पंडितको सुनानेसे इच्छित फल मिलता है। कोई भी स्वप्न किसी काश्यप गोत्रवालेको नहीं सुनाना चाहिए।

स्वप्न-विचार

गौ, हाथी, घोड़े, भवन, पर्वत और वृक्ष-पर चढ़ना देखनेसे धन प्राप्त होता है। भोजन या रोदन करते तथा वीणा (वाद्य) बजाते देखनेसे धान्य-सम्पन्न पृथ्वी मिलती है। जो अपनेको स्वप्नमें शस्त्र, अस्त्र, व्रण, कृमि, विष्ठा ओर रुधिरसे युक्त देखता है वह धनी होता है। जो व्यक्ति स्वप्नमें अगम्यासे गमन करता है उसे भार्या प्राप्त होती है। जो अपनेको मूत्र-सिक्त, शुक्र पीते, नरकमें प्रवेश करते, नगरमें प्रवेश करते, लाल समुद्रमें प्रवेश करते या अमृत पीते देखता है उसे कोई शुभ संवाद सुननेको मिलता है और अत्यंत धन प्राप्त होता है। जो व्यक्ति हाथी, राजा, स्वर्ण, वृषभ, गौ, दीप अन्न, फल, पुष्प, कन्या, छत्र, रथ और ध्वज देखता है उसे कुटुम्ब, कीर्ति और बहुत धन प्राप्त होता है। पूर्ण कुम्भ, ब्राह्मण, अग्नि, पुष्प, ताम्बूल, मंदिर, श्वेत धान्य, नट और वेश्याको स्वप्नमें देखनेसे लक्ष्मी प्राप्त होती है। दूध और घी देखनेसे धन और पवित्र सम्पत्ति मिलती है। जो पद्मपत्रमें रक्खा हुआ पायस, दही, दूध, घी, मधु, मिठाई खाता देखता है वह निश्चय ही राजा होता या राजपद पाता है। यदि मनुष्य स्वप्नमें पक्षी या मनुष्यका मांस खाता हो तो वह बहुत-सा धन, शुभ संवाद और इच्छित फल प्राप्त करता है। जो श्यक्ति स्वप्नमें छत्र, खड़ाऊं या धान्य प्राप्त करके अथवा निर्मल, तीक्ष्ण तलवार लेकर चलता है वह वैसा ही ऊंचा पद प्राप्त करता है। जो खेल-खेलमें तैर जाय वह प्रधान होता है। जो फला हुआ वृक्ष देखे वह निश्चय ही धन पाता है। जो अपनेको सर्पसे

काटा हुआ देखता है उसे अर्थ-लाभ होता है। जो स्वप्नमें सूर्य और चन्द्रमाको देखता है वह रोग-मुक्त हो जाता है। जो स्वप्नमें घोड़ी, मुर्गी और क्रौंची (सारसी या कुररी) देखता है उसे निश्चय ही स्त्री प्राप्त होती है। जो स्वप्नमें अपनेको निगडबद्ध देखता है उसे प्रतिष्ठा और पुत्र प्राप्त होता है। जो व्यक्ति स्वप्नमें नदीके तटपर कमलके पत्तेमें दही, अन्न या पायस खाता है अथवा विशीर्ण पद्म-पत्रपर भोजन करता है वह भी राजा हो जाता है। मछली, मगर आदि जलके जीव, कौवा, भिक्षुक या साँपको देखनेसे धन, पुत्र, विजय या प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। सींग और दाढ़वाले सूअरों और वानरोंसे पीडित देखनेपर व्यक्ति निश्चय ही राजा होता और धन प्राप्त करता है। मत्स्य, मांस, मोती, शंख, चंदन और हीरेको स्वप्नके अंतमें देखता है उसे धन मिलता है। सुरा, रुधिर, स्वर्ण और विष्ठाको देखनेसे धन प्राप्त होता है। शिवलिंगकी प्रतिमा देखनेसे जय और धन प्राप्त होता है। फले-फूले हुए बेल और आमको देखनेसे धन प्राप्त होता है। जलती हुई अग्निको देखनेसे धन और स्त्री प्राप्ति होती है। आँवला, धायका फल और कमल देखनेसे धनकी प्राप्त होती है। देवता, द्विज, गौ, पितर तथा लिंगियोंको जो स्वप्नमें प्रदान करते हैं वे वैसे ही हो जाते हैं। श्वेत वस्त्र धारण करने और श्वेत माला तथा अनुलेपन धारण की हुई स्त्रियोंको स्वप्नमें आलिंगन करते ही उसे शरीरका सुख प्राप्त होता है। पीताम्बर, पीली माला और पीले अनुलेपन-वाली स्त्रीका जो स्वप्नमें आलिंगन करता है उसका कल्याण होता है। भस्म, हड्डी और कपासको छोड़कर सब श्वेत पदार्थोंको देखना अच्छा होता है और गौ, हाथी, घोड़े, ब्राह्मण और देवताको छोड़कर शेष सभी काली वस्तुएँ निन्दित समझी जाती हैं। जो व्यक्ति स्वप्नमें रत्न और भूषणसे भूषित दिव्य स्त्रीको अपने भवनमें आते देखता है उसकी निश्चय ही कामना पूर्ण होती है। जिसे स्वप्नमें ब्राह्मण, देवता, ब्राह्मणी, देवकन्या अथवा ब्राह्मण और ब्राह्मणी हंसती हुई फल देती हैं उसे निश्चय ही पुत्र प्राप्त होता है। जिसे स्वप्नमें ब्राह्मण आशीर्वाद देते या अभिनन्दन करते हैं और जो कुछ कहते हैं वैसा ही उन्हें ऐश्वर्य प्राप्त होता है और स्वप्नमें जिसके भवनमें द्विज-श्रेष्ठ आ जाता है उसके अधीन ब्रह्मा, विष्णु, महेश हो जाते हैं। यदि स्वप्नमें सम्पत्ति तथा यश प्राप्त होता है तो उसे पग-पगपर सुख मिलता है और उसे सम्मान तथा गौरव प्राप्त होता है। जिसे स्वप्नमें अचानक गौ मिल जाती है उसे भूमि और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। जिसे हाथी अपनी सूँड़से उठाकर अपने मस्तकपर रख ले उसे राज्य-लाभ होता है। जिसे स्वप्नमें संतुष्ट ब्राह्मण गलेसे लगा ले वह तीर्थ-स्नानका

पुण्य प्राप्त करता है और निश्चय श्री-सम्पन्न होता है। जिस पुण्यवान्को स्वप्नमें कोई पुष्प देता है वह व्यक्ति यशस्वी, धनी, सुखी और विजयी होता है। जो स्वप्नमें तीर्थ, चूनेसे पुते हुए भवन, रत्न और गृह देखता है वह विजयी, धनवान् और तीर्थ-स्नायी होता है। यदि स्वप्नमें कोई किसीको भरा हुआ कलश देते हुए देखता है वह पुत्र तथा सम्पत्ति प्राप्त करता है। जो व्यक्ति किसी वेश्याको अपने भवनमें हाथमें कुण्डल और आभूपण लिए आते देखता है उसे निश्चय ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। जिसके घरमें कोई दिव्या स्त्री मल विसर्जन करती दिखाई दे उसे अर्थ-लाभ होता है और उसकी दरिद्रता दूर हो जाती है। जिसे स्वप्नमें पत्नीके साथ ब्राह्मण, पार्वतीके साथ शिव, लक्ष्मीके साथ नारायण घरमें आते और ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी स्वप्नमें धान्य या पुष्पाञ्जलि देते दिखाई दें उसे सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्राप्त होती है अथवा स्वप्नमें जो ब्राह्मणसे मुक्ताहार, पुष्पकी माला या चंदन प्राप्त करता है उसे सर्वतोमुखी सम्पत्ति मिलती है। जो स्वप्नमें गोरोचन, पताका, हल्दी, ईख और पका हुआ अन्न प्राप्त करता है उसे भी सर्वतोमुखी श्री प्राप्त होती है अथवा ब्राह्मण या ब्राह्मणी जिसके मस्तकपर शुक्ल धान्य रख दें वह राजा होता है। स्वप्नमें जो व्यक्ति श्वेत माला और अनुलेपन धारण करके रथपर बैठकर दही और पायस खाता है वह राजा होता है। स्वप्नमें ब्राह्मण या ब्राह्मणी जिसे सुधा, दही या प्रशस्त पात्र प्रदान करे वह निश्चय ही राजा होता है। रत्न और आभूषणोंसे भूषित आठ वर्षकी कुमारी जिसपर स्वप्नमें प्रसन्न हो जाय वह कवि या पंडित होता है। जिस पुण्यवान्को वह पुस्तक दे दे वह विश्वविख्यात कवीन्द्र और पण्डितेश्वर हो जाता है अथवा जिसे माताके समान वह स्वप्नमें पढ़ाती हो वह सरस्वती-पुत्र हो जाता है. उसके समान कोई पंडित नहीं होता।

जो व्यक्ति स्वप्नमें मार्गमें पड़ी हुई पुस्तक प्राप्त करता है वह पंडित हो जाता है और पृथ्वी-तलपर विख्यात और यशस्वी हो जाता है। जिसे स्वप्नमें बहुतसे ब्राह्मण या एक ब्राह्मण महामंत्र देते हैं वह पुरुष विद्वान्, धनवान्, गुणी और बुद्धिमान् होता है। स्वप्नमें कोई ब्राह्मण जिसे मंत्र या पत्थरकी प्रतिमा प्रदान करता है उसे मंत्र-सिद्धि हो जाती है। जो व्यक्ति स्वप्नमें ब्राह्मण या ब्राह्मणीसे सिर झुकाकर आर्शीर्वाद प्राप्त करता है वह राजेन्द्र या कवि या पंडित होता है। जिसे कोई ब्राह्मण स्वप्नमें श्वेत धान्यसे युक्त भूमि देता है वह राजा होता है। जिसे कोई ब्राह्मण स्वप्नमें रथपर बैठाकर अनेक स्वर्ग दिखाकर लाता है वह चिरजीवी होता हैं और उसकी

आयु तथा धनमें वृद्धि होती है। यदि स्वप्नमें किसी ब्राह्मणको कोई संतुष्ट होकर कन्या देता हो वह स्वयं राजा और जगद्धनाढ्य हो जाता है। जो स्वप्नमें सरोवर, समुद्र, नदी, नद, श्वेत सर्प और पर्वत देखता है वह श्री प्राप्त करता है। जो स्वप्नमें मृतकको देखता है वह चिरजीवी होता है। जो रोगीको देखता है वह नीरोग होता है। जो दुखीको देखता है वह सुखी होता है। जिसे स्वप्नमें कोई दिव्य स्त्री आकर कहे कि आप मेरे स्वामी हों और वह जाग जाय तो निश्चय ही राजा हो जाता है। जो व्यक्ति स्वप्नमें कलिका, स्फटिककी माला, इन्द्रधनुष और इन्द्रका वज्र देखे उसे प्रतिष्ठा मिलती है।

जिस व्यक्तिको कोई ब्राह्मण स्वप्नमें कहता है कि तुम मेरे दास हो जाओ वह भगवान्‌की भक्ति और भगवान्‌की सेवाका पुण्य प्राप्त करके परम वैष्णव हो जाता है। इसी प्रकार स्वप्नमें ब्राह्मण, विष्णु, शिव, ब्रह्माणी, लक्ष्मी, पार्वती, शुक्ला स्त्री, वेदमाता, गंगा, सरस्वती, ग्वालिनका वेष धारण किए हुए राधिका या बाल-गोपालका दर्शन करता है उसे पुण्य मिलता है।

दुःस्वप्न-व्याख्या

सूर्यको पृथ्वीपर चार टुकड़े होकर आकाशसे गिरते देखना, चन्द्रबिम्बको आकाशसे पृथ्वीपर दस टुकड़े होकर गिरते देखना, विकृत आकार, नंगे और हाथमें रस्सी लिए हुए पुरुष, विधवा, शूद्र-पत्नी, नंगी और हँसती हुई नकटीको चूर्णका तिलक लगाए श्वेत या कृष्ण बालोंका ऊँचा जूड़ा बाँधे हुए, हाथमें खड्ग और खप्पर लिए, जीभ लपलपाते हुए, गलेमें मुण्ड-माला पहने हुए देखना और गदहा, भैंसा, साँड़, सूअर, भालू, कौवे, गिद्ध, कंक (चील), वानर, विरक्त, कुत्ते, मगर, सियार, राखकी ढेरी, हड्डीकी ढेरी, ताड़के फल, केश, कपास, उल्वण (गाढ़ा रक्त), बुझे हुए अंगार, उल्का, शव, चितामें पड़े हुए मनुष्य, कुम्हार और तेलीका चक्र, टेढ़ी कौड़ी, श्मशान, जलती हुई लकड़ी, सूखी लकड़ी, कुश, घास, कटे हुए सिरवाले धड़का चलना, मरे हुए सिरका बोलना, राखसे जला हुआ स्थान, सूखा तालाब, जली हुई मछली, लोहा, बुझा हुआ जंगल, गलित कुष्ठी, नंगे और खुले हुए बालवाले नपुंसक, अत्यन्त रुष्ट ब्राह्मण, शाप देते हुए गुरु, अत्यन्त रुष्ट भिक्षुक, योगी तथा वैष्णवको स्वप्नमें देखना अनिष्टकारी होता है।

अंग फड़कनेका फल

प्रायः शकुन-विचारमें अंग फड़कनेका भी विचार किया जाता है। स्त्रीका बाँयाँ और पुरुषका दायाँ अंग फड़कना शुभ तथा पीठ और हृदयके वाम भागका फड़कना अशुभ होता है। भारतीय ज्योतिषके अनुसार फल इस प्रकार है—

अंग	फल
मस्तक	पृथ्वीलाभ तथा स्थानवृद्धि
ललाट	स्थान-लाभ
कंध	भोग-समृद्धि
भौंहोंके बीचमें	सुखप्राप्ति तथा प्रिय-मिलन
दोनों भौंहें	अत्यन्त सुख
नासिका	प्रिय-मिलन
कपाल	सुख-प्राप्ति
दोनों नेत्र	धन-प्राप्ति तथा भृत्य–लाभ
नेत्रके दोनों कोने	लक्ष्मी-लाभ, स्त्री-लाभ
नेत्रके पास	प्रिय-समागम
नेत्रोंके मध्य	उद्वेग तथा मृत्यु
कानके पास	प्रियका समाचार
अधर और ओष्ठ	इच्छा-पूर्ति
पीठ	पराजय
कंठ	सुख
वक्ष	विजय
कुक्षि	प्रीति
स्त्रियोंके स्तन	सन्तान-लाभ
नाभि	स्थानसे हटना
आँत	अर्थलाभ
पिंडली या घुटना	सन्धि
जंघा	नाश
चरण	स्थान-प्राप्ति
तलवे	भ्रमण

यात्रा-मङ्गल

भारतीय ज्योतिषके अनुसार यात्राके लिये यह मंगल विधान है कि फल, आम्र-पल्लव, चंदन आदिसे युक्त पूर्ण कुम्भको अपने बाँएँ करके, अग्नि तथा विप्रको दाँएँ करके, पति और पुत्रवाली स्त्री, दीपक और दर्पणको आगे करके तथा अपने गुरु-द्वारा दिए हुए दूबके पत्ते, फूल और श्वेत धान्य मस्तकपर रखकर घी, शहद चाँदी, सोने और दहीका दर्शन करना यात्रामें शुभ होता है। यात्राके पूर्व चंदनका लेप करके, गलेमें माला पहनकर और अत्यंत भक्तिके साथ गुरुजनकी बंदना करनी चाहिए। तत्पश्चात् शंख-ध्वनि, वेद-पाठ, संगीत, मंगलाष्टक और ब्राह्मणोंका आशीर्वचन अत्यंत आदरके साथ सुनना चाहिए। फिर मंगल-रूप श्रीगणेशजीको प्रणाम करके यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए और उस समय मध्यमा उंगलीसे बाँईं ओरकी नाक दबाकर दाँएँ नथुनेसे पूरी साँस छोड़ देनी चाहिए और तब प्रस्थान करना चाहिए।

शुभ शकुन

यात्राके समय निम्नांकित वस्तुओंको देखना शुभ होता है—दही, घी, दूब, लाल चावल, भरा हुआ घड़ा, पका हुआ अन्न, श्वेत सरसों, चन्दन, दर्पण, शंख, मांस, मछली, मिट्टी, गोरोचन, गोधूलि, देवमूर्ति, वीणा फल, भद्रासन, पुष्प, आँजन, अलंकार, अस्त्र, तांबूल, यान (सवारी), आसन, सराई, ध्वज, छत्र, व्यजन, वस्त्र, पद्म, भृङ्गार (बड़ा घड़ा), जलती हुई अग्नि, हाथी, बकरा, कुशा, चंवर, रत्न, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, बंग (राँगा), मेष (भेड़ा), ओषधि (जड़ी बूटी), मद्य और नये पल्लव। यात्रा-में चलते हुए भी अपनी दाहिनी ओर इन वस्तुओंको देखना शु होता है।

यात्राके समय गाना-बजाना, वेद-ध्वनि तथा नृत्य-गीत आदि सुनना-देखना, रीती कलसी लेकर चलते और भरकर लौटते देखना, कुल्ला करते समय जल पेटमें जाना, अत्यन्त सुन्दर शुक्ल वस्त्र और शुक्ल माला पहने पुरुष या स्त्रीका दर्शन, राजा, प्रसन्न ब्राह्मण, वेश्या, कुमारी, बन्धु, सुकेशी मनुष्य, अश्वारूढ या गजारूढ व्यक्ति, श्वेत वस्त्र पहने या श्वेत चन्दन लगाए या सिरपर श्वेत माला पहने हुई स्त्री, संतुष्ट और गोरी स्त्री, श्वेत वस्त्रधारी या छत्रधारी पुष्प और चन्दनसे सजा हुआ या भोजन बनाता हुआ या पाठ करता हुआ ब्राह्मण तथा हार लिए पुरुष या स्त्रीका

सामने आना मंगलकारी और फलप्रद होता है। वायव्य कोणमें रोदन, रोदनहीन शव-दर्शन तथा शत्रुका रोदन सुननेसे कार्य-सिद्धि होती है। ऊपर सूँड़ उठाए हुए या दाहिने दाँतपर सूँड़का अगला भाग टिकाए खड़े हुए या चिग्घाड़कर घूमते हुए हाथीको देखना शुभ होता है। बाईं ओर सियारका चलना या इकट्ठा होकर बोलना शुभ होता है। सियार यदि हुआँ हुआँ करके टट शब्द करे या उत्तर और दक्षिणकी ओर शब्द करे तो शुभ होता है। बाईं ओर भौंरेका गुन-गुन करके ठहर जाना या मँडराते रहना, सर्प या पंचनखीको बाएँ देखना शुभ होता है। यात्राके समय 'जाओ, लाभ, जय, मंगल' आदि शब्द सुनना शुभ होता है।

अपशकुन

यात्राके समय निम्नांकित वस्तुओंको देखनेमें अपशकुन होता है—

अंगार, भस्म, काष्ठ, रस्सी, कीचड़, खली (पिण्याक), कपास, भूसा, हड्डी, मल, मैला-कुचैला आदमी, लोहा, कूड़ेका ढेर, काला अनाज, पत्थर, पड़े हुए केश, सर्प, औषध (दवा), तेल, गुड़, चमड़ा, चरबी, रीता घड़ा, लवण, तृण, तक्र (छाछ), अर्गल, साँकल, वर्षा, आँधी, अपमानित, अंगहीन नग्न पुरुष, अन्त्यज, तैललिप्त, रजस्वला, गर्भिणी, रोदनकारिणी, मैले वेशवाला, पागल, विधवा, दीन, शत्रु, खुले बालवाला, ऊँट या गधेपर बैठा, संन्यासी, नपुंसक, काले वस्त्र या काला अनुलेपन लगाए हुई और काली माला पहने हुई, काली-कलूटी, क्रोधी स्त्री, यात्रा करते समय गाड़ीसे पैर फिसल जाना, गाड़ी बढ़ जाना या निकल जाना, छूट जाना, बाहर निकलते समय चोट लग जाना, बिल्लीका लड़ना या बोलना, कुटुम्बका परस्पर विवाद तथा शब्दहीन सियार देखना अशुभ होता है।

यात्राके समय 'कहाँ जाते हो, मत जाओ' आदि अमंगल-सूचक-शध्द सुनना अशुभ होता है। यात्राके समय सामने पीछे या आग्नेय कोणमें रोदनकी ध्वनि अशुभ होती है। सियारका स्वर सुनाई पड़ना तथा गोखरू और सर्प दिखाई पड़ना अशुभ होता है।

मूर्त्तियोंकी पूजा

भारतवर्षमें इतने प्रकारके सम्प्रदाय वैदिक धर्मके अन्तर्गत उद्भासित और प्रचारित हुए कि सब सम्प्रदायोंने अपने लिये अलग-अलग इष्टदेव स्वीकार करके उनकी मूर्त्तियोंकी पूजा आरंभ कर दी। इनमें भी विशेष

रूपसे वैष्णव और शैव धर्ममें पूजा-अर्चनाकी विशेष विधियाँ निर्धारित हो गईं जिनमें उन्होंने यहाँतक निश्चय कर लिया कि किस देवताको कौन-सा पुष्प चढ़ाना चाहिए और किस क्रमसे, किस देवताकी, किस प्रकार पूजा करनी चाहिए।

निषिद्ध वस्तु

पूजाके लिये पहला नियम तो यह है कि देवताओंकी पूजा प्रातःकाल करनी चाहिए, ऋषियोंकी पूजा दोपहरमें और पितरोंकी दोपहर ढलनेपर। किस देवताको कौन-सी वस्तु नहीं चढ़ानी चाहिए इस सम्बन्धमें विधान है कि विष्णुको चावल, गणेशजीको तुलसी, देवीको दूब और सूय भगवान्‌को बिल्व-पत्र नहीं चढ़ाना चाहिए किन्तु यदि चढ़ाना अभीष्ट ही हो तो बिल्व-पत्रकी डंठल तोड़कर सूर्यको चढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार शिवजीको कुन्दका, विष्णुको धतूरेका, देवीको मदारका और सूर्यको तगरका पुष्प नहीं चढ़ाना चाहिए।

फूल चढ़ानेका नियम

पुष्पोंको भी न तो धोतीमें रखना चाहिए और न जलमें धोना चाहिए क्योंकि ऐसा करनेसे वे फूल निर्माल्य हो जाते हैं और देवता उसे ग्रहण नहीं करते। पुष्पोंका मुख नीचे करके नहीं चढ़ाना चाहिए वरन् पत्ते, फूल या फल सबका मुंह ऊपर करके चढ़ाना चाहिए पर बिल्व-पत्रको उल्टा करके ही चढ़ाना चाहिए। देवताओंकी मूर्तियोंको अँगूठेसे नहीं मलना चाहिए और न कुशाके अग्रभागसे देवताओंपर जल ही छिड़कना चाहिए। फूल चढ़ाते समय दाहिने हाथके बीचकी उँगली और अनामिका अर्थात् कानी उँगलीके बराबरवाली उंगलीसे सीधा हाथ करके चढ़ाना चाहिए और जब उतारना हो तो अँगूठे और तर्जनीसे हाथ उलटकर उतारना चाहिए।

ताम्बूल या पानके लिये भी नियम है कि पानकी डंठलखानेसे रोग, फुनगी खानेसे पाप, सड़े पान खानेसे आयु-नाश और नसोंके खानेसे बुद्धि नष्ट होती है। इसलिये पानकी डंठल, फुनगी और नस निकालकर ही पानको चढ़ाना और खाना चाहिए।

दीपक

पूजाके लिये जो दीपक जलाया जाय उसका मुख पूर्व या उत्तरकी ओर ही होना चाहिए क्योंकि पूर्व–मुख रखनेसे आयु और उत्तरमुख रखनेसे

धन मिलता है पर पश्चिम मुखसे दुःख और दक्षिण मुखसे हानि प्राप्त होती पूजाका दीपक चावलपर रखना चाहिए। यदि घीका दीपक हो तो उसे है। अपने बाईं ओर और तेलका हो तो दाहिनी ओर जगाकर रखना चाहिए।

पूजाके लिये आसनपर बैठकर सब सामग्री जैसे जलपात्र, गंध, पुष्प, धूप और शंख आदि तो अपने दाहिनी ओर रक्खे और घंटा बाईं ओर रक्खे।

आसन

आसनके सम्बन्धमें भी नियम बना हुआ है कि मोक्ष तथा धन-प्राप्तिके लिये व्याघ्रचर्मपर, ज्ञान प्राप्त करनेके लिये काले मृगचर्मपर और अन्य कार्योंके लिये कंबल, कुशासन और ऊनके आसनपर बैठना पवित्र माना गया है। बाँसके आसनपर बैठकर पूजा करनेसे दरिद्रता, पत्थरपर व्याधि, धरतीपर दुःख, छेदवाली लकड़ीपर अभाग्य, घास-फूसपर बैठनेसे धन और यशका नाश तथा पत्तोंपर बैठनेसे चित्तमें भ्रम होता है।

षोडशोपचार

किसी भी देवताकी पूजा करनेसे पूर्व दीपक जलाकर पहले संकल्प, उसके पश्चात् ध्यान, फिर अंग-न्यास, आवाहन, प्रतिष्ठा और आसन दिया जाता है। उसके पश्चात् षोडशोपचार पूजन किया जाता है। इस षोडशोपचार पूजनमें आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय जल, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाकर प्रणाम किया जाता है।

सब देवताओंकी पूजा करनेसे पहले गणेश और गौरीकी पूजा करनेका विधान है और उसके पश्चात् कलश-स्थापन करके कलशका पूजन और नवग्रहका पूजन किया जाता है। उसके पश्चात् कभी-कभी पंच लोकपाल (गणपति, देवी, वायु, आकाश और अश्विनी) का और दस दिक्पालों (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त) का, षोडश मातृकाओंका तथा चौंसठ योगिनियोंका पूजन करके बाँए हाथमें पीली सरसों, चावल, पुष्प, सुपारी और तीन तारका सूत्र लेकर दाहिने हाथसे ढककर सब रक्षा करनेवाले देवताओं और ऋषियोंका स्मरण करके दाहिने हाथसे सब दिशाओंमें उन्हें छोड़नेके पश्चात् देवपूजन किया

जाता है । जिन देवताओंकी मूर्ति प्रतिष्ठित हो उनका आवाहन नहीं किया जाता, केवल पुष्प छोड़ दिया जाता है। पूजा करनेके पश्चात् पूजन करानेवाले ब्राह्मणको यजमान तिलक करता है और ब्राह्मणको रक्षा-सूत्र बाँधता है। तब पुरोहित भी यजमानको तिलक करके रक्षा-सूत्र बाँध देता है और उसके पश्चात् आरती की जाती है।

आरती

आरतीका भी यह नियम है कि पहले चार बार चरणोंकी आरती की जाय, दो बार नाभि-कमलकी, एक बार या तीन बार मुखकी और सात बार समस्त अंगोंकी आरती की जाय । आरती करनेसे आयु तथा लक्ष्मीकी वृद्धि होती है और नेत्रोंकी शक्ति बढ़ती है । इसलिये आरती हो चुकनेपर दोनों हाथोंसे आरती लेकर देहपर लगानी चाहिए। आरती लेनेसे पहले भगवान्के सामने शंखमें जल लेकर घुमाना चाहिए और फिर सबपर छिड़कना चाहिए। शंखका जल शरीरपर पड़नेसे ब्रह्म-हत्या आदि सब पाप दूर हो जाते हैं ।

इसके पश्चात् देवताकी स्तुति करनी चाहिए, पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिए, क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिए और प्रदक्षिणा करके साष्टांग दण्डवत् करना चाहिए। किन्तु स्त्रियोंके लिये साष्टांग दडवत्का विधान नहीं है। यह कर चुकनेपर यदि प्रतिष्ठित मूर्ति न हो तो विसर्जन कर देनी चाहिए और उसके पश्चात् चरणामृत लेना चाहिए।

चरणामृत

वैष्णव धर्मके अनुसार हाथमें चरणामृत लेना निषिद्ध है, इसलिये पात्रमें लेना चाहिए । यदि हाथमें लेना ही हो तो पहले बाएं हाथपर कोई वस्त्र दुहरा करके रख लेना चाहिए, फिर अपने दाँएं हाथको दोनेके समान बनाकर कानी उँगली और अँगूठा दूर करके तीन आचमनी चरणामृत ले और पीकर उस हाथको मस्तकमें लगा लेना चाहिए जिससे पृथ्वीपर एक बूंद भी न गिरने पावे । इस सर्व-साधारण पूजनके अतिरिक्ति विभिन्न देवताओंके लिये कुछ विशेष विधान भी है जैसे शिवजीके लिये अभिषेक, विजया, कौपीन और बिल्वपत्र चढ़ाना।

षोडशोपचार पूजनमें आसन देकर, स्वागत करके पाद्य या पैर धोनेको गुनगुना, निर्मल और सुगन्धित जल देना चाहिए । इसके पश्चात् दूर्वा, तिल, दर्भ, सरसों, जव, पुष्प, अक्षत और चन्दन डालकर अर्घ्य जल देना चाहिए । फिर आचमनीय जल देकर मधुपर्क (दधि, मधु, घृत) देकर तीर्थ-जल या निर्मल जलका स्नान, फिर दूध, दही, घी, मधु और शक्करसे पंचामृत-स्नान और इसके पश्चात् फिर शुद्ध जलसे स्नान कराना तथा वस्त्र, आभूषण और यज्ञोपवीत देना चाहिए। यह कर चुकनेपर चन्दनका लेप करना चाहिए और फिर अक्षत और कुंकुम मिला हुआ अक्षत उनके माथेपर लगा देना चाहिए । इसके पश्चात् पुष्प और माला चढ़ानी चाहिए और यदि वैष्णव मूर्ति हो अथवा शालग्राम हों तो तुलसी-दल, शिव हों तो बिल्व-पत्र और गणेशजी हों तो दूर्वा चढ़ानी चाहिए । इसके पश्चात् सौभाग्य-द्रव्य, जैसे गणेशजीको सिन्दूर और अन्य देवताओंको हल्दी, कुंकुम, काजल, अबीर, चोवा और चन्दन चढ़ाना चाहिए । इसके पश्चात् अलंकार या आभूषण पहनाकर धूप और दीप दिखाना चाहिए, नैवेद्य रखना चहिए और नैवेद्यका भोग लगा चुकनेपर पुनः आचमनके लिये जल देना चाहिए। इसके पश्चात् ऋतु-फल देकर सुपारी, इलायची आदिसे युक्त ताम्बूल देना चाहिए और अन्तमें अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिए। यही षोडशोपचारका विधान है।

प्रदक्षिणा

अपने-इष्टदेवको दाहिने करके उनकी फेरी देनेको प्रदक्षिणा कहते हैं । उसका नियम यह है कि देवीकी एक, सूर्यकी सात, गणेशजीकी तीन, विष्णु और गुरुकी चार तथा शिवजीकी आधी प्रदक्षिणा करनी चाहिए।

एका चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके ।
चतस्रो गुरुविष्णुभ्यां शिवस्यार्ध-प्रदक्षिणा ।।

कभी-कभी पंचोपचार पूजन ही किया जाता है जैसेगुरु-पादुकाका या वरुणका। पंचोपचारमें गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यसे ही पूजन होता है—

गन्धपुष्पौ धूपदीपौ नैवेद्येति पंचकः।
पंचोपचारमाख्यातं पूजयेत्तत्त्वविद्बुधः ॥

देवताओंका पूजन अत्यन्त पवित्रताके साथ स्नान करके और पवित्र वस्त्र ही पहनकर करना चाहिए जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। यह दक्षिणाचार मूर्ति-पूजाका विधान हैं। वामाचारकी क्रियाएँ बड़ी भयंकर और भीषण होती हैं जिनमें पशु-बलि तथा अन्य अनेक प्रकारके भीषण विधान विहित माने गए हैं किन्तु वास्तविक रूपसे मूर्तियोंकी पूजा उसी क्रमसे करनी चाहिए जिसका वर्णन ऊपर किया जाचुका है।

सनातनधर्म और वर्णाश्रम-व्यवस्था

प्राचीन सनातधर्मकी यह विशेषता है कि—

(१) यह अनादि कालसे गंगाजीकी धाराके समान अविच्छिन्न चला आ रहा है। जैसे गंगाजीकी धारामें सहस्रों नदियाँ मिलकर गंगामय हो जाती हैं वैसे ही प्राचीन सनातनधममें संत-महात्माओंकी वाणी और धर्मोपदेश मिलाकर आर्य सनातनधर्म बन गया है।

(२) जैसे ईसाई धर्मको ईसाने, इस्लामको मुहम्मदने और बौद्ध धर्मको गौतमने जन्म दिया वैसे यह किसी एक व्यक्ति-विशेषद्वारा चलाया हुआ संकुचित धर्म नहीं है। जैसे हाथीके पैरमें सबके पैर समा जाते हैं वैसे ही सनातनधर्ममें सब धर्म समा जाते हैं।

(३) इसका पालन तपस्वी ऋषि-मुनियोंने तथा भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्णचन्द्र आदि अवतारोंने किया।

(४) इस धर्मका गुणगान विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ वेद, उपनिषद्, वाल्मीकीय –रामायण, महाभारत, अनेक पुराणों, काव्यों और नाटकोंमें भरा पड़ा है।

(५) इसके साधारण धर्मका समर्थन प्रत्येक धर्मवाला करता है चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सिक्ख या कोई भी धर्म क्यों न मानता हो ।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

[धैर्य, क्षमा, मनके वेगको रोकना, चोरी न करना, शरीर और मनकी शुद्धि, इन्द्रियोंका दमन करना, बुद्धिसे विचार करना, अध्यात्मविद्यासे

आत्मबल पाना, सत्य बोलना, क्रोध न करना, ये धर्मके दस लक्षण हैं।] विश्वमें ऐसा कौन मनुष्य है, ऐसी कौन स्त्री है जो इन धर्मोंका पालन न करना चाहे ? इसलिये इसे सनातनधर्म कहते हैं।

(६) यह धर्म सांसारिक वैभवका समर्थन करता हुआ परलोकके आनन्दका भी मार्ग दिखाता है।

वर्ण-व्यवस्था

वैदिक कालसे ही संसारके सभी जीव और पदार्थ चार वर्णोंमें विभक्त कर दिए गए थे। सनातनधर्ममें मनुष्यके लिये भी तदनुसार चार वर्णोंकी व्यवस्था मानी गई है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों वर्णोंके अलग-अलग कर्तव्य बतलाए गए हैं—

शमो दमस्तपः शौचं शान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

[अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, शरीरके बाहरकी शुद्धि स्नानसे और भीतरकी शुद्धि मंत्रजप, भजन तथा भक्तिभावनासे करना, तपस्या करना, क्षमाशील होना, सरल होना,आस्तिक बुद्धि, विश्व तथा शास्त्रका ज्ञान, परम तत्त्वका अनुभव, ये सब गुण ब्राह्मणमें स्वाभाविक अर्थात् आपसे आप जन्मसे ही होते हैं]

सत्त्व और रज दोनोंके गुणोंसे युक्त होकर क्षत्रिय उत्पन्न होते हैं। धर्म तथा सांसारिक भोग-विलासमें उनकी प्रवृत्ति होती है—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम्॥

[क्षत्रिय जन्मसे शूरवीर उत्पन्न होता है। उसमें तेज. धैर्य, चतुरता तथा युद्धस्थलमें दृढ रहनेकी प्रवृति रहती है और वह दानी तथा भगवद्भक्त होता है। यही क्षत्रियोंका कर्तव्य है।]

इसी प्रकार वैश्योंका कर्तव्य है—

कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।

[वैश्यका कर्त्तव्य है खेती, गो-रक्षा तथा व्यापार करना।]

शूद्रवर्णका जन्मसे स्वभाव होता है सब वर्णोंकी सेवा करना जो जो सबसे बड़ा धर्म मानागया है—

सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

[सेवाका धर्म इतना गहरा है कि योगियोंके लिये भी कठिन है] तभी कहा गया है—

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।

आश्रम-व्यवस्था

सनातनधर्मके अनुसार मानव-जीवन चार आश्रमोंमें बाँट दिया गया है। जन्मसे पच्चीस वर्षकी अवस्था-तक ब्रह्मचर्याश्रमका विधान है। उपनयन-संस्कारके पश्चात् छात्र इस अवस्थामें गुरुके आश्रममें रहता था। पच्चीससे पचास वर्ष-तक गृहस्थाश्रम माना जाता था जिसमें गृहस्थ, योग्य संतान उत्पन्न करता था और अपने बच्चोंका पालन-पोषण करता था। सोलह संस्कारोंमें विवाह-संस्कारकी प्रथा और गृहस्थाश्रमका कर्तव्य अत्यन्त प्राचीन है। पचाससे पचहत्तर वर्षतक वानप्रस्थ आश्रम था जिसमें स्त्री-पुरुष परिवारसे अलग होकर जंगलमें रहते थे। पचहत्तर वर्षकी अवस्थासे संन्यास-आश्रम प्रारंभ हो जाता था। कलियुगमें गृहस्थ और संन्यास दो ही आश्रम विहित हैं। संन्यासीकी सात अवस्थाएं होती हैं— कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीय, तुरीयातीत, अवधूत। दंडी संन्यासीको तबतक दंड ग्रहण करना चाहिए जबतक शरीरमें शक्ति हो। उसके पश्चात् अवधूत अवस्था प्राप्त होनेपर विधि-पूर्वक तीर्थ-जलमें दंडका विसर्जन कर देना चाहिए क्योंकि अवधूत तो भेदाभेदसे परे हो जाता है जैसे श्री ११०८ श्री स्वामी शंकराश्रमजी महाराज हो गए हैं।

चार पुरुषार्थं

भारतवर्षने जीवनमें चार पुरुषार्थोंके लिये मनुष्यको प्रेरित किया है— धर्म, अर्थ काम और मोक्ष अर्थात् मनुष्य पहले धार्मिक जीवन व्यतीत करे, तब धन कमावे तथा धर्म और धनके सहयोगसे मनकी इच्छाएं पूर्ण करे। केवल धर्म या केवल अर्थसे मनुष्य सांसारिक सुख-वैभवका पूर्ण लाभ नहीं उठा सकता। फिर मोक्षके लिये प्रयत्न करे।

पञ्चकोश

हमारे इस शरीरमें पाँच कोश हैं— अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। हमारा भौतिक शरीर अच्छे भोजनसे बनता है। यही अन्नमय कोश है। अतः, सात्त्विक पदार्थोंका सेवन किया जाय जिससे सौ वर्षकी आयु मिले। इस अन्नमयकोश या शरीरके भीतर प्राणमय कोश है

जो स्थूल शरीरसे अधिक शक्तिशाली है । प्राणायाम–द्वारा प्राणमय कोश बढ़ाना चाहिए। इस प्राणमय कोशमें ही मनोमय कोश है । मन ही इन्द्रियोंका स्वामी है । इसे वशमें करना चाहिए। मनोमय कोशमें विज्ञानमय कोश है जिसमें बुद्धि शुभ-अशुभका विचार करती है। अच्छे ग्रन्थ पढ़ने और सत्संगसे बुद्धिका संस्कार करके उसे सतोगुणी बनाना चाहिए। विज्ञानमय कोशमें ही आनंदमय कोश है । श्रद्धा-विश्वासके द्वारा परमानंद प्राप्त करके आनंदमय कोशका संस्कार होता है ।

षोडश संस्कार

आर्य जीवन-दर्शनके अनुसार पहला संस्कार गर्भाधान संस्कार अर्थात् किसी शुभ मूहुर्त्तमें अपनी विवाहिता पत्नीमें गर्भ स्थापित करना है । गर्भसे चौथे महीनेमें पुंसवन संस्कार होता है । इस संस्कारके प्रभावसे गर्भमें स्थित कन्या भी पुत्र रूपमें बदल जाती है । भारतमें पुत्रका अधिक महत्व है क्योंकि वही नरकसे पिताका उद्धार करता है। पुत्र ही पितरोंका श्राद्ध-तर्पंग करता है । पुत्र ही कुलपरम्पराकी रक्षा करता है। कन्या दूसरे गोत्रमें दी जाती है और वह दोनों कुलोंका उद्धार करती है।

इसके पश्चात् सातवें मासमें सीमन्तोन्नयन संस्कार होता है। बालकके जन्मके समय जातकर्म संस्कार किया जाता है। जब बालक छह मासका होता है तब बालकको अन्न खिलाकर उसका अन्नप्राशन संस्कार करते हैं । इसके पश्चात् पहले, तीसरे या पाँचव वर्षमें चूडाकरण संस्कार होता है जिसमें बालकके गर्भके बालोंका मुण्डन कर दिया जाता है।

ब्राह्मण बालकोंका उपनयन-संस्कार आठवें वर्षमें, क्षत्रियोंका ग्यारहवें वर्षमें और वैश्योंका बारहवें वर्षमें होना चाहिए। इसी संस्कारके पश्चात् बालक द्विज कहलाता है। इसके पश्चात् बालक गुरुके आश्रम रहने लगता था। बालकका पहला गुरु माता है। माता आरम्भसे शिक्षा देती है। माता ही बोलना-चालना सिखाती है। माता ही पिताका ज्ञान कराती है। पिता अपने पुत्र का लालन-पालन करता है। इन दोनोंकी शिक्षाके पश्चात् पुत्र जाकर गुरु के आश्रममें रहने लगता था। वह यज्ञोपवीत धारण करके सन्ध्याकर्म करता था, प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें उठता था, परमात्माका स्मरण करके गुरुके चरणोंमें प्रणाम करता था, शौचसे निवृत्त होकर

स्नानसे शरीर शुद्ध करता था, प्रातः सायं संध्या करता था, प्राणायामसे दीर्घायु प्राप्त करता था, सूर्यको अर्घ्य देता था और सूर्यसे प्रार्थना करता था—

> ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्पश्येम शरदः शतम् ।
> जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः
> शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

[हम सौ वर्ष-तक देखें, सुनें, बोलें, धन-धान्यसे संपन्न रहें, दरिद्र न होवें ।] प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल सूर्य नारायणसे प्रार्थना करते हुए वह यही मनोकामना व्यक्त करता था ।

गुरुकी सेवा करते हुए विद्या प्राप्त करना ही ब्राह्मव्रत कहलाता था । वेदव्रत लेकर छात्र वेदाध्ययन करता था । समावर्तन संस्कारके पश्चात् ब्रह्मचारी अपने गुरुकी आज्ञासे माता-पिताके पास लौट आता था ।

जब ब्रह्मचारी पच्चीस वर्षका होकर गुरुकुलमें स्नातक हो जाता था, उसका शरीर स्वस्थ और ब्रह्मचर्यके तेजसे चमकने लगता था, उसका वीर्य परिपक्व हो जाता था तब जो ब्रह्मचारी अपने मन तथा इन्द्रियोंका निग्रह कर सकता था वह तो जीवन भर उसी आश्रममें जंगलमें रह जाता था किन्तु साधारणतः गुरुकुलसे लौटकर स्नातक समान जाति-कुल-शीलकी कन्यासे विवाह कर लेता था या माता-पिता ही अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार समान कुल-शीलवाली सवर्ण युवतीके गुण देखकर अपने युवक पुत्रका विधिपूर्वक विवाह कर देते थे । वे असवर्ण विवाह नहीं करते थे । सगोत्र विवाह करना धर्मशास्त्रके विरुद्ध था । वर अपने पिताकी सात और माताकी पाँच पीढ़ीमें पड़ी हुई कन्यासे विवाह नहीं करता था । भारतमें विवाह केवल संतान उत्पन्न करनेके लिये ही होता था । हमारे यहाँ संतान उत्पन्न करना भी एक प्रकारका यज्ञ ही माना गया है । मुहूर्त देखकर मासिक धर्मके चार दिनों पश्चात् सम दिनों (६-८-१०) में सहवाससे पुत्र उत्पन्न होता है और विषम दिन (५-७-९ आदि) में सहवाससे कन्याका जन्म होता है ।

> ब्राह्मो दैवस्तथैवाऽऽर्षः प्राजापत्यस्थाऽसुरः ।
> गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

[ब्राम्ह, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच नामके आठ प्रकारके विवाहोंमें ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, ये चार विवाह ही उत्तम माने गए हैं । ब्राह्मण प्रथम चार प्रकारके ही विवाह

करता था। क्षत्रिय लोग गांधर्व विवाह भी करते थे। विवाहमें ब्राह्मण वेदमंत्रोंसे कन्यादान कराते हैं, पिता शुभ मुहूर्तमें योग्य वरको कन्यादान करता है, दोनों कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियोंका गोत्रोच्चार होता है, सूर्य, अग्नि और ध्रुव साक्षी किए जाते हैं, वर-वधू अग्निमें हवन करते हैं तब भाँवर की जाती है। सप्तपदी होनेपर ही विवाह पक्का होता है।

इस प्रकार विवाह करके युवक गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है। गृहस्थाश्रममें आनेपर उसे पाँच ऋण चुकाने पड़ते हैं —

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

ऋषि-महर्षियोंकी कृपासे जो विद्याकी संपत्ति हमें मिली है, जो धरोहर दी गई है उसे योग्य विद्यार्थियोंको पढ़ा देना ही ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

दूसरा यज्ञ या ऋण देवोंका है। हम सूर्यसे प्रकाश पाते हैं। सूर्य विश्वका आत्मा है। सूयके प्रकाशसे चन्द्रको तेज मिलता है। सूर्यसे वर्षा होती है। धरतीको हम माता कहते हैं। उसके अन्नजलसे हमारा पोषण होता है। प्राणवायुसे हमारा जीवन चलता है। इन सबके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। अतः, इन सब देवोंका ऋण चुकानेके लिये हमें यज्ञ करना चाहिए।

तीसरा ऋण पितरोंका है, जिनके लिये तर्पण करना आवश्यक है।

चौथा ऋण अतिथिका है। जो भी कोई द्वारपर आ जाय, उसे अन्न-जलसे संतुष्ट करना बड़ा भारी धर्म है। यदि चांडाल भी आवे तब भी वह पूज्य है।

पाँचवाँ ऋण भूतयज्ञ है। हम वायुमें उड़नेवाले कीड़े नष्ट करते हैं, फल, दूध, जल लेते हैं, भोजन बनाते हैं और पैदल चलते हैं जिनसे छोटे-छोटे जीव नष्ट होते हैं। इस कारण गौ, कुत्ते, काक आदिको बलि दी जाती है, चींटियोंको चीनी चटाई जाती है, गोग्रास दिया जाता है। अतः, भोजनके पहले बलिवैश्वदेव कर लेना चाहिए।

हमारे जीवनका अंतिम संस्कार मृत्युके पश्चात् होता है। हमारे यहाँ शवको अग्निमें जलानेकी प्रथा है जिससे पंचतत्त्वोंका शरीर पंचतत्त्वोंमें मिल जाय। जो कुछ शेष बचता भी है वह गंगा-नर्मदा आदि नदियोंमें प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे पूर्व जन्मके कर्मोंके कारण भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म-मरणके चक्करमें फँसा रहनेवाला जीवात्मा मुक्ति पा जाता

है। अंतकालमें मनुष्यके मनमें जैसी इच्छा रहती है, जैसे उसके कर्म रहते है, वैसा ही उसे दूसरा शरीर मिलता है।

देवता तथा अवतार

जिसमें दिव्य शक्ति हो वही देव है। सूर्य ब्रह्मांडका आधार है-सूर्य आत्मा जगत स्तथुषश्च। चन्द्र, अग्नि आदि अनेक देवता अपनी शक्ति प्रत्यक्ष दिखाते हैं। सूर्य ब्रह्मरंध्रसे बुद्धिको शक्ति देता है, चन्द्र मनको और अग्नि शरीरको। हमारा यह स्थूल शरीर इन्हीं सब सूर्य, चन्द्र और अग्निसे परिपुष्ट होता है। इस स्थूल शरीरके भीतर सूक्ष्म शरीर है जिसे परमेष्ठि-मंडलसे शक्ति मिलती है। उस सूक्ष्म शरीरके भीतर कारण-शरीर है जिसे स्वयम्भू-मंडल शक्ति देता है। इन पाँच भूः, भुवः, स्वः, महः और जनः के आगे तप और सत्य लोक भी हैं किन्तु हम भूः, भूवः, स्वः को ही जानते हैं। हम भूपर जन्म लेते और धीरे-धीरे ऊपरको उठते हैं। पौधे तथा वृक्ष पृथ्वीको छोड़ नहीं सकते। सर्प पेटसे चलता है। सहस्रपदी पाँवसे पृथ्वीको पकड़े रहती है। चौपाई चार पाँवसे, पक्षी दो पाँव और दो पंखोंसे काम लेते हैं किन्तु मनुष्य दो पाँवोंसे पृथ्वीपर खड़ा रहता है। उसे भू अपनी ओर खींचे रहती है।

मनुष्यसे ऊपरकी योनि भूत-प्रेतों-पितरों की है जो अन्तरिक्षमें घूमते हैं। मनुष्यकी जो स्वाभाविक ग्यारह इन्द्रियाँ हैं इनसे अधिक भूत-प्रेत योनिमें होती हैं इसीलिये उनका सूक्ष्म शरीर कभी छोटा और कभी बड़ा रूप धारण कर सकता है। भूत-प्रेतोंसे अधिक शक्ति गंधर्व और पितृ आदिमें होती है। पितृसे अधिक शक्ति देवताओंमें होती है। देवताको ग्यारह इन्द्रियाँ, अष्ट सिद्धि और नव निधि स्वभावतः प्राप्त होती हैं। यदि मनुष्य तपस्या और योगका अभ्यास करे तो वह देवतुल्य शक्तिशाली हो सकता है, वह योगबलसे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें या अंतरिक्षमें उड़ जा सकता है और चमत्कार दिखा सकता है।

मूर्तिपूजा

जो परमात्मा निर्गुण है, सत्त्व, रज और तम इन तीन प्रकारकी प्रकृतियोंसे परे है, उसे मन और बुद्धिसे नहीं जाना जा सकता। अतः, हमारा मन न तो उस निर्गुण और गुणातीत परब्रह्मको जान सकता है और न हम उसे देख सकते हैं। परमात्माकी तो क्या, हम जीवात्माको भी नहीं देख सकते जो एक बालकी नोंकके सहस्रवें अंशसे भी अधिक सूक्ष्म है।

उस परमात्माका ध्यान करनेके लिये ही विश्वमें व्यापक उसकी सत्ताके विभिन्न रूपोंकी मूर्ति बनाकर उसका ध्यान करनेका विधान किया गया है। मूर्ति या प्रतीक-पूजामें मनको एक अवलंब मिल जाता है जिससे चंचल मन नेत्रोंके द्वारा उस मूर्तिको देखता रहे, उसके द्वारा विराट् रूपकी कल्पना करता रहे, उस मूर्तिमें अपरिच्छिन्न परब्रह्मका स्वरूप देखता रहे, उसकी दिव्य शक्तिको नेत्रके सामने उपस्थित रक्खे रहे और जिस भावनासे मनुष्य उस भगवान्को देखे वही रूप प्रत्यक्ष हो जाय।

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
जो इच्छा करिहौ मनमाँहीं। राम-कृपा कछु दुरलभ नाहीं ॥

मूर्ति-पूजाका यही रहस्य है। मूर्ति-पूजा इस नश्वर जगत्से अक्षर जगत्में, इस मर्त्यलोकसे अमृतसागरमें पहुँचा देती है। इसी कारण गोस्वामी तुलसीदासजीने विनयपत्रिकामें कहा है—

को जानै को जइहै जमपुर को सुरपुर सुरधामको
तुलसी बहुत भलो लागत जग-जीवन राम- गुलामको।

तुलसीने स्वामि-भावसे, सूरने सखा-भावसे मीराने प्रियतम-भावसे इसी भगवान्को आराधना की थी। ऐसे भक्त भिन्न भिन्न भावनाओंसे भगवान्की आराधना करते हैं। किन्तु यदि कोई प्रेम-भावनाके बदले द्वेष-भावनासे भी भगवान्को देखे तो उसे भी दर्शन मिल जाते हैं। सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार हैं किन्तु कृष्ण पूर्णावतार हैं—

सर्वं चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।

गौ माता

भारतके लोगोंका विश्वास है कि 'गावस्त्रैलोक्यमातरः' [गौएं तीनों लोकोंकी माता हैं ।] इसलिये वेदों, पुराणों और भारतके सभी धर्मग्रन्थोंमें गौ माताकी महिमाका गुणगान किया गया है।

योरोपीय वैज्ञानिकोंने भी गौके दूधको पूर्ण भोजन माना है। गौके दूधकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने बताया है—'गाय अद्‌भुत रसायनशाला है। वह घास-पात खाकर मनुष्यमात्रके लिये ऐसा पौष्टिक भोजन प्रस्तुत कर देती है जो विश्वमें कहीं नहीं मिल सकता ।' वह अमृत पिलाती है। हमारे यहाँ भी शास्त्रोंमें कहा गया है—

तृणानि भक्षते नित्यममृतं स्रवते प्रभो।
पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
पवित्रं परमं ज्ञेयं स्नाने पाने च भार्गव ॥

गौके दूध, दही, मक्खन और घीके गुणोंका वर्णन हो नहीं सकता। गोमूत्र और गोबरकी भी बड़ी महिमा पाई जाती है। जिस लक्ष्मीकी उपासना भारतका वैश्य वर्ण करता है और आज विश्वके जिस व्यापारपर सब देशोंकी उन्नति ही नहीं, अभ्युदय भी निर्भर है, उसका आधार, उस लक्ष्मी और संपत्तिका अवलम्ब गोबर है। भारत तो कृषि-प्रधान देश है, जिसका जीवन खेतीपर अवलम्बित है। भारतके किसान गाय-बैलका गोमूत्र और गोबरकी खाद खेतोंमें डालकर चौगुनी-पंचगुनी नहीं वरन् कई गुनी उपज खेतोंसे निकाल लेते हैं।

पुराणोंमें कथा आई है कि एक बार जलमें समाधि लगाकर तप करते हुए च्यवन ऋषिको मछुओंने जालमें फँसा लिया। ऋषिने पूछा कि मुझे क्यों जालमें फँसाया ? तब मछुओंने कहा कि हमारा व्यापार ही मछली फँसाकर बेचना और उसीसे अपने परिवारका पालन-पोषण करना है। इसपर ऋषिने आज्ञा दी कि तुम मुझे भी बेचकर अपना कार्य करो। बहुत नहीं-नहीं करनेपर भी जब ऋषि न माने तब मछुए उन्हें उस देशके राजाके पास ले गए। जब राजाने ऋषिके बदले मछुओंको कुछ धन देना चाहा तब ऋषिने पूछा कि मेरा मूल्य क्या इतना ही धन है। राजा बड़े संकटमें पड़ गया । जब राजा अपना राज्यतक देनेको तैयार हो गया तब भी ऋषिने कहा कि मेरा मूल्म क्या केवल तुम्हारा राज्यभर है ? तब राजाने ऋषियोंकी सम्मतिसे एक गौ च्यवन ऋषिके सामने लाकर खड़ी कर दी। च्यवन ऋषि चुप हो गए क्योंकि गायमें सब देवता वास करते हैं और कहा भी गया है— गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित्।

पौराणिक कथासे परिचित लोग जानते ही होंगे कि मर्यादापुरुषोत्तम रामका जन्म गोदुग्धके हविके प्रसादसे हुआ था। गोबर सूँघने और नखोंमें लगानेसे क्षय-जैसा भयंकर रोग भी नष्ट हो जाता है। महादेव गोविन्द रानाडेने लिखा है कि हमारे दादाके सब बच्चे मर-मर जाते थे। तब दंपतिने एक साधुके आदेशसे एक वर्षतक गौको गेहूँ खिला-खिलाकर उसके गोबरमेंसे निकले हुए गेहूँ धो-सुखाकर उसके आटेकी रोटी बना-बनाकर खाई । फल यह हुआ कि वे दीर्घजीवी संतान पा सके।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें गो-दुग्धकी विशेषता बताते हुए कहा गया है कि धारोष्ण दूध सर्वश्रेष्ठ होता है। गोदुग्धमें सोंठ घिसकर लगानेसे सिरकी पीडा दूर होती है। कच्चा दूध, घी और मिसरी खानेसे गर्मी दूर होती है। गरम दूध और सोंठका चूर्ण सेवन करनेसे हिचकी दूर होती है। गौके दूधमें पत्थर बुझाकर पीनेसे दस्त बन्द होते हैं। छुहारे या अखरोटके साथ दूधका सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती तथा मोटापन दूर होता है। तत्काल निकाले हुए दूधमें नीबूका रस डालकर सेवन करनेसे रक्तार्श दूर होता है। काली मिर्च और गर्म दूध पीनेसे प्रतिश्याय (जुकाम) दूर होता है। मलाईके साथ मिसरी खानेसे वीर्य-वृद्धि और रक्त-शुद्धि होती है। गुड़ और गर्म दूध पीनेसे लघुशंका होती है। गर्म दूधमें मधु मिलाकर पीनेसे कफ दूर होता है। दूधके साथ चार पीपल पीनेसे जीर्ण ज्वर दूर होता है। कँथकी पत्तीका चूर्ण दूध और मिसरीके साथ पीनेसे धातु-रोग दूर होते हैं। कँथकी पत्ती और सतावर दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंका दूध शुद्ध होता है। श्यामा गौका दूध पीनेसे क्षयरोग दूर होता है।

दही अग्निवर्धक है। दही-खाँड़ खानेसे जुकाम दूर होता है। दहीमें पानी और जीरा मिलाकर पीनेसे अजीर्ण दूर होता है। दहीभात खानेसे दस्त वन्द होता तथा आँवँकी मरोड़ दूर होती है। दहीके साथ मिसरी खानेसे प्यास शान्त होती है। सिरपर दही मलनेसे बाल कोमल होते हैं। आयुर्वेदमें कहा गया है—

न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगा न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्।
यथा सुराणां अमृतं नु तद्वत् तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

[मट्ठा पीनेवालेको कभी कोई रोग नहीं होता। मनुष्योंके लिये मट्ठा वैसा ही है जैसे देवताओंके लिये अमृत।] भोजनके आध घण्टे पश्चात् मट्ठा पीना चाहिए। अजवायन और मट्ठा पीनेसे अतिसार (दस्त आना) उदर-रोग तथा वायुगोला दूर होता है। पीली हरड़ और छाछ सेवन करनेसे संग्रहणी दूर होती है। मिसरी और मट्ठा पीनेसे लूका दाह दूर होता है। मट्ठा और मधु सेवन करनेसे दस्त वन्द होते हैं। मट्ठा पीनेसे वादी दूर होती है तथा तिजरिया, शीतज्वर, विषमज्वर, पेटके सब रोग और प्रदर रोग दूर होते हैं। घी और मक्खन आयुवर्द्धक, रुचिप्रद और शक्तिवर्द्धक होता है। धोया घी लगानेसे फुन्सी, जलन और सिरकी पीडा दूर होती है। गोमूत्रका सेवन करनेसे नेत्ररोग, उदर-कृमि, पांडुरोग, कानकी पीडा और

तिल्ली दूर होती है। आमकी गुठली गोमूत्रके साथ घिसकर लगानेसे अंडवृद्धि कम होती है। राखके साथ गोमूत्र लगानेसे फोड़ा अच्छा होता है। गोमूत्रमें सरसों पीसकर लगानेसे फीलपाँवंका रोग दूर होता है। अरंडका तेल और गोमूत्र सेवन करनेसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं। मुखपर गोमूत्र लगानेसे मुखकी झाँई दूर होती है। काली गौका मूत्र तीन दिन धूप और चाँदनीमें रखकर पाँच-पाँच बूँदें दूधमें डालकर बच्चेको पिलानेसे घाव भरता है। नमकके बर्त्तनका चूर्ण और गोबर लगानेसे शरीरपर पसीना नहीं आता और शरीरकी दुर्गन्ध दूर होती है। गोबरसे लीपनेपर तो स्थान पवित्र होता ही है। इस प्रकार गौका दूध, दही, मट्ठा, गोबर और गोमूत्र सभीसे मनुष्यका हित होता है, फिर उसे माता क्यों न माना जाय।

गौ-माताके दूध, दही और घीसे अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ और भोजनके पदार्थ बनाए जाते हैं। यही कारण है कि भारतके निवासियों और हिन्दुओंका भौतिक सुख और धार्मिक जीवन गौपर अवलंबित है। हमारे लिये तो मृत्युके पश्चात् भी गौ ही वैतरणीसे पार करती है।

यज्ञ

भगवत्प्राप्तिके प्रधान तीन साधन हैं— कर्म, भक्ति और ज्ञान। कर्म तो क्षण-क्षणमें हो रहा है। सारी सृष्टिमें यही यज्ञ-रूपी क्रिया हो रही है जिसे जीवन कहते हैं।

जिस परब्रह्मसे विश्व उत्पन्न हुआ है वही परब्रह्म ही विश्व है। मकड़ीसे उत्पन्न मकड़ीके जालेके समान वह विश्वको उत्पन्न करके विश्वके कण-कणमें व्याप्त भी है और विश्वका आधार भी है। इस प्रकार ब्रह्म-रूपी अग्निमें हविका हवन हो रहा है और वह ब्रह्मयज्ञ प्रतिक्षण होता चला जा रहा है।

योगी या ज्ञानी पुरुष जो परब्रह्मका चिंतन करते हैं वे भी ब्रह्माग्निमें यज्ञ करते हैं। कुछ योगी लोग इसी शरीरमें संयमका यज्ञ करते हैं, इन्द्रिय और मनको वशमें करते हैं और रागद्वेष-रहित होकर इंद्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण करते हैं।

कुछ योगी संपूर्ण इन्द्रियोंकी चेष्टाओं तथा प्राणोंके व्यापारको योगाग्निमें हवन करते रहते हैं। इस प्रकारके और भी यज्ञ होते चले जा रहे हैं जैसे कोई अपना धन लोकसेवामें अर्पण कर देते हैं, कोई तप

करते हैं, कोई अष्टांग योग करते हैं, कोई अहिंसा-व्रत लेते हैं, कोई शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं, कोई जप-यज्ञ करते हैं।

कोई-कोई तपस्वी अपान वायुमें प्राण-वायुका हवन कर देते हैं और कोई प्राण-वायुमें अपान वायुका और कोई योगी प्राण तथा अपानको रोककर प्राणायाम करते हुए भगवच्चिन्तन करते हुए ध्यानस्थ हो जाते हैं। कोई-कोई योगी नियमित सात्त्विक आहार लेते हैं अर्थात् स्थूल शरीरकी रक्षा करते हुए आंन्तरिक जगत्का आनन्द लेते हैं, कुछ योगी तमोगुणी और रजोगुणी पदार्थोंका त्याग करके केवल सात्त्विक वृत्ति अपना लेते हैं। ऐसे सत्त्वगुणी प्रकृतिवालोंके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता। उनका मन संसारके भोग-विलासोंकी ओरसे हट जाता है और केवल परमात्माकी लीला समझकर वे अपना जीवन पवित्र बना लेते हैं। वे जो सात्त्विक पदार्थ ग्रहण करते हैं उसे ईश्वरका प्रसाद समझते हैं। इस प्रकार वे अमृतपान करके भीतर ही भीतर दिव्य आनन्द पाते हैं।

इस ज्ञान-रूपी अमृतका पान करनेवाले महात्मा लोग परब्रह्मरूप हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुषको सारा विश्व ही यज्ञरूप दिखाई देने लगता है वह मानव-जीवनमें ही लोक तथा परलोक दोनोंका सुख प्राप्त कर लेता है। ऐसे तत्त्वदर्शी ज्ञानीको सदा आनन्द ही आनन्द मिलता है किन्तु जो केवल शरीर-सुखको ही सब कुछ समझते हैं, जो अपनी बुद्धिसे विचार नहीं करते, वे प्राणी संसारके कष्ट पाते हैं और मृत्युके पश्चात् भी नरकमें दुःख सहते हैं। सदाचारी सद्गृहस्थ जो संतान उत्पन्न करता है वह भी यज्ञ ही है।

इस प्रकार वेद तथा धर्मशास्त्रोंमें बहुतसे यज्ञोंका वर्णन मिलता है। उन सब यज्ञोंको शरीर, मन तथा इन्द्रियांको क्रियाओं-द्वारा उत्पन्न जानकर तत्त्वदर्शी लोग निष्काम भावसे आसक्ति-रहित यज्ञ-कर्म करते रहते हैं।

ऐसे धर्मात्मा लोग परोपकार करके वैसे ही अमृत पाते हैं जैसे अतिथि-सत्कार करके या भगवान्को नैवेद्य चढ़ानेके पश्चात् प्रसाद-रूपसे भोजन अमृत हो जाता है। जैसे उस भोजनसे तृप्ति और शान्ति मिलती है वैसे ही योगी भी सिद्धि पा लेता है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

[जो सज्जन परोपकारमें अपनी संपत्ति अर्पण कर देता है, जो अग्निमें

घी, हवि और साकल्यकी आहुति अर्पण करता है, जो सांसारिक और पारलौकिक सुख तभा सिद्धिके लिये द्रव्य-यज्ञ करता है उसकी अपेक्षा वह ज्ञानी पुरुष अधिक श्रेष्ठ है जो योगाभ्यास-द्वारा इन्द्रिय और मनको एकाग्र करके परमात्माके चिंतनमें लगाकर सबको परमात्मरूपमें देखनेका ज्ञान-यज्ञ करता है। यह ज्ञान-यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ होता है।] हम जितने अच्छे कर्म करते हैं, दैवी संपत्तिका जो आचरण करते हैं उसका तात्पर्य यही है कि हममेंसे भेद-बुद्धि निकल जाय और हम परमात्म-दृष्टि प्राप्त कर लें। इसी कारण ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

[जैसे प्रज्वलित अग्निसे इन्धन जल जाता है वैसे ही ज्ञान-रूपी अग्नि भी संपूर्ण कर्मोंको भस्म कर देती है। ज्ञान मनुष्यको पवित्र कर देता है।]

संसारमें ज्ञान ही मनुष्यको पवित्र बना देता है। ज्ञानी समत्व और बुद्धिरूपी योगके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध कर लेता है। वह अन्तःकरणमें भगवान्के स्वरूप और भगवत्तेजका दर्शन करता है। ऐसा ज्ञानी भक्त परम शान्ति पाता है। इसी कारण गीतामें ज्ञानी भक्तको सर्वोच्च माना गया है।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

[इन चार प्रकारके भक्तों (आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और निष्काम ज्ञानी) मेंसे सर्वश्रेष्ठ भक्त ज्ञानी ही मुझे सबसे अधिक प्रिय है क्योंकि वह मेरे स्वरूपको जानकर मेरी उपासना, मेरी आराधना करता है।]

व्रतोत्सवका महत्त्व

पूज्य मालवीयजी महाराजने 'हिन्दू धर्मोपदेश'में एकादशी व्रतका वर्णन करते हुए लिखा है — 'मनुष्य अपने कपड़े प्रतिदिन धोता है किन्तु कई दिन तक लगातार पहननेसे जब कपड़ा अधिक मैला हो जाता है तब उसे साबुन या रीठेसे धोता या धुलवाता है। जो मैल नित्य धोनेसे नहीं दूर

होती वह आठवें दिन साबुनसे धोनेपर दूर हो जाती है और उसे पहननेसे मन प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार ऋषियोंने मनुष्य-मात्रके लिये प्रातः-काल और सायंकाल सन्ध्या तथा उपासनाकी जो विधि बतलाई है उससे मनका विकार दूर हो जाता है किन्तु जो कुछ पाप या भूल प्रतिदिन होनेसे शेष रह जाती है उसका प्रायश्चित्त एकादशी व्रत करनेसे हो जाता है। इसीलिये इस तिथिकी एकादशी, हरिवासर या ईश्वरका दिन कहते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि यद्यपि ईश्वरका ध्यान और पूजन तो प्रतिदिन करना चाहिए तथापि पन्द्रहवें दिन अपने नित्यके काम और व्यापारसे मनको खींचकर धर्मके भावसे विशेष भावित होना चाहिए, जो कुछ पाप या भूल बन पड़ी हो उसपर पछतावा करना चाहिए। ईश्वरका ध्यान, स्तवन, मंत्रजप, कथा और धर्मोपदेशसे मनमें ज्ञान, भक्ति और धर्मभावना दृढ करनी चाहिए।

एकादशी व्रत करनेका अधिकार ब्राह्मणसे लेकर चाण्डाल-पर्यन्त सभी नरनारियोंको है। तत्त्वसागरमें लिखा है—

मातेव सर्वबालानामौषधं रोगिणामिव।
रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथिः॥
संसाररोगदष्टानां नराणां पापकर्मणाम्।
एकादश्युपवासेन सद्य एव सुखं भवेत्॥

[जैसे बच्चोंको माताका सहारा रहता है और माता हितकारी होती है, जैसे रोगीके लिये औषधि लाभप्रद होती है वैसे ही सब नरनारियोंके हितार्थ एकादशी व्रत है। पापोंको दूर करनेवाली तिथि एकादशी सबके लिये सुखकारी और मंगलकारी होती है।]

विशोधनमिदं पुंसां शुष्कार्द्रस्यांहसः परम्।
तत्स्वरूपं श्रुतं तीर्थं स्नानादप्यधिकं विदुः॥
स्वर्गमोक्षप्रदा ह्येषा राज्यपुत्रप्रसाधिनी।
सुकलत्रप्रदा ह्येषा शरीरारोग्यदायिनी॥

[जो पाप पुराने होकर सूख गए हैं, जो पाप हरे और नये हैं उन सब पापोंको धोनेके लिये एकादशी व्रत सबसे बड़ा साधन है। इसका फल तीर्थ-स्नानसे भी अधिक बताया गया है। एकादशी-व्रतसे राज्य, पुत्र तथा भली और आज्ञाकारिणी स्त्री प्राप्त होती है। श्रद्धा-भक्तिसे एकादशी व्रत करनेसे स्वर्ग ही नहीं, मोक्ष-तक प्राप्त हो जाता है।]

वृद्ध, दुर्बल, बच्चे, सधवा स्त्री और रोगियोंको व्रत नहीं करना चाहिए। जो सौभाग्यवती स्त्री व्रत रखती है वह अपने पतिकी आयु

हरती है। जो लोग निर्जल और निराहार व्रतोपवास न कर सकें वे गोदुग्ध और सात्त्विक फल ले सकते हैं। एकादशीको यदि कोई व्रत न भी रख सके तो उसे मांस, मदिरा और तमोगुणी पदार्थोंका सेवन तो करना ही नहीं चाहिए क्योंकि इनसे मन कलुषित और विकारी हो जाता है। एकादशी के दिन स्त्री या पुरुष सभीको ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके भगवत्कथा, भजन, कीर्तन और मंत्र-जप करना चाहिए जिससे मन पवित्र हो सके।

पुराणोंमें राजा अंबरीषकी कथा आई है कि एक बार जब वे एकादशी व्रत कर रहे थे उसी समय दुर्वासा ऋषि अतिथि होकर पधारे और स्नान करने चले गए। ऋषिने स्नानमें देर लगा दी। द्वादशी बीत रही थी इसलिये ऋषियोंकी आज्ञासे राजा अंबरीषने भगवान्‌का चरणामृत लेकर व्रतकी रक्षा की। इसपर दुर्वासा क्रोधित हो गए कि तुमने अतिथि-सत्कारसे पूर्व जल क्यों ग्रहण किया ? निमंत्रित ब्राह्मणको भोजन करानेसे पहले चरणामृत क्यों लिया ? उनका क्रोध देखकर भगवान्‌का सुदर्शन चक्र दुर्वासाको नष्ट करनेके लिये दौड़ पड़ा। दुर्वासा तब भगवान् विष्णुके पास रक्षाके लिये गए किन्तु भगवान्‌ने उन्हें भक्त अंबरीषकी शरणमें ही भेज दिया। ऋषिने जब राजासे क्षमा माँगी तब कहीं ऋषिके प्राण संकटसे बच पाए। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अपना शरीर नीरोग रखना चाहे, मन प्रसन्न रखना चाहे और अपनी आत्म-शक्ति बढ़ाना चाहे उसे एकादशी-व्रत अवश्य करना चाहिए।

हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें दो प्रकारके व्रत कहे गए हैं। इनमें एक है काम्य व्रत, जिससे भौतिक सुख मिलता है। इन काम्य व्रतोंमें उपवास नहीं किया जाता। श्रावणी, दशहरा, दीपावली और होली ऐसे ही पर्व हैं जिन्हें ब्राह्मणोंसे लेकर शूद्र- तक सभी मनाते हैं। श्रावणी ब्राह्मणोंका, दशहरा क्षत्रियोंका, दीपावली वैश्योंका और होली शूद्रोंका पर्व है।

किन्तु दूसरे प्रकारके रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि पर्वोंपर श्रद्धा-भक्तिसे व्रत किया जाता है। इन पर्वोंपर भगवान्‌का गुणगान करना चाहिए और शरीरकी अपेक्षा मन तथा बुद्धिकी शक्ति अधिक बढ़ानी चाहिए।

श्राद्ध

अपने पितरोंके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञताका भाव प्रदर्शित करना ही श्राद्ध कहलाता है। इस दृष्टिसे संसारकी सभी जातियाँ श्राद्ध करती हैं। ईसाई तथा मुसलमान लोग कब्रोंपर फूल चढ़ाते हैं, शान्तिपाठ (फ़ातेहा) पढ़ते हैं। हम सनातनधर्मी लोग किसीकी मृत्युके पश्चात् उसके निमित्त श्राद्ध

तथा तर्पण करते हैं।

आत्मा अजर और अमर है और विस्तृत आकाशके समान व्यापक है। समस्त ब्रह्मांड ही आत्मामय है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म कणमें भी आत्मा व्यापक है, किन्तु उस आत्माका प्रकाश स्थूल शरीरमें वैसे ही झलकता है जैसे तारमें व्यापक बिजलीका प्रकाश बत्ती लगानेपर ही दिखाई देता है।

आत्माके दो स्वरूप हैं—एक निर्गुण, जिसके लिये श्राद्धविधि नहीं होती क्योंकि वह प्रकृतिसे परे और व्यापक है। उसमें कोई विकार नहीं होता। वह निर्लेप है। वह जन्ममरणके चक्करसे परे है। उसे अव्यय और गुणातीत कहते हैं। उसीकी प्रेरणासे प्रकृति अपना कार्य करती है, ग्रह चलते हैं, पक्षी उड़ते हैं और प्राणिमात्र अपना काम करते हैं। जो परमात्मा अपनी प्रकृतिके बलसे कार्य करता है उसे सगुण ब्रह्म कहते हैं।

प्रकृति भी दो प्रकारकी होती है—विद्या और अविद्या। विद्या प्रकृति और ब्रह्म या आत्मा ही ईश्वर है किन्तु अविद्या प्रकृति और आत्मावाला ही जीवात्मा है। राम, कृष्ण आदि अवतार सगुण ब्रह्म ही हैं। जीवात्मामें अट्ठारह आत्मा हैं उनमेंसे अखंडात्मा, अव्यय, अक्षर, क्षर तथा पाँच प्रकृति [शान्त (अव्यक्त), महान् (महत्), विज्ञान (बुद्धि), प्रज्ञान (मन) और प्राण (इन्द्रियाँ)] तो ब्रह्मरन्ध्रसे, शेष नौ आत्मा या नौ तंतु पंरके तलत्रसे इस भोक्ता जीवात्मामें आते हैं।

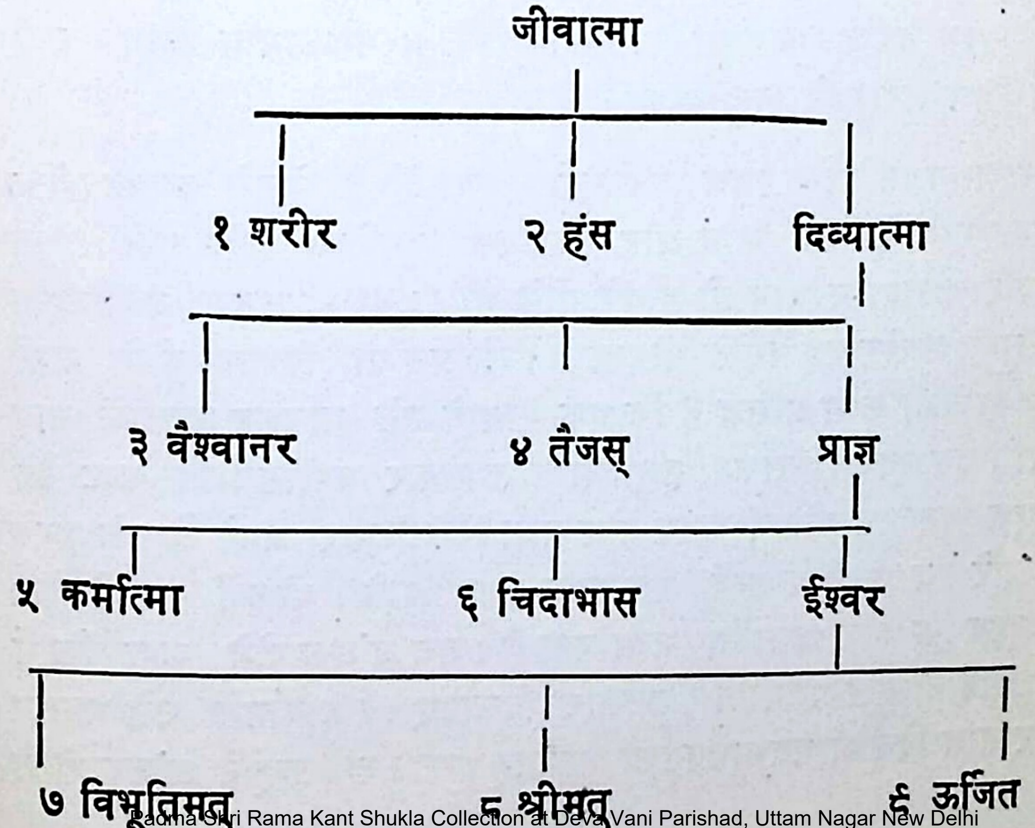
जीवात्मा
१ शरीर
२ हंस
दिव्यात्मा
३ वैश्वानर
४ तैजस्
प्राज्ञ
५ कर्मात्मा
६ चिदाभास
ईश्वर
७ विभूतिमत्
८ श्रीमत्
९ ऊर्जित

इन १८ आत्माओंमेंसे प्रत्येककी चार-चार अवस्थाएँ होती है — (१) प्रभच : आत्माका प्रादुर्भाव कहाँसे होता है, ब्रह्मरन्ध्रसे या तलवेसे ? (२) योनि : किस मार्गसे आत्मा स्थूल शरीरमें प्रवेश करता है ? (३) प्रतिष्ठा : आत्मा कहाँ रहता है ? (४) आशय : आत्माका कार्यक्षेत्र क्या रहता है ?

लिङ्ग-स्थानसे १०।। अंगुलपर नाभि है। नाभिसे १०।। अंगुलपर हृदय, हृदयसे १०।। अंगुलपर गोस्तन तथा गोस्तनसे १०।। अंगुलपर ब्रह्मरन्ध्र है। आत्मा इन स्थानोंमें ठहरते हैं और शरीर भरमें व्याप्त हैं। केवल रोम और बाहर निकले हुए नखोंमें आत्माका वास नहीं है।

स्वयम्भू-मंडलसे कारण-शरीर शक्ति पाता है। परमेष्ठि-मंडलसे वह सूक्ष्म शरीर शक्ति पाता है जिसमें पंच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा पंच तत्त्व मिले रहते हैं। यह सूक्ष्म शरीर ही स्थूल शरीरमें आता है। यह स्थूल शरीर भूभाग और अन्नजलसे पुष्ट होता है। मनको चन्द्रसे तथा बुद्धिको ब्रह्मरन्ध्र द्वारा सूर्यसे शक्ति मिलती है। इसी ब्रह्मरन्ध्रकी रक्षाके लिये शिखा रक्खी जाती है। जब गर्भ (डिम्भ) पाँच महीनेका हो जाता है तब आत्मा आने लगता है। यदि सात महीनेमें आत्मा प्रबल हो जाता है तब गर्भ माताके पेटसे बाहर निकल पड़ता है, किन्तु प्रायः नौ या दस महीनेमें बच्चेका जन्म होता है। जब नवीन शरीरमें आत्मा प्रवेश करता है तब धक्का-सा लगता है। यही सूक्ष्म शरीर जब स्थूल शरीरको पुराने वस्त्रके समान त्याग देता है तब उस स्थूल शरीरकी मृत्यु कहलाती है।

सनातनधर्मी लोग स्थूल शरीरको जला देते हैं जिससे पञ्चतत्त्वोंका अंश पञ्चतत्त्वोंमें मिल जाय और शरीरकी दुर्गति न होने पावे। स्थूल शरीर यदि जलाया न जाय तो मृत्युके पीछे भी हंसात्मा उससे बँधा रहता है और सूक्ष्म शरीर वह दुर्गति भोगता है जिसे प्रेत या पिशाच-योनि कहते हैं। धुंधुकारीकी कथा प्रसिद्ध है कि एक वेश्याने उसे मारकर धरतीमें गाड़ दिया था। इस कारण उसका हंसात्मा प्रेत होकर पड़ोसियोंको कष्ट देने लगा। एक दिन जब गोकर्ण ऋषि तीर्थयात्रासे लौटकर अपने पिताके घरमें आकर ठहरे तब रात्रिमें उन्हें प्रेत-बाधा जान पड़ी। गोकर्ण तपस्वी थे। उन्होंने पूछा कि कौन अशान्ति मचा रहा है। तब धुंधुकारीने कहा कि मैं आपका भाई हूँ, मुझे प्रेतयोनिसे छुटकारा दिलाइए। तब बाँसमें उसे भरकर लगातार सात दिन श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाकर उन्होंने धुंधुकारीको

मुक्त किया ।

इस स्थूल शरीरके भीतर जो सूक्ष्म शरीर है वही जन्म-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है । वह जो शुभ कर्म करनेसे पुण्य और अशुभ कर्मसे पाप करता है उसीका फल उसे भोगना पड़ता है ।

सूक्ष्म आत्मा स्थूल शरीर छोड़कर पहले उस ओर जाता है जिस ओर शरीरकी छाया पड़ती है । इसे दक्षिण अर्चि कहते हैं । जहाँतक शरीरका प्रकाश जाता है उसे उत्तर अर्चि कहते हैं । दक्षिणायनमें मृत्यु हो तो यह जीवात्मा क्रमशः स्थूल शरीरकी छाया, पृथ्वीकी छाया और चन्द्रकी छायाकी ओर खिचकर भूत-प्रेत योनि पाकर पितृपथमें जाता है । पितृयानके तीन भेद हैं--द्यौः, पीलमती और उदवन्ती । इसमें केवल पुण्यात्मा जाते हैं और जो पापी हैं वे यमपथकी ओर बढ़ते हैं । सूर्यकी सात किरणें हैं, जिनमेंसे एक-एकके चार-चार भेद और फिर उनमेंसे प्रत्येकके तीन-तीन भेद होते हैं । ये ही सब ८४ प्रकारके नरक कहलाते हैं ।

जो उत्तरायणमें शरीर छोड़ते हैं वे देवयानकी ओर जाते हैं, जिसके दो मार्ग हैं—एक ब्रह्मपथ, जिसे परामुक्ति कहते हैं, दूसरा कामप्रद लोक जिसे अपरा मुक्ति कहते हैं । पुराणोंमें चार प्रकारकी अपरा मुक्ति या क्रम-मुक्तिका वर्णन है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य । किन्तु विदेहमुक्ति या जीवन्मुक्तिकी अवस्था ही सबसे श्रेष्ठ है । इस मुक्तिमें जीवन-मरणका बंधन-चक्र छूट जाता है । जो आत्मा अपने पुण्यसे स्वर्ग और पापसे नरक या अधोगति पाते हैं उन आत्माओंके लिये तर्पण और श्राद्ध आवश्यक है ।

यज्ञसे मेघ बनते हैं, मेघसे वर्षा होती है, वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे पुरुषमें वीर्य उत्पन्न होता है । वही स्त्रीके गर्भमें पड़कर स्थूल शरीर बन जाता है । मनुष्यके इस वीर्यका संबंध सात पीढ़ियों-तक रहता है । इसीलिये पिताकी मृत्युसे बारह दिनपर पुत्र सपिंड करता है । चन्द्रमास अट्ठाइस दिनका होता है । इस कारण अट्ठाइस चावलोंका एक पिंड दिया जाता है और उसीके कारण चंद्रलोकसे एक पितर सूर्यलोक-गामी हो जाता है । जो पुत्र पिंड नहीं देता उसके पितर कष्ट पाते हैं और वे अपने पुत्रको शाप देते हैं ।

तपस्वी और विद्वान् ब्राह्मणोंको सात्त्विक पदार्थोंका भोजन कराना तो स्थूल श्राद्ध है किन्तु स्मारक बनाकर उन्हें स्मरण करना या पूर्वजोंका

गुणगान करना सूक्ष्म श्राद्ध है। इसलिये माता-पिताका नाम स्मरण करके प्रतिदिन या केवल पितृपक्षमें तर्पण किया जाता है। इस प्रकार पितृ-पूजन, तर्पण और श्राद्धके द्वारा हम पितरोंके ऋणसे छुटकारा पाते हैं।

आयुः पुत्रान्यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून्सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

[पितरोंके पूजन तथा तर्पणसे दीर्घ आयु, पुत्र, संपत्ति, धनधान्य, भौतिक सुख, स्वर्ग और यश सब प्राप्त होता है और तर्पण करनेसे उनका आशीर्वाद मिलता है।]

निर्गुण परब्रह्म अपनी प्रकृतिके योगसे तीन सगुण रूप धारण करता है—१. ब्रह्मा (सृष्टि उत्पन्न करनेवाला), २. विष्णु (पालन-पोषण करनेवाला) और ३. रुद्र (सृष्टिका संहार करनेवाला) ये तीनों कार्य प्रत्येक जीव और वस्तुमें प्रतिक्षण होते रहते हैं। इसी कारण हम लोग ब्रह्मासे लेकर ऋषि, देव, पितृ आदि सबके लिये तर्पण करते हैं—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरस्सर्वे मातृमातामहादयः॥

गुरु और गुरुपूजाका महत्त्व

भारतवर्षकी संस्कृतिमें गुरुको इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है कि गुरुको साक्षात् परब्रह्म बताया गया है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इतना ही नहीं, हमारे यहाँ तो गुरु, मन्त्र और देवता तीनोंको एक ही देवस्वरूप माना गया है—

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थवाचकाः।
तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थवाचकः॥

[जैसे घट, कलश और कुम्भ तीनोंका एक ही अर्थ है घड़ा, वैसे ही मन्त्र, देवता और गुरु तीनों एक अर्थके बोधक हैं।]

यही कारण है कि हमारे यहाँ गुरुको परम तत्त्व [गुरुदेवः परं तत्त्वं, नास्ति तत्त्वः गुरोः परम्, गुरुरेव शिवः साक्षात्], साक्षात् भगवान् शंकर

बताया गया है। इसलिये गुरुको कभी मनुष्य नहीं समझना चाहिए। उनमें सदा देवबुद्धि रखनी चाहिए। गुरुतन्त्रमें लिखा है—

गुरौ मनुष्यताबुद्धिः शिष्याणां यदि जायते।
न हि तस्य भवेत् सिद्धिः कल्पकोटिशैतैंरपि ॥

[यदि शिष्य अपने गुरुको मनुष्य समझ बैठे तो करोड़ों कल्पोंतक उसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती।]

इसी भावका समर्थन तन्त्रराज और गुरु-गीतामें भी किया गया है—

गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य तु।
न कदाचित् भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देवपूजनैः ॥

[गुरुको कभी मनुष्य नहीं समझना चाहिए। यदि कोई शिष्य ऐसा समझ ले तो उसे कभी सिद्धि नहीं मिलेगी चाहे वह जितना भी मन्त्र जपे या देवपूजन करे।]

इसी भावको और भी बलपूर्वक स्थापित करते हुए उसी गुरुगीतामें कहा गया है—

गुरौ मानुषबुर्द्धिं तु मन्त्रे चाक्षरभावनाम्।
प्रतिमासु शिलाब्रुर्द्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥

[जो व्यक्ति गुरुको मनुष्य, मन्त्रको अक्षर और देव-प्रतिमाओंको शिला समझता है वह नरकमें जाता है।]

मनुस्मृतिमें गुरुके माहात्म्यका प्रतिपादन करते हुए बताया गया है—

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥
आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥

[माताकी भक्तिसे यह लोक, पिताकी भक्तिसे मध्यम या अन्तरिक्ष लोक और गुरुकी सेवा करनेसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जो मनुष्य जीवनभर गुरुकी सेवा करता है वह बिना प्रयत्नके ही शाश्वत धम या स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।]

इतना ही नहीं—

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनम् ।
सर्वतीर्थावगाहस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम् ॥

[गुरुके चरणोंकी सेवा करनेसे मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे मुक्त और पवित्र होकर सब तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त कर लेता है।

श्रीमद्भागवतमें गुरुका महत्त्व बताते हुए कहा गया है—

एष वै भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ।
योगेश्वरैर्विमृग्यांघ्रिर्लोकोऽयं मन्यते नरम् ॥

[गुरु तो साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर भगवान् हैं क्योंकि योगेश्वर भगवान्‌ने भी जिस गुरुके चरणोंकी खोज और पूजा की है ऐसे गुरुदेवको भी संसार मनुष्य समझता है यह क्या कम आश्चर्यकी बात है।]

कबीरदासने इसीलिये कहा था—

गुरु-गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँयँ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥

कबीरने तो गुरुको गोविन्दसे भी ऊँचा बता दिया है क्योंकि गुरुकी कृपासे ही गोविन्दके दर्शन होते हैं। इसी कारण गुरुगीतामें भगवान्‌ने कहा है—

यो गुरुः स शिवः साक्षात् यः शिवः स गुरुर्मतः ।
गुरौ न मयि भेदोऽस्ति भेदस्तत्र निरर्थकः ॥

[मुझमें और गुरुमें भेदकी बात करना व्यर्थ है क्योंकि जो गुरु हैं वे ही शिव हैं, जो शिव हैं वे ही गुरु हैं।

यही कारण है कि रुद्र-यामलमें यह विधान किया गया है कि—

गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिशास्त्रेषु सर्वतः ।
गुरुपूजां बिना नाथ कोटिपुण्यं वृथा भवेत् ॥

[संपूर्ण भक्ति-शास्त्रोंमें गुरुकी भक्तिसे बढ़कर कोई दूसरी भक्ति नहीं है। इसलिये हे नाथ ! गुरुकी पूजा किए बिना करोड़ों पुण्य भी व्यर्थ हो जाते हैं।]

यद्यपि गुरुकी पूजा तो नित्य ही करनी चाहिए किन्तु सबको गुरुके दर्शन नित्य सुलभ नहीं हैं, इसलिये गुरुके जन्मके दिन गुरु-जयन्ती और आषाढ शुक्ला पूर्णिमा अर्थात् गुरु-पूर्णिमा या व्यास-पूर्णिमाको गुरुपूजा करनी चाहिए। यह दिवस भगवान् कृष्णद्वैपायन बादरायण व्यासजीका स्मृति-

दिवस है क्योंकि इसी दिन व्यासजीने अपने शिष्य सुमन्तु, पैल आदिको पढ़ाना प्रारंभ किया था। अतः, उस दिन गुरुकी पूजा करना वास्तवमें व्यासजीकी ही पूजा करना है। प्रत्येक व्यक्तिको उस दिन भक्ति-भावसे श्रद्धान्वित होकर गुरुके रूपमें व्यासजीकी पूजा करनी चाहिए क्योंकि व्यासजीकी पूजामें नर, नारायण और सरस्वतीकी भी पूजा हो जाती है। यही कारण है कि प्रतिमाके रूपमें नारायणकी, पूजन-पाठके रूपमें सरस्वतीकी और नर-रूप (गुरु-रूप)- में व्यासकी पूजा करनेका विधान शास्त्रोंमें मिलता है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

[नारायण, नर, सरस्वती और व्यासको प्रणाम करके महाभारतकी कथा कहनी चाहिए।]

इन्हीं अनेक शास्त्र-वचनोंके आधारपर श्री १०८ स्वामीजी महाराजने कलिकालग्रस्त जनताके कल्याणके लिये गुरु-पूर्णिमा या व्यास-पूर्णिमाके दिन गुरुमंडलार्चनकी पद्धति प्रारंभ करनेकी प्रेरणा दी और यह उन्हींकी कृपाका फल है कि लोक-कल्याणके लिये निगमागमसम्मत यह गुरुमंडलार्चन-पद्धति प्रकाशित की जा रही है।

आगमरहस्ये गुरुपूजन-पंचांगम्।

श्री सशक्तिकं गुरुं ध्यानपूर्वकं षोडशोपचारैः पूजयेत्।

ध्यान

सहस्रदलपङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं
वराभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम्।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं
स्मरेच्छिरसि हंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम्॥
श्वेतं श्वेतविलेपमाल्यवसनं वामेन रक्तोत्पलम्।
विभ्रत्या प्रिययान्तरेण तरसाश्लिष्टं प्रसन्नाननम्॥
हस्ताभ्यामभयं वरञ्च दधतं शम्भुस्वरूपं परं
हालालोहितलोचनोत्पलयुगं ध्यायेच्छिरःस्थं गुरुम्।
वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

इति ध्यानम्

ततस्तत्तन्मन्त्रेण पाद्यार्घ्याचमनीयमधुपर्कस्नानवस्त्रालंकारैः सत्कृत्य पश्चात्तद्यन्त्रमध्ये तत् स्वशक्त्या सह तं श्रीनाथगुरुमुपवेशयेत् ।

यन्त्रं तु

बिन्दुत्रिकोणं वसुकोणबिम्बं वृत्ताष्टपत्रं शिखिवृत्तयुक्तम् ।
धरागृहं वह्नितुरीभिराढ्यं यन्त्रं गुरोर्देवि मया प्रदिष्टम् ।।
सिन्दूराद्यैर्विलिख्याथ पूजयेत्तत्र तं गुरुम् ।

यन्त्रार्थस्तु

कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनियन्त्रणात् ।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति तत्त्वतः ।।

किञ्च, यन्त्रस्थितं सगुर्वीकं स्वगुरुं गन्धाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य आवरणानि च पूजयेत् ।

पटल

तत्र बिन्दौ गुरुं देवि ! स्थापयेद्भक्तिपूर्वकम् ।
सशक्तिकं स्वमूलेन पूजयेद्विधिवच्च तम् ।। १ ।।

गणेशधर्मवरुणाः कुबेरसहिताः शिवे ।
पूज्या द्वाःस्थाः सुपुष्पैश्च गन्धाक्षतपुरःसरैः ।। २ ।।

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपालो भीषणो देवि ! संहारश्चाष्टपत्रके ।। ३ ।।

परमानन्दनाथश्च प्रकाशानन्दनाथकः ।
श्रीभोगानन्दनाथश्च समयानन्दनाथकः ।। ४ ।।

गगनानन्दनाथश्च श्रीविश्वानन्दनाथकः ।
भुवनानन्दनाथश्च श्रीस्वात्मानन्दनाथकः ।। ५ ।।

अष्टौ कुलगुरून्देवि पूजयेदष्टकोणके ।
मदनानन्दनाथश्च श्रीलीलानन्दनाथकम् ।। ६ ।।

महेश्वरानन्दनाथं पूजयेद्वै त्रिकोणके ।
बिन्दौ गुरुं च सम्पूज्य गन्धाक्षतप्रसूनकैः ।। ७ ।।

तन्मूर्ध्नि परमं देवि परात्परगुरुं ततः ।
परमेष्ठिगुरुं चैव पूजयेच्चन्दनादिभिः ।। ८ ।।

भक्ष्यैर्भोज्यैस्तथा लेह्यैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।
चोष्यैः पेयैश्च खाद्यैश्च तर्पयेद्विविधैः रसैः ॥ ९ ॥
आनन्दरससम्पूर्णं गुरुं बुद्ध्वा महेश्वरि ।
सुवर्णदक्षिणाभिश्च सन्तोष्य दण्डवन्नमेत् ॥ १०॥
य एवं पूजयेद्देवि ! श्रीगुरुं पुण्यवासरे ।
स एवं रसिकः साक्षाद्विचरेद्भुवनत्रये ॥ ११॥
इतीदं परमं तत्त्वं सर्वाम्नाय-रहस्यकम् ।
सारात् सारतरं देवि ! गोपनीयं मुमुक्षुभिः ॥ १२॥

गुरुमन्त्र

षडक्षर

प्राणः (इ) प्रद्यु (ओ) रन्वितोऽनन्तयुक्तः ।
श्वेतश्चैवं सूक्ष्मयुक्शंकुकर्णः ॥
उत्कारी (क) न्याकुचाभान्वितोऽग्रे ।
चिन्मन्त्रेपि श्रीगुरोरेष मन्त्रः ॥

आगमान्तरे—

तारं शिवत्रयं देवि ! गुरवे परमुच्चरेत् ।
विश्वमन्ते महादेवि ! मनुरेषः नवाक्षरः ॥
तारो जगन्मनुः श्रीति गुरुर्ङेन्तः शिवागमे ।
सप्तार्णः श्रीगुरोर्मन्त्रः प्रोदितः परमार्थदः ॥

त्रयोविंशाक्षरमन्त्रः

त्रिवृद्विश्वश्रीति स्मृतिरुलसिता मन्मथगतो
वलीदेवायाग्रे परमपुरुषायेति च पदम् ।
नटो विद्यायुक्तस्तदनु शुचिबीजं विजयिनी
जनाय स्वाहेति प्रवर गुरुमन्त्रो निगदितः ॥

गुरुगायत्री शिवागमे

वेदादिगुरुदेवाय विद्महे तदनन्तरम् ।
परमान्ते गुरुर्ङेन्तस्तदन्ते धीमहीति च ।

तन्नोगुरुरिति प्रोच्य तदन्ते तु प्रचोदयात् ।
एषा श्रीगुरुगायत्री विश्रुता हि शिवागमे ।।
वराहः सामगः खेटः पान्तिमः पावकस्तथा ।
संयोज्यंतान् प्रिये सर्वान् सानुस्वारे त्रिकोणके ।।
नभो भृगुर्नृसिंहश्च मङ्गलो लम्पटो बलः ।
रुचिरो हृद्गतस्थैतानधीशेऽक्रूरमस्तके ।
वदेत् कूटद्वयं चाथ साद्यमग्ने पुनः प्रिये ।
वामनेत्रान्तमित्येष श्रीगुरोः पादुकामनु ।।

नाम

श्रीगुरुपारम्पर्यक्रमः(शाक्तपक्षे)

दिव्यौघाश्चापि सिद्धौघा मानवौघास्त्रिधा हि ते ।
परप्रकाशः प्रथमस्ततः परशिवाभिधः ।।
परशक्तिश्च कौलेशः शुक्लादेवी कुलेश्वरः ।
कामेश्वरीति सप्तैव दिव्यौघा गुरवः पराः ।।
भोगः क्रीडश्च समयः सहजश्च परात्पराः ।
सिद्धौघा गुरवश्चैते चत्वारः परिकीर्त्तिताः ।।
गगनो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा ।
लीला स्वात्मा प्रियेत्यष्टौ मानवा अपरा मताः ।।
आनन्दनाथशब्दान्ताः पुरुषाः गुरवः स्मृताः ।
अम्बान्तास्तु स्त्रियः कार्याः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।।
परशक्तिस्तथा शुक्ला देवी कामेश्वरीति च ।
तिस्रः स्त्रियस्तु दिव्येषु प्रिया लीलेति मानवे ।।
श्रीपादुकां पूजयामि इत्यन्ते सर्वत्र योजयेत् ।

शैवपक्षे

आदिनाथः सदापूर्वः शिवश्चापीश्वरः स्मृतः ।
रुद्रो विष्णुस्तथा व्रह्मा दिव्यौघास्तु सपत्निकाः ।।
सनकः प्रथमः प्रोक्तस्तथा देवि सनन्दनः ।
सनातनस्तृतीयस्तु सनत्पूर्वः कुमारकः ।।
स्कन्दः सनत्सुजातश्च दत्तात्रेयोऽथ रेवतः ।
वामदेवस्तथा व्यासः सिद्धौघास्तु शुकान्तिमाः ।।

एकादश प्रिये प्रोक्ता मानवौघानथ शृणु ।
नृसिंहश्च महेशश्च भास्करोऽपि महेन्द्रकः ।
माधवो विष्णुरित्येते मानवौघाः षडुत्तमाः ।।
नामान्ते योजयेदेषां दिव्यौघे परमं शिवम् ।
महाशिवं च सिद्धौघे मानवौघे सदाशिवम् ।।

प्रार्थना-स्तोत्र

श्री दिव्यसिद्धमनुजौवसुमूर्त्तिरूपं
संसारदाहशमनं द्विभुजं द्विनेत्रम् ।
वामाङ्गशक्तिसकलाभरणैर्विभूषं
ध्यायेज्जपेत्सकलसिद्धिफलप्रदं च ।।
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्ति
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

अथ गुरोः शिवपादुकास्तोत्रम्

निषक्तमणिपादुकं नियमिताघकोलाहलं
स्फुरत्किसलयारुणं नखसमुन्मिषच्चन्द्रिकम् ।
परामृतसरोवरोदितसरोजरोचिष्णु तद्
भजामि शिरसि स्थितं गुरुपदारविन्दद्वयम् ।।
ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डलीकनककाण्डशोभितं द्वादशान्तसरसीरुहं भजे ।।
तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे क्लृप्तरेखमकथादि रेखया ।
कोणलक्षितहलक्षमण्डले भावलक्षमबलालयं भजे ।।
तत्पुटे पटुतडित्कडारिमस्पर्द्धमानपरिपाटलप्रभम् ।
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं सदा बिन्दुनादमणिपीठमण्डलम्
ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखामयं चिद्विलासपरिबृंहणास्पदम् ।
विश्वघस्मरमहच्छटोत्कटं व्यामृशामि युगमादिहंसयोः ।।
तत्र नाथ चरणारविन्दयोः संविदामृतझरी मरन्दयोः ।
द्वन्द्वमिन्दुकरकन्दशीतलं मानसं स्मरतु मङ्गलास्पदम् ।।

पादुकापञ्चकं स्तोत्रं पञ्चवक्त्रसमुद्गतम् ।
पञ्चवाहक्रमप्राप्तं प्रपञ्चे दुर्लभं स्मृतम् ॥

कवच-कीलक

अस्य श्रीगुरुमन्त्रस्य मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ।
छन्दो गायत्रमित्युक्तः देवता श्रीगुरुः स्मृता ॥
शिवो बीजं ततः शक्तिः शक्तिरेव प्रकीर्त्तिता ।
व्यत्ययेन द्वयं तत्तु कीलकं समुदाहृतम् ॥
महाप्रसादसिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्तितः ।
इति बद्धाञ्जलिपुटः पठित्वा न्यासमाचरेत् ॥
ऋषि तु विन्यसेन्मूर्ध्नि छन्दश्च वदने न्यसेत् ।
देवतां हृदि विन्यस्य गुह्ये बीजं न्यसेत्प्रिये ॥
शक्तेस्तु पादयोर्न्यासः कीलकं नाभिमण्डले ।
विनियोगो हि सर्वाङ्गे ऋष्यादिन्यास इत्यसौ ॥
षड्दीर्घशक्तिबीजेन शिवाद्येन षडङ्गकम् ।
हृदयादि प्रिये प्रोक्तं षट्पल्लवसमन्वितम् ॥
हृदयं च शिरः पश्चात् शिखा च कवचं तथा ।
नेत्रत्रयं तथास्त्रं च षडङ्गानि वरानने ॥
नमश्चैव तथा स्वाहा वषट् चापि तथा हि हुम् ।
वौषट् च फडिति प्रोक्ताः पल्लवाः षट् कुलेश्वरि ॥
चतुर्थ्यन्तानि देवेशि षडङ्गानि स्मृतानि वै ।
अथांगुष्ठादिको न्यासः कर्त्तव्यो हृदयादिवत् ॥
श्रीगुरोर्न्यासभेदस्तु विशेषः श्रीतदागमे ॥

गुरुलक्षणानि

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेषो मनोहरः ।
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वावयवशोभितः ॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रविधानवित् ।
लोकसम्मोहनकरो देववत्प्रियदर्शनः ॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छः संशयच्छिदसंशयः ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञः ऊहापोह-विदुज्ज्वलः ॥
अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धस्त्रिकालज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥

वेधको बोधकः शान्तः सर्वजीवदयापरः ।
स्वाधीनेन्द्रियसञ्चारः षड्वर्गविजये क्षमः ॥
अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्राऽपात्रविशेषवित् ।
शिवष्णुसमं साधुर्नं च दर्शनदूषकः ॥
निर्ममो नित्यसन्तुष्टः स्वतन्त्रो नित्यशक्तिमान् ।
स्वभक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्ववाक् ॥
भक्तिप्रियः सर्वसमो गम्भीरः शिष्यशासितः ।
स्वेष्टदेवगुरुप्राज्ञदेवतापूजनोत्सुकः ॥
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते ।
रागद्वेषभयक्लेशदम्भाहंकारवर्जितः ॥
स्वविध्यनुष्ठानतपो धर्माणां तु प्रकाशकः ।
यदृच्छालाभसंतुष्टो गुणदोषविभेदकः ॥
स्त्रीधनादिष्वनासक्तो दुःसङ्गव्यसनातिगः ।
सर्वाहम्भावसंयुक्तो निर्द्वन्द्वो नियतव्रतः ॥
अनुलोमोऽहिंसकश्च पक्षपातविचक्षणः ।
निःसंकल्पविकल्पश्च विनीतात्माऽतिधार्मिकः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निरपेक्षो नियामकः ।

गुरु-पूजन-पद्धति

पद्धति आगे यथास्थान दी गई है ।

गुर्वर्थश्च

गुकारस्त्वन्धकारोऽपि रुकारस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुह्यागमार्थतन्मन्त्र — साधनोद्बोधनादपि ।
रुद्रादिदेवरूपत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥

गुरु-मंडलम्

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम्,
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान्द्व्यष्ट चतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम्,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

१. श्रीनाथादि गुरुत्रयं : गुरुः, परमगुरुः, परमेष्ठिगुरुः ब्रह्मा, विष्णु, महेश
२. गणपतिं : गणेशजी
३. पीठत्रयं : १. कामगिरिपीठ, २. पूर्णगिरिपीठ, ३. जालन्धरपीठ
४. भैरवम् : भैरव।
५. सिद्धौघं : आठ सिद्ध—

महादुर्मनाम्बासिद्ध, सुन्दर्यम्बासिद्ध, विश्वदलनाम्बासिद्ध, कपालिकाम्बासिद्ध, बडवाम्बासिद्ध, भीमाम्बासिद्ध, करात्यम्बासिद्ध, खराननाम्बासिद्ध, शालिन्यम्बासिद्ध।

चार शाक्त सिद्ध—

भोगानन्दनाथ, क्रीडा(क्लिन्ना)नन्दनाथ, समयानन्दनाथ, सहजानन्दनाथ।

ग्यारह शैव-सिद्ध सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, स्कन्द, सनत्, सुजात, दत्तात्रेय, रैवत, वामदेव, व्यास।

६. बटुकत्रयं : स्कन्दबटुक, चित्रबटुक, विरिञ्चिबटुक।
७. पदयुगं : प्रकाशपादुका, विमर्शपादुका।
८. दूतीक्रमं : दस दूतियाँ—

योन्यम्बादूती, योनिसिद्धनाथाम्बादूती, महायोन्यम्बादूती, महायोनिसिद्धनाथाम्बादूती, दिव्ययोन्यम्बादूती, दिव्ययोनिसिद्धनाथाम्बादूती, शंखयोन्यम्बादूती, पद्मयोन्यम्बादूती, पद्मयोनिसिद्धनाथाम्बादूती।

९. मंडलम् : वह्निमंडल, सूर्यमंडल, सोममंडल।
१०. वीरान्द्वचष्ट : सोलह वीर—

सृष्टिवीरभैरव, स्थितिवीरभैरव, संहारवीरभैरव, रक्तवीरभैरव, यमवीरभैरव, भद्रवीरभैरव, परमार्कवीरभैरव, मार्तण्डवीरभैरव, कालाग्निवीरभैरव।

११. चतुष्कषष्टि : चौंसठ सिद्ध—

मंगलानाथ, चंडिकानाथ, ज्येष्ठानाथ, कन्तुकिनाथ, पटहानाथ, कूर्मानाथ, धनदानाथ, गन्धानाथ, गगनानाथ, मतङ्गानाथ, चम्पकानाथ, कैवर्त्तानाथ, मातङ्गगमनानाथ, सूर्यभक्षानाथ, नभोभक्षानाथ, स्तौतिकानाथ, रूपिकानाथ, दंष्ट्रानाथ, धूम्राक्षानाथ, ज्वालानाथ, गान्धारानाथ, गगनेश्वरानाथ, मायानाथ, महामायानाथ, नित्यानाथ, शान्तानाथ, विश्वानाथ, कामानाथ, उमानाथ, श्रियानाथ, सुभगानाथ, विद्यानाथ, महाविद्यानाथ, अमृतानाथ, चन्द्रानाथ, अन्तरिक्षानाथ,

सिद्धानाथ, श्रद्धानाथ, अनन्तानाथ, शम्बरानाथ, उल्कानाथ, त्रैलोक्यानाथ, भीमानाथ, राक्षसीनाथ, मलिनानाथ प्रचण्डानाथ, अनंगानाथ, विविधानाथ, अनभिहितानाथ, नन्दितानाथ, महामनानाथ, सुन्दरानाथ, विश्वेश्वरानाथ, कालानाथ, महाकालानाथ, अभयानाथ, विकारानाथ, महाविकारानाथ, सर्वगानाथ, शृगालानाथ, पूतनानाथ, शवरीनाथ, व्योमानाथ, पूर्णानाथ।

१२. नवकं : नौ मुद्राएँ--

द्रां सर्वसंक्षोभिर्णी मुद्रा, द्रीं सर्वविद्राविणी मुद्रा, क्लीं सर्वाकर्षिणी मुद्रा, ब्लूं सर्वशंकरी मुद्रा, सः सर्वोन्मादिनी मुद्रा, क्रीं सर्वमहांकुश मुद्रा, हस्ख्फें सर्वखेचरी मुद्रा, ह्सौ सर्वबीज मुद्रा, ऐं सर्वयोनि मुद्रा।

१३. वीरावलीपञ्चकम् : पाँच वीरावली--

ब्रह्मवीरावली. विष्णुवीरावली, रुद्रवीरावली, ईश्वरवीरावली, सदाशिववीरावली।

१४ मालिनिमन्त्र : ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं अं आं+लं क्षं श्रीं ह्रीं मालिन्यम्बा।

मन्त्रराज : ह्रां ह्रीं हुं फट्।

१६. गुरोर्मण्डलम् :

(१) महापादुका ; (२) सम्प्रदायपादुका ; (३) कादिविद्यागुरुपरम्परा (परप्रकाशानन्दनाथ, परशिवानन्दनाथ, पराशक्त्यम्बा, कौलेश्वरानन्दनाथ, शुक्लदेव्यम्बा, कुलेश्वरानन्दनाथ, कामेश्वर्यम्बा, भोगानन्दनाथ, क्लिन्नानन्दनाथ, समयानन्दनाथ, सहजानन्दनाथ, गगनानन्दनाथ, विश्वानन्दनाथ,, विमलानन्दनाथ, मदनानन्दनाथ, भुवनानन्दनाथ, लीलाम्बा, स्वात्मानन्दनाथ, प्रियानन्दनाथ,) ; (४) कामराजचरण, (स्वच्छप्रकाशपरिपूर्णपरात्परमहाप्रकाशपरिपूर्णानन्दनाथ, रक्तचरण, रक्तचरणाम्बा, शुक्लचरण, शुक्लचरणाम्बा, मिश्रचरण, मिश्रचरणाम्बा, निर्वाणचरण, निर्वाणचरणाम्बा।

॥ इति गुरुमण्डलम् ॥

—०—

व्याधि और मृत्यु जीतनेका मन्त्र

श्री ११०८ स्वामी श्रीशंकराश्रमजी महाराज-द्वारा बताया हुआ यह मन्त्र व्याधि और मृत्यूको जीत लेता है—

ॐ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

यह मन्त्र किसी पंडितसे पुष्य नक्षत्रमें प्रातःकाल लेना चाहिए और चालीस दिनतक तुलसीके पास, पीपलके तले या विष्णु (राम, कृष्ण, नृसिंह आदि) के मन्दिरमें स्नान आदि करके तुलसीकी माला लेकर १०८ बार नित्य यह श्लोक जप लेना चाहिए। ऐसा कर चुकनेपर मंत्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार जो मंत्र सिद्ध कर लेता है वह जिस किसी भी रोगी या मुमूर्षुके सिरपर हाथ रखकर यह मंत्र पढ़ेगा वह व्यक्ति अच्छा हो जायगा।

दंडतर्पणके श्लोक

शतद्रुके जलमें जहाँ दंडका विसर्जन किया गया है वहाँ ये श्लोक पढ़कर पितृतीर्थसे तर्पण करना चाहिए—

सुरास्तिष्ठन्ति दंडाग्रे दंडमूले तु पूर्वजाः।
प्रतिग्रन्थीषु गन्धर्वाः मध्ये तिष्ठन्ति मानवाः॥
अस्माकं ये कुले जाताः नामगोत्रसमुद्भवाः।
ते सर्वे तृप्तितां यान्तु दंडसम्बन्धिवारिणा॥

नारायण

श्री ११०८ स्वामीजी महाराज किसीको आशीर्वाद नहीं देते थे, केवल 'नारायण' कहते थे क्योंकि—

प्रणतां न यतिर्दद्यादाशिषं व्यासशासनात्।
नारायणेति च ब्रूयात् प्रणतायुर्विवृद्धये॥
स्मृतिर्नारायणी हन्ति प्रणतां दुष्कृतं पुरा।

[व्यासजीकी आज्ञा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी यतिको प्रणाम करे तो यति उसे आशीर्वाद न दे वरन् केवल 'नारायण' कहे जिससे प्रणाम करनेवालेकी आयु बढ़े। नारायणका नाम स्मरण करने मात्रसे प्रणाम करनेवालेके पुराने पाप कट जाते हैं।]

लुधियाना-निवासियोंका यह परम सौभाग्य है कि श्री ११०८ श्री स्वामीजी महाराजकी मूर्त्तिके दर्शनकरके अपना जन्म सफल करते रहते हैं।

यतीका स्थान-परिवर्त्तन

कोई यती, संन्यासी या अवधूत कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहता किन्तु यदि वह १२ वर्षतक एक स्थानपर रह जाता है तो वह स्थान सिद्धपीठ हो जाता है। उस स्थानसे उस यती, संन्यासी या अवधूतको स्थानभ्रष्ट करना, हटाना, उस स्थानको किसी दूसरे काममें लाना या अपने

स्वार्थ, द्वेष या अन्य किसी भावसे उस यती, संन्यासी या अवधूतको किसी दूसरे स्थानमें रखना बड़ा पातक है। यतिधर्मानुशासनमें वह स्पष्ट व्यवस्था दी हुई है—

लोभाद्द्वेषादथ स्नेहात् श्रद्धया कामकारतः।
अन्यत्स्थाने नयेत् साधुं स याति निरयं महत्॥
स्थानच्युतं च यः कुर्यात् यतिं साधुं कुटीगतम्।
स याति सकुलं क्रूरः दुर्गतिं परमापदम्॥

अतः, किसीको भी यह प्रयत्न नहीं करना चाहिए कि श्री ११०८ स्वामीजीकी कुटी किसी और काममें प्रयुक्त हो।

मंगलवार १७ जुलाई सं० २०१८ की आषाढ पूर्णिमा (सं० १९६२) के पूर्व श्रीमहाराजजीने ब्रह्मलीन होनेका संकल्प कर लिया था जिसकी पूर्वपीठिकाके रूपमें आषाढ पूर्णिमा सं० २०१८को उन्होंने पूर्ण वैदिक विधि-विधानके साथ शतद्रु (सतलुज) नदीमें अपना दंड विसर्जित करा दिया। ढंढोंके जिस बागमें श्रीस्वामीजीका आश्रम था उसके सामने सड़क पार श्री स्वामीजी महाराजके सन्निकट शिष्योंने एक दूसरा भव्य सिद्धपीठ बनवा दिया जिसमें श्रीस्वामीजी महाराज मगलवार १७ जुलाई सन् १९६२ आषाढ पूर्णिमा सं० २०१९को धूमधामसे लाकर सुप्रतिष्ठित कर दिए गए। संयोगवश अगले वर्ष ऋषि-पंचमी सं० २०२० (२५ अगस्त सन् १९६३)को प्रातः ७.२० पर स्वामीजी अपना पार्थिव कलेवर त्यागकर ब्रह्मलीन हो गए और उनके शिष्योंने उसी आश्रममें उन्हें समाधि देकर भव्य समाधि-मन्दिर बनवा दिया तथा यज्ञमंडप और सभाभवन भी बनवा दिया। श्री स्वामीजीके पूर्व स्थान ढंढोंके बागमें भी जलकुंडपर श्रीस्वामीजीकी भव्य मूर्ति बनवा लगाई गई है और साथ ही सभा-भवन और शिवालय भी बनवा दिया गया है। दोनों स्थानों-पर श्रद्धालु भक्त निरन्तर जाते रहते हैं और गुरु-पूर्णिमापर विधिपूर्वक पूजा की जाती है।

नवीन सिद्धपीठकी व्यवस्थाके लिये एक न्यास (ट्रस्ट बना दिया गया है जिसके निम्नांकित ट्रस्टी हैं—

श्री पं. ओंकारदत्त संड– अध्यक्ष
श्री पं. जगदीशजी — उपाध्यक्ष

श्री ज्ञानचन्द आहूजा-- मन्त्री
श्री मदनलाल — कोषाध्यक्ष

इनके अतिरिक्त भक्त रामस्वरूपजी भी एक ट्रस्टी थे जो दिसम्बर सन् १९८२ में दिवंगत हो गए। अभी इस ग्रन्थके मुद्रणतक उनके स्थानपर किसी अन्य ट्रस्टीकी नियुक्ति नहीं हो पाई है।

इस पुस्तकके पुनर्मुद्रणका व्ययभार पं० ओंकारदत्त संड तथा श्री ज्ञानचन्द आहूजाने वहन किया है, जो अभिनन्दनीय हैं।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

—:०:—

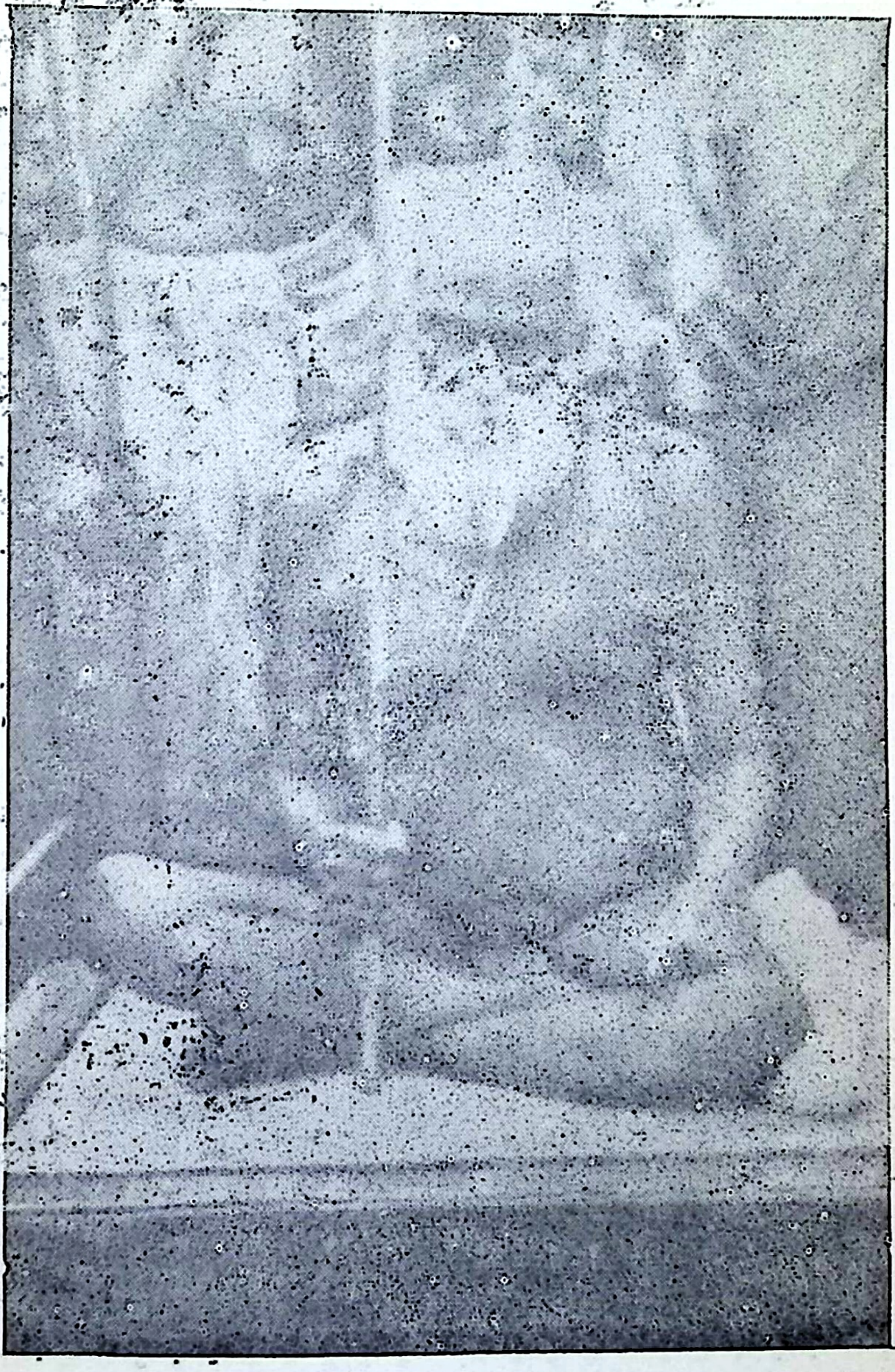

श्री१००८ स्वामी शङ्कराश्रमजी महाराज

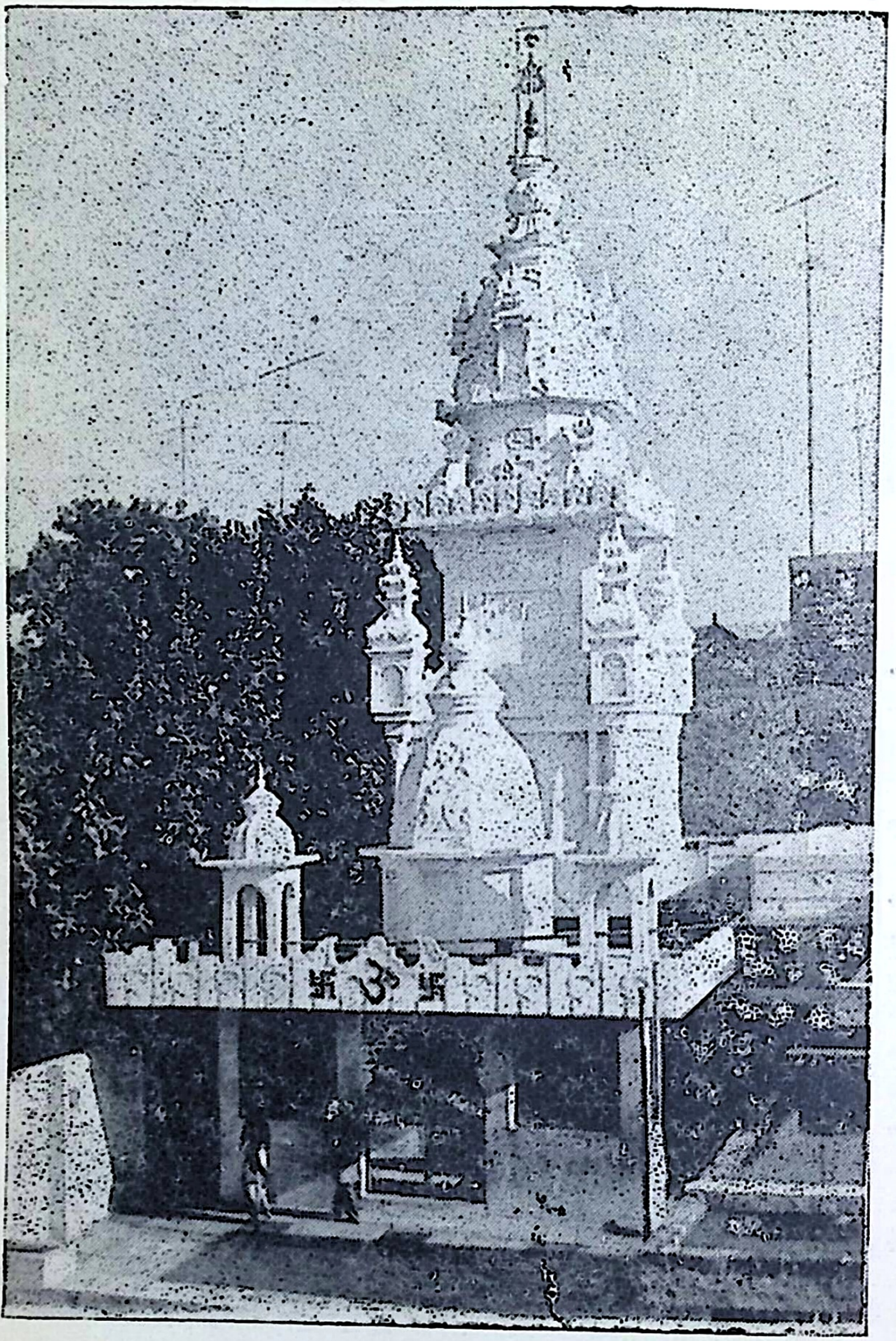

श्री दण्डी स्वामीजीका समाधि-मन्दिर

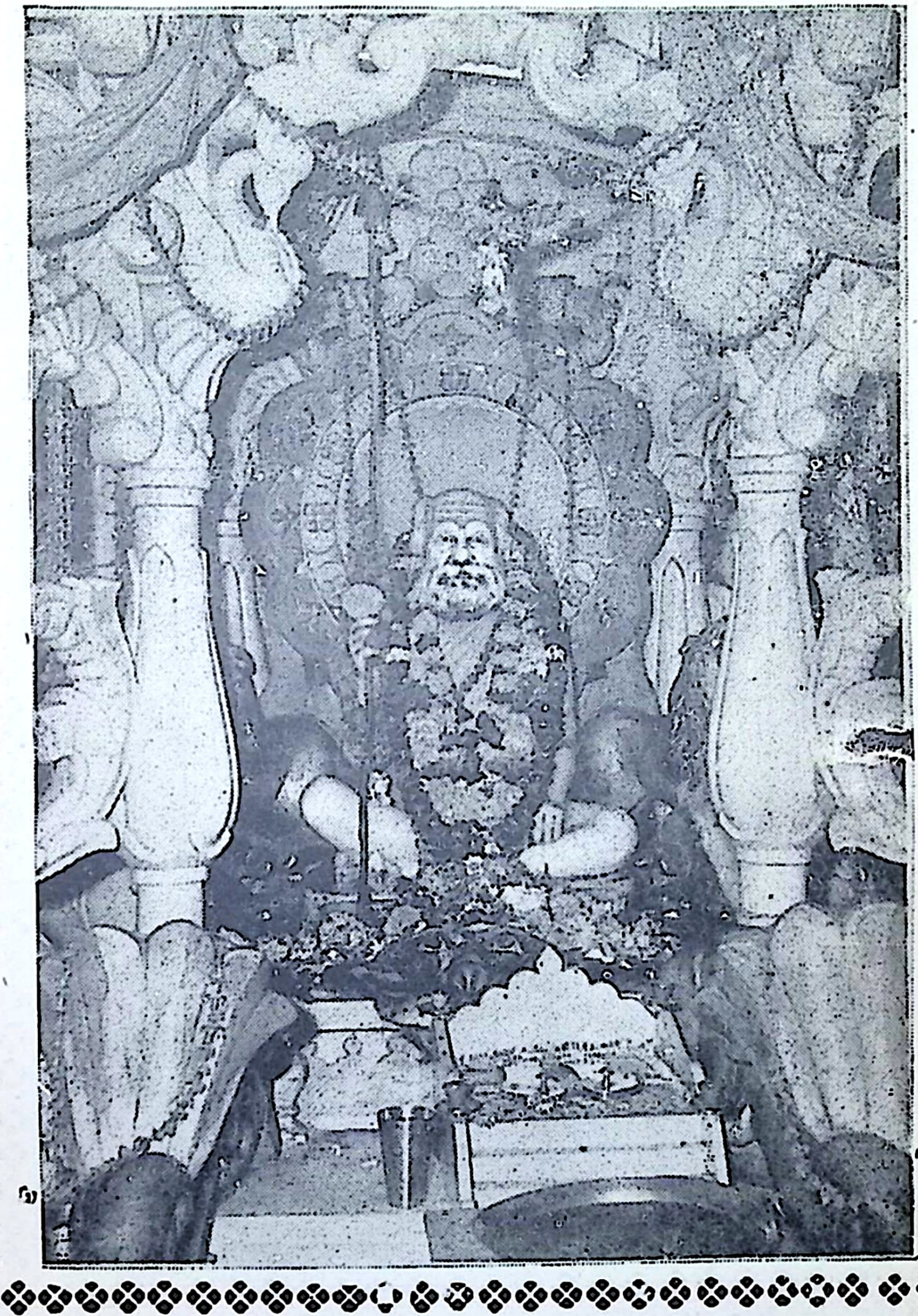

समाधिपर श्री दण्डी स्वामीजीकी मूर्त्ति

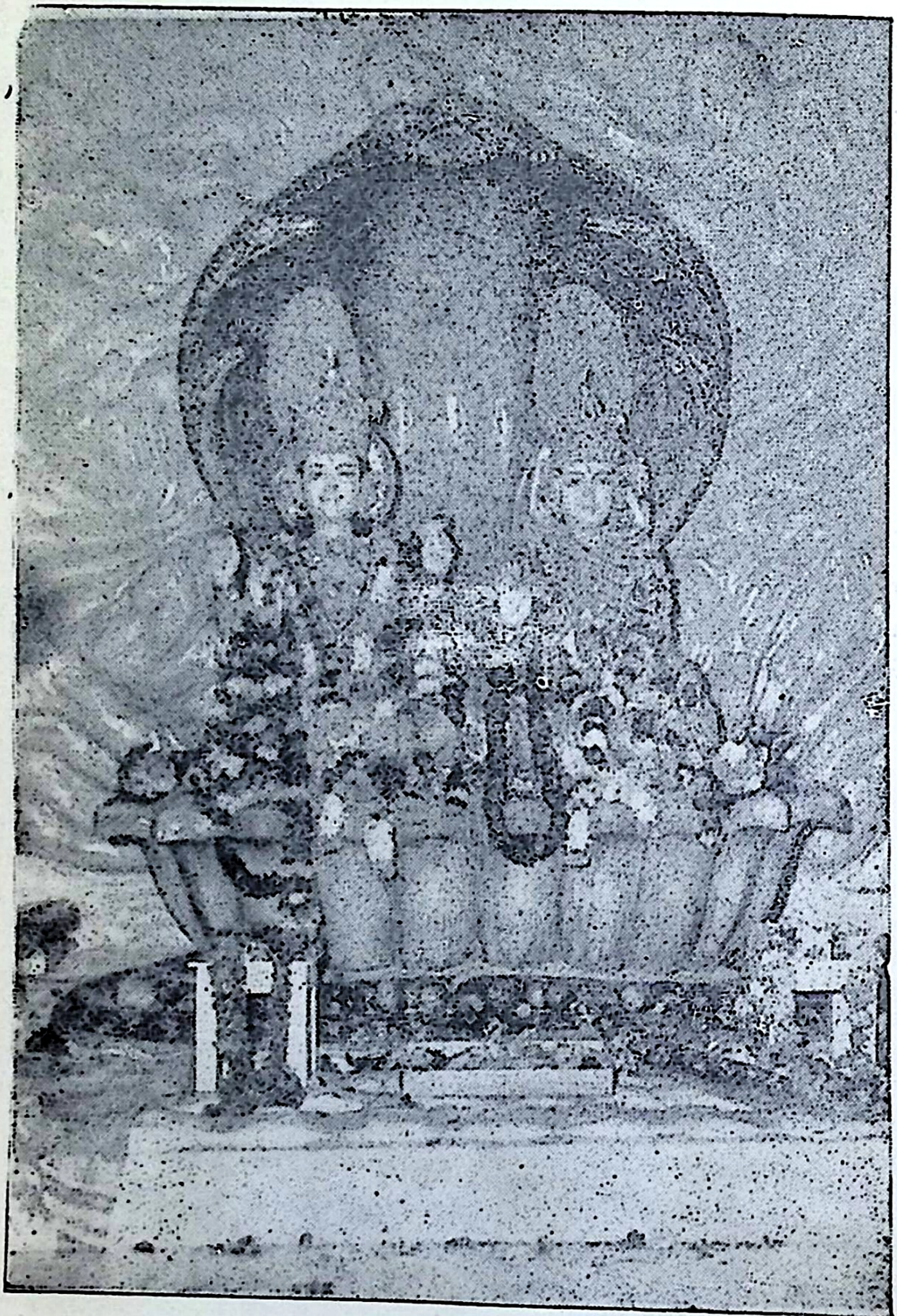

सिद्धपीठमें लक्ष्मीनारायणकी मूर्तियां

सिद्धपीठ मन्दिरमें शंकर-पार्वतीकी मूर्तियाँ

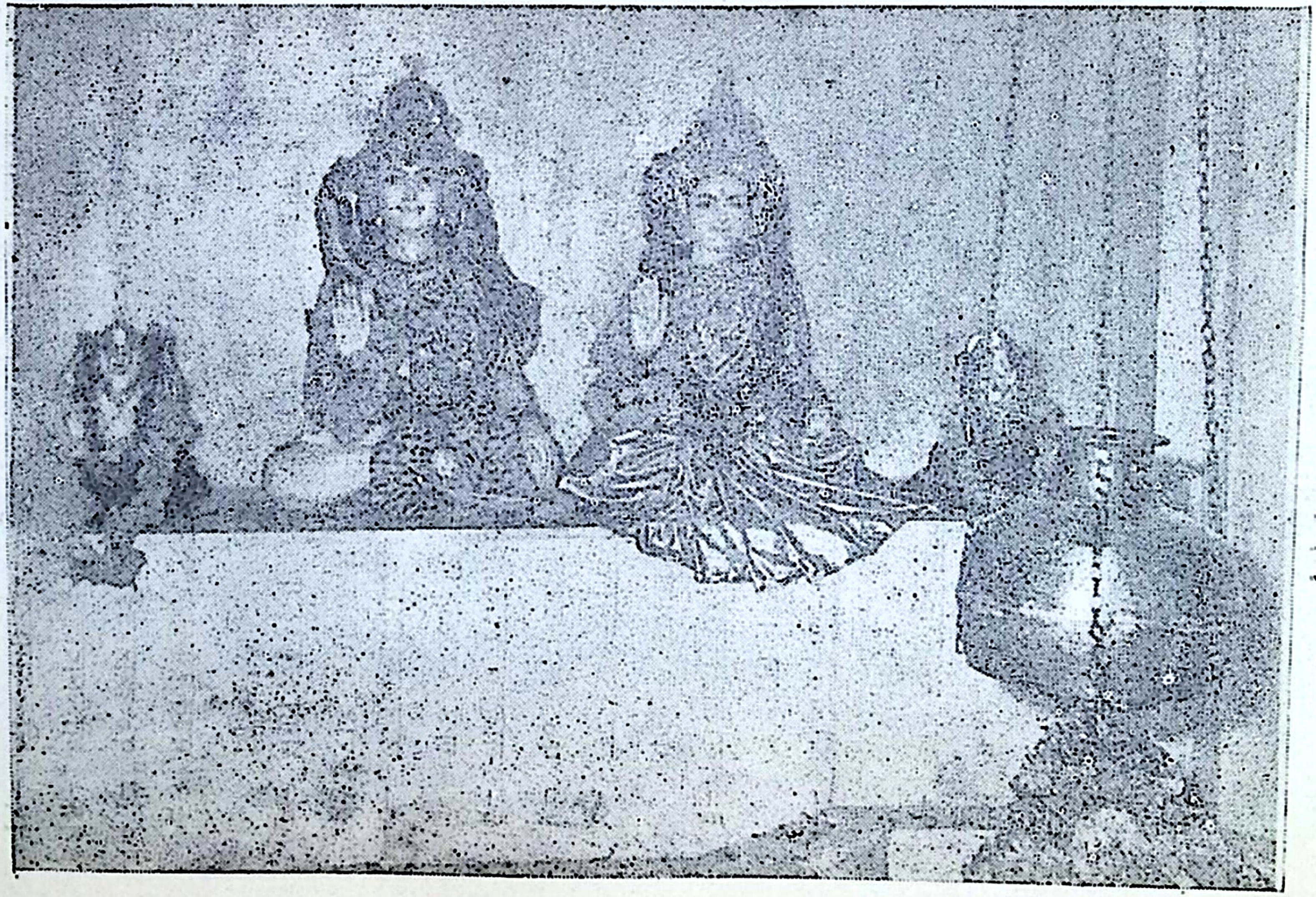

सिद्धपीठ स्थान ट्रस्टका
न्यास-पत्र (ट्रस्ट-डीड)

आद्य शंकराचार्यजीके सम्प्रदायमें दीक्षित परम पूतात्मा सन्त श्री १००८ दण्डी स्वामीजी महाराज बहुत दिनोंतक लुधियाना नगरमें निवास करते रहे जिनसे हम निम्नांकित स्थापकोंने धार्मिक शिक्षा और शान्ति प्राप्त की।

१- डा० रमेशचन्द्र खन्ना, पुत्र श्री रामरक्खामल, चौक तकिया गूजरान, लुधियाना।

२- श्री बलदेवकृष्ण शर्मा, पुत्र पंडित यतीराम, शर्मा क्लौथ हाउस, लुधियाना।

३- लाला सरदारीलाल खन्ना, पुत्र लाला माणिकचन्द, कचहरी पुलके पास, लुधियाना।

४- लाला अमरनाथ जिन्दल, पुत्र लाला लब्भूराम, कच्ची गली, लुधियाना।

५- पं० रामरिछपाल, पुत्र पं० मुन्नीलाल, लक्ष्मी मार्केट, लुधियाना।

६- लाला बाबूराम, पुत्र लाला ज्योतिराम, मसर्स बाबूराम पवनकुमार, लक्ष्मी मार्केट, लुधियाना।

७- लाला दुर्गादास, पुत्र लाला नत्थूराम वकील, शिवाला संगलाँवाला रोड, लुधियाना।

८- भगत छज्जूराम, पुत्र लाला विलायतीराम खन्ना, भागीदार खन्ना सिल्क फैक्टरी, लुधियाना।

९- भगत रघुनाथसहाय, पुत्र श्री गिरिधारीलाल, मुल्लाँ शकूर, लुधियाना।

१०- पं० हंसराज, पुत्र पं० अनन्तराम हकीम, बाज़ार सराफ़ान, लुधियाना।

११- श्री जगदीशचन्द्र, पुत्र श्री दीनानाथ, लुधियाना।

१२- श्री रामप्रसाद, पुत्र श्री यतीराम, दूकानदार, सिविल लाइन्स, लुधियाना।

१३- श्री राजकुमार, पुत्र श्री भगतराम, शाही मुहल्ला, लुधियाना।

१४– श्री पं० लक्ष्मणदास, पुत्र श्री पं० पृथ्वीचन्द्र, पुराना बाजार, कूचा पं० बेलीराम, लुधियाना।

उपर्यंकित श्री १००८ दंडी स्वामी (श्रीशंकराश्रम) जी महाराजका जन्म उत्तर प्रदेशके मीरजापुर जनपदमें अवस्थित श्रीपट्टी ग्राममें हुआ था। उनके भक्तोंकी यह इच्छा रही कि उनके सुयशको चिरस्थायी बनाए रखने, पूजन-अर्चनका स्थायी केन्द्र स्थापित करने तथा ब्रह्मलीन श्री १००८ दंडी स्वामीजी महाराजके उपदेशों और आदर्शोंके प्रचारके निमित सभा आदिके लिये कोई स्थान बनाया जाय जिसके लिये निम्नांकित भू-सम्पत्ति मोल ली गई—

१. सिविल लाइन्समें आई० टी०के सामने ८०९ वर्ग गज भूमि १४५०० रु०(चौदह हज़ार पाँच सौ रुपए) में ३-५-१९६२ को पंजीकृत विक्रय-पत्रके द्वारा सिविल लाइन्सके श्री रामजीदासके पुत्र श्रीकृष्णदासजीसे मोल ली गई जिसके पूर्वमें कूचा इराजे, पश्चिममें अहसान रोड, उत्तरमें श्री रोशनलालकी भूमि और दक्षिणमें राय साहब श्रीकृष्णदासकी भूमि है जो खसरा नं० $\frac{९९५/९९३,}{६}$ खेवट नं० १०९९/९८३, खतौनी नं० १२३४ सन् १९५०-५१ की जमाबन्दीमें दर्ज है।

२. सिविल लाइन्स लुधियाना (महाल बागहाट) में स्थित ४४७ वर्ग गज भूमि लुधियानेके लाला कस्तूरीलालके पुत्र श्री रोशनलालसे १६-८-१९६२ को पंजीकृत विक्रय-पत्रके द्वारा ७५०० रु० (सात हज़ार पाँच सौ रुपए) में मोल ली गई जिसके पूर्वमें श्रीमती सुशीलादेवीकी भूमि, पश्चिममें सिद्धपीठ स्थान, उत्तरमें दयानन्द अस्पताल रोड और दक्षिणमें सिद्धपीठ स्थान है जो खसरा नं० ९९३/२, खेवट नं० १०५१/१२३६, १९५०-५१ की जमाबन्दीमें दर्ज हैं।

३. सिविल लाइन्स, लुधियानामें स्थित १४९ वर्ग गज भूमि श्री रोशनलालकी पत्नी श्रीमती सुशीलादेवीसे २५०० रु० (दो हज़ार पाँच सौ रुपए) में मोल ली गई जिसके पूर्वमें श्रीरामबिहारीकी भूमि, पश्चिममें श्रीमती सावित्रीदेवीकी भूमि, उत्तरमें दयानन्द अस्पताल रोड और दक्षिणमें सिद्धपीठ स्थानकी भूमि है जो खसरा नं० ९९३, ९९५, ९९६, खेवट नं० १०५१/९८५, खतौनी नं० १२३६ महाल बागहाटकी १९५०-५१ की जमाबन्दीमें दर्ज है।

४. सिविल लाइन्स लुधियानामें स्थित ४४७ वर्ग गज भूमि पंजीकृत

विक्रय-पत्रके द्वारा २८-४-६१ को १४३०४ रु० (चौदह हजार तीन सौ चार रुपए) में राय साहब श्रीकृष्णदाससे मोल ली गई जिसके उत्तरमें दयानन्द अस्पताल रोड, दक्षिणमें राय साहब श्रीकृष्णदासकी भूमि, पूर्वमें श्रीरोशनलाल-की भूमि और पश्चिममें अहसान रोड है।

ये ऊपर दी हुई भू-सम्पतियाँ उपर्यंकित महापुरुषकी शिक्षाओं और आदर्शोंको अनवरत चलाए रखनेके निमित्त भवन बनवानेके उद्देश्यसे मोल ली गईं। इनमेंसे भूमि संख्या १ और २ तो सिद्धपीठ स्थानके नामसे मोल ली गईं और भूमि संख्या ३ के सम्बन्धमें यह समझौता हुआ कि यह भूमि केवल २५०० रु० (दो हजार पाँच सौ रुपए) में मोल ली जाय और तदनुसार यह मूल्य दे भी दिया गया किन्तु विक्रय पत्र नहीं लिखा गया यद्यपि भूमिका अधिकार भी नामान्तरित कर दिया गया और उसका स्वामित्व भी दे दिया गया। भूमि संख्या ४ यद्यपि श्री रामस्वरूप और श्री जागीरलालके नामसे मोल ली गई तथापि वह भी उपर्युक्त भूमियोंमें जोड़ दी गई और इस प्रकार इन सब भूमियोंका एक चक बनाकर उसपर भवन और दूकानें बना ली गईं और उसके चारों ओर चहारदीवारी भी खिंचवा दी गई।

उपर्यंकित श्री १००८ दंडी स्वामीजी महाराज जब ब्रह्मलीन हो गए तब उनके भक्तों और सेवकोंने वहाँ समाधि बनानेका निश्चय किया।

२. ब्रह्मलीन श्री १००८ दंडी स्वामीजी महाराजके प्रमुख तथा निकटवर्ती भक्तोंने १७-९-६३ को एक बैठकमें सर्वसम्मतिसे श्री मेलाराम अग्रवालके पुत्र श्री रामस्वरूप तथा श्री नौरत्नचन्द संडके पुत्र श्री ओंकारदत्त संडको न्यासधारी (ट्रस्टी) नियुक्त कर दिया जो उपर्यंकित श्री १००८ दंडी स्वामीजीके परम भक्त और सेवक हैं।

३. इन न्यासधारियों (ट्रस्टियों) को यह अधिकार भी दिया गया कि वे उपर्यंकित उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये एक प्रबन्ध-समितिका गठन कर लें। साथ ही न्यासधारियों (ट्रस्टियों) को यह अधिकार भी दिया गया कि वे किसी भी समय प्रबन्ध-समितिको निरस्त कर सकते हैं।

४. श्री १००८ दंडी स्वामीजीके आदर्शों और उपदेशोंके विपरीत तथा ट्रस्टियोंकी स्वीकृतिके बिना सिद्धपीठ स्थानमें न तो कोई उत्सव या सम्मेलन किए ही जायँगे न मान्य ही होंगे और जो भी उत्सव या सम्मेलन वहाँ होंगे उन सबपर ट्रस्टियोंका पूर्ण नियन्त्रण रहेगा।

५. सिद्धपीठ आश्रमपर न तो किसी भी प्रकारका नकद या वस्तुके

रूपमें कोई चढ़ावा ही स्वीकृत होगा और न किसी भी ट्रस्टी या प्रबन्ध-समितिके सदस्यको कोई चन्दा या दान लेनेका ही अधिकार होगा। केवल स्वेच्छापूर्वक दिए हुए दान ही स्वीकृत होंगे जिनकी वैध रसीद ट्रस्टी या ट्रस्टीगण ही दे सकेंगे।

६. उपर्यंकित भू-सम्पत्तियाँ मोल लेकर उनपर भवन तथा अन्य निर्माण-कार्योंके साथ सोलह (१६) दूकानें बना दी गई हैं। लुधियानेमें पचास वर्षोंसे अधिक संवास करनेवाले श्री १००८ दंडी स्वामीजीके तपःपूत जीवन और उपदेशोंसे दाताओं तथा अन्य लोगोंको बहुत लाभ और सुख मिला है।

उपर्यंकित उस स्थान, भूमि और भवनका प्रयोग सत्संगके लिये ही होता है जिसे सिद्धपीठ स्थान कहते हैं।

७. ट्रस्टियोंको यह अधिकार भी दिया जाता है कि यहाँ आकर ठहरने और प्रवेश पानेवाले व्यक्तियोंके लिये नियम और उपनियम बना लें।

८. ट्रस्टियोंको इस न्यासको चलाते रहने और इसकी समुचित व्यवस्था करते रहनेका पूर्ण अधिकार होगा क्योंकि ब्रह्मलीन श्री १००८ दंडी स्वामीजी महाराजने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि उपर्युक्त दो ही व्यक्ति इस कार्यके लिये योग्य पात्र हैं, और इसलिये भी कि ये सारी भू–सम्पत्तियाँ श्री मेलाराम अग्रवालके पुत्र श्री रामस्वरूपके द्वारा ही खड़ी की गईं।

९. तभीसे ये दोनों सज्जन ट्रस्टियोंके रूपमें कार्य और व्यवस्था करते रहे हैं। यद्यपि कोई नियमित लिखित न्यासपत्र नहीं था तथापि श्री १००८ दंडी स्वामीजी महाराजके भक्तों और सेवकोंकी इच्छा हुई कि उपर्यंकित उद्देश्यों और आदर्शोंके अनुसार उपर्युक्त संपत्तियोंके सम्बन्धमें एक नियमित न्यास (ट्रस्ट) बना दिया जाय, इसीलिये इस न्यास (ट्रस्ट)–का निर्माण किया जा रहा है और पृष्ठ १ पर अंकित उन चौदह सज्जनोंके द्वारा यह न्यासपत्र लिखा जा रहा है जो आगे स्थापक कहलायंगे; और १–श्री नौरत्नचन्दसंड, मालिक हक़ होजियरी, लुधियानाके पुत्र श्री पं० ओंकारदत्त संड, २– गौतम होज़ियरी एंड टैक्सटाइल, लुधियानाके श्री मेलाराम अग्रवालके पुत्र श्री रामस्वरूप, ३– बधावा होज़ियरी एंड मिलिटरी स्टोर, इंडस्ट्रियल एरिया, लुधियानाके श्री बधावारामके पुत्र श्री ज्ञानचन्द, ४– कूचा राय साहब मंगतराय, लुधियानाके श्री अमरचन्दके पुत्र

पं० जगदीशचन्द्र कोमल, ५– आकाश होजियरी मिलके मालिक लाला फेरूमलके पुत्र श्री ज्ञानचन्द ढंढा ट्रस्टी कहलायेंगे। उपर्युक्त न्यासपत्र इस बातका साक्षी रहेगा कि स्थापकोंने उपर्युक्त पाँच सज्जनोंको निम्नांकित नियमों और विधानोंके अनुसार ट्रस्टी नियुक्त किया है और श्री रामस्वरूप ट्रस्टी अकेलेको दो-मत देनेका अधिकार दिया है।

टिप्पणी—अनुच्छेद २ में जो अन्तिम तीन ट्रस्टी गिनाए गए हैं वे १७–९–१९६३ को सहन्यासधारीके रूपमें सम्मिलित किए गए हैं।

१०. इस ट्रस्टका नाम सिद्धपीठ स्थान ट्रस्ट होगा। उपर्यंकित सारी भू–सम्पति और भवन सब ट्रस्टके अधीन होंगे। इसके पश्चात् भी जो सम्पत्ति ली जायगी या भवनमें जो अतिरिक्त निर्माण होंगे वे सभी ट्रस्टके अधीन होंगे।

११. ट्रस्टियोंका कर्तव्य होगा कि वे इस ट्रस्टको चलाते और इसकी सुव्यवस्था करते रहें। उन्हें अधिकार होगा कि इस ट्रस्टको चलाए रखनेके लिये अपनी कार्य–पद्धति स्वयं बना लिया करें। किसी ट्रस्टीका निधन हो जानेपर अन्य ट्रस्टियोंको अधिकार होगा कि उसके स्थानपर वे किसी ऐसे ही व्यक्तिको ट्रस्टी नियुक्त करें जो श्री दंडी स्वामीजी महाराजके अनुयायी और भक्त हों।

१२. उपर्युक्त ट्रस्टियोंका कर्तव्य होगा कि वे दूकानों, अन्य सम्पत्तियों तथा अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त धनका निम्नांकित कार्योंके लिये ही विनियोग करें—

१- यज्ञ-मण्डपकी व्यवस्था और सुरक्षा।

२- मन्दिरमें देव-विग्रहोंकी प्रतिष्ठा, मन्दिरके निर्माण और मन्दिरकी व्यवस्था।

३- समुचित वेतनपर पुजारी या पुजारियोंकी नियुक्ति।

४- पूजा तथा तत्सम्बद्ध सभी कार्य।

५- व्यास-पूजाके अवसरपर कीर्तन और सत्संगकी व्यवस्था, विशेषतः समाधि, यज्ञमंडप, सिंहासन तथा श्रीस्वामीजी महाराजकी कुटियाकी सुरक्षाकी व्यवस्था।

६- पुजारी तथा उपर्युक्त स्थानोंके प्रक्षालन-कर्ताओंके अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति समाधि, यज्ञमंडप, सिहासन-स्थल और कुटियोंमें नहीं जा सकेगा। ट्रस्टी लोग व्यासपूजाके अवसरपर पूजाके लिये किसी व्यक्ति या व्यक्तियोंको निमन्त्रित कर सकते हैं।

७- यदि कोषमें पर्याप्त धन हो तो विद्यालय या महाविद्यालय, स्कूल या कालेज, आयुर्वेदिक या ऐलोपैथिक औषधालयकी स्थापना की जाय। इन संस्थाओंकी व्यवस्थाके लिये ट्रस्टियोंको विशेष अधिकार दिया जाता है कि वे किराए या अन्य प्रकारकी आयका उनके लिये प्रयोग करें।

१३. ट्रस्टी और ट्रस्टियोंके (स्थानपर चुने हुए) उत्तराधिकारी ट्रस्टी ही उपर्युक्त सभी सम्पत्तिके, या ट्रस्टियों-द्वारा अन्य भवन, भूमि, सम्पत्ति या धनके, या दान, चन्दे, उपहार, उत्तराधिकारपत्र तथा अन्य किसी स्रोतसे प्राप्त धनके, या अन्य किसी न्याससे प्राप्त धन तथा उपर्युक्त भूमि या सम्पत्तिके किराएसे प्राप्त धनके या भविष्यमें संवर्द्धित संपत्ति या ट्रस्ट तथा ट्रस्टकी सम्पत्तिसे प्राप्त धनके अधिकारी रहेंगे और उपर्युक्त ट्रस्टके सामान्य उद्देश्योंकी सिद्धिके लिये ही विशेष रूपसे इस सब धनका उपयोग करेंगे।

१४. यह स्थान बारात या विवाह आदिके ठहराने अथवा इस प्रकारके अन्य किसी कार्यमें नहीं लाया जायगा।

१५. ट्रस्टी-गणने ट्रस्टका सारा प्रबन्ध ग्रहण कर लिया है और अबसे उन्होंने ट्रस्टीके रूपमें उपर्युक्त सम्पत्तिकी देखरेख और व्यवस्थाका भार ले लिया है।

१६. ट्रस्टकी किसी भी सम्पत्तिको किसी भी रूपमें विक्रय या बन्धक आदिके द्वारा किसीको भी हस्तान्तरित करनेका अधिकार ट्रस्टियोंको नहीं होगा।

१७. ट्रस्टीगण या उनमेंसे किसीको भी यथावसर ट्रस्टियोंके निश्चयके अनुसार ही किसीपर दावा करने या किसी वादमें प्रतिवाद करने, किसी प्रकारकी कानूनी कार्यवाही करने या उत्तर देने अथवा ट्रस्टकी ओरसे पक्ष या विपक्षमें समुचित व्यवहार करनेका अधिकार होगा। ट्रस्टी या ट्रस्टियोंको

रसीदे देने, समझौता करने, वक्तव्य देने या ट्रस्टके पक्ष या विपक्षमें लाई हुई कानूनी कार्यवाहीके सम्बन्धमें सब आवश्यक कार्य करनेका अधिकार होगा ।

१८. ट्रस्टीगण प्रतिवर्ष (अप्रैलसे मार्चतक) के सब आय और व्ययका नियमित खाता तैयार करके उसे प्रमाणित आय-व्यय-परीक्षकके द्वारा जँचवाकर तीन मासके भीतर सत्संगके सम्मुख प्रस्तुत करेंगे ।

१९. उपर्युक्त विवरणके साक्षी-स्वरूप उपर्यंकित प्रथम पृष्ठपर अंकित स्थापकोंने आज················को उपर्युक्त न्यासपत्र तथा उपर्युक्त ट्रस्टियोंके संबंधमें दी हुई आख्याकी स्वीकृतिके रूपमें हस्ताक्षर किए हैं —

१- श्री पं० ओंकारदत्त संड, पुत्र श्री नौरत्नचन्द संड, मालिक हक़ होज़ियरी, लुधियाना ।

२- श्री रामस्वरूप, पुत्र श्री मेलाराम अग्रवाल, गौतम होज़ियरी ऐण्ड टैक्सटाइल, लुधियाना ।

३- श्री ज्ञानचन्द, पुत्र श्री बधावाराम, मैसर्स बधावा होज़ियरी ऐण्ड मिलिटरी स्टोर, इंडस्ट्रियल एरिया, लुधियाना ।

४- पं० जगदीशचन्द्र, पुत्र श्री अमरचन्द, कूचा राय साहब मंगतराय, लुधियाना ।

५- श्री ज्ञानचन्द ढंढा, पुत्र श्री फेरूमल, मालिक आकाश होज़ियरी, लुधियानाने भी ट्रस्टी होनेकी स्वीकृतिके रूपमें हस्ताक्षर किए हैं ।

स्थापक

१. ह० बाबूराम
२. ह० सरदारीलाल खन्ना
३. ह० अमरनाथ जिन्दल
४. ह० रामरिछपाल
५. ह० दुर्गादास
६. ह० छज्जूराम
७ ह० राजकुमार
८. ह० रघुनाथसहाय
९. ह० बलदेवकृष्ण शर्मा
१०. ह० हंसराज शर्मा

ट्रस्टीगण

१. ह० रामस्वरूप *
२. ह० ओंकारदत्त
३. ह० ज्ञानचन्द
४. ह० जगदीशचन्द्र
५. ह० ज्ञानचन्द

* स्व० रामस्वरूपके स्थानपर श्री विजयकुमार गुप्त, पुत्र श्री देशराज गुप्त किरयाना बाजार, लुधियाना ट्रस्टी नियुक्त हुए हैं ।

वर्तमान ट्रस्टीगण–

१. पं० ओंकारदत्तजी संड
२. पं० जगदीशचन्द्रजी कोमल
३. श्रीज्ञानचन्दजी आहूजा
४. श्रीमदनलालजी अग्रवाल
निकट दयानन्द अस्पताल,
मैंसर्स भगतराम नौहरियाराम,
लुधियाना।
५. श्रीविजयकुमार गुप्त,
मैंसर्स देशराज अशोक कुमार,
पंसारी बाज़ार, केसरगंज रोड,
लुधियाना।

—०—

श्रीस्वामीजीकी वंश-सारणी

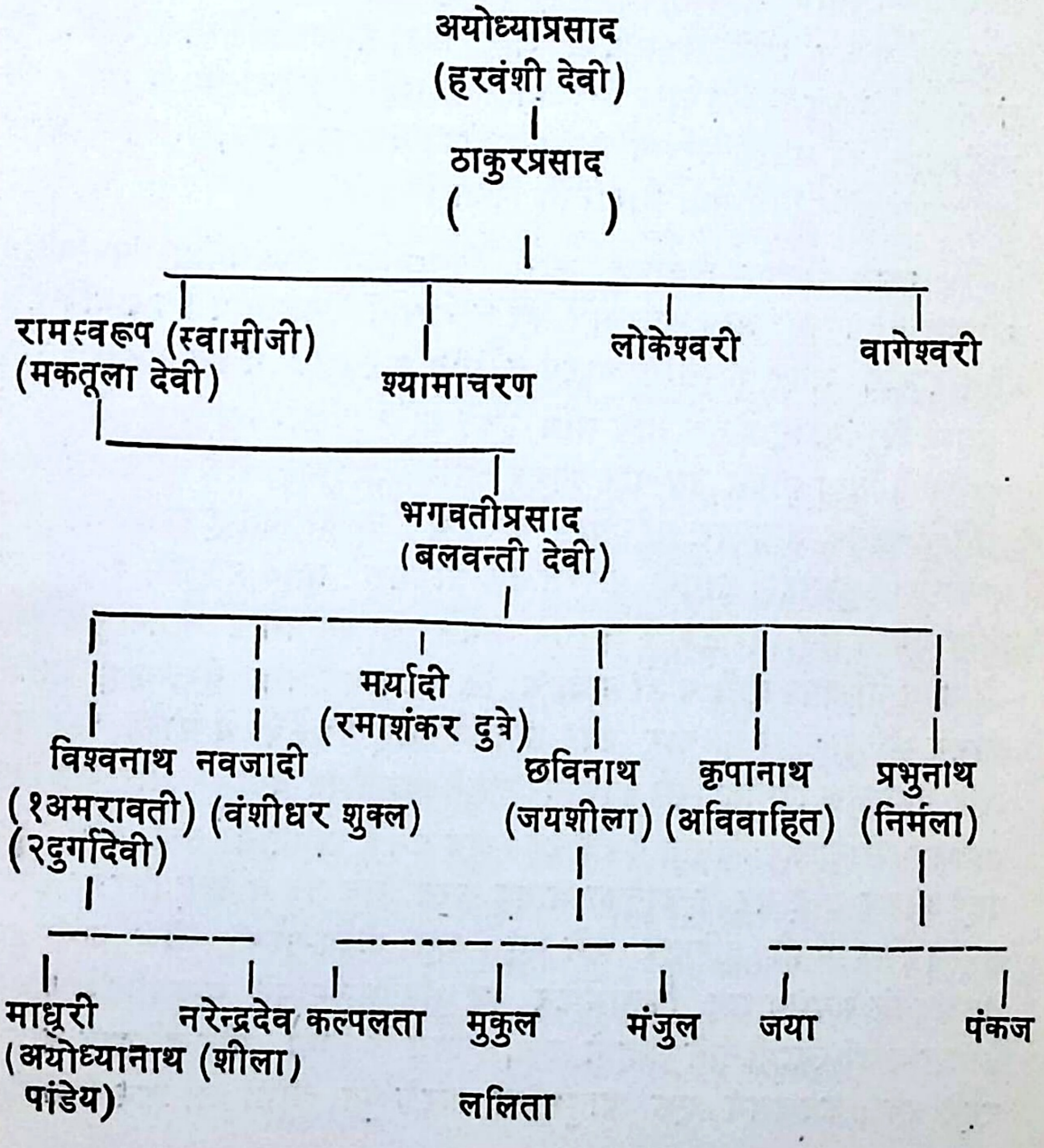
अयोध्याप्रसाद
(हरवंशी देवी)
ठाकुरप्रसाद
(   )
रामस्वरूप (स्वामीजी)
(मकतूला देवी)
श्यामाचरण
लोकेश्वरी
वागेश्वरी
भगवतीप्रसाद
(बलवन्ती देवी)
मर्यादी
(रमाशंकर दुबे)
विश्वनाथ
(१अमरावती)
(२दुर्गादेवी)
नवजादी
(वंशीधर शुक्ल)
छविनाथ
(जयशीला)
कृपानाथ
(अविवाहित)
प्रभुनाथ
(निर्मला)
माधुरी
(अयोध्यानाथ पांडेय)
नरेन्द्रदेव
(शीला)
कल्पलता
मुकुल
ललिता
मंजुल
जया
पंकज

दण्डी स्वामी श्रीशङ्कराश्रमजी महाराजका संक्षिप्त पूर्वाश्रम-वंश तथा जीवन-परिचय

श्री १००८ स्वामी शंङ्कराश्रमजी महाराज (श्री रामस्वरूप) का जन्म उत्तर प्रदेशके मीरजापुर जनपद में गङ्गाजीके उत्तरी तटपर समवस्थित श्रीपट्टी नामक ग्राममें सन् १८७० के लगभग हुआ था। उनके पितामह पंडित अयोध्याप्रसादजीका विवाह श्रीपट्टीके पंडित जीवनाथ दुबेके पुत्र बेनीकी पुत्री श्रीमती हरवंशीसे हुआ था। संयोगवश बेनी दुबेके कनिष्ठ भ्राता माधव दुबेका वंश नहीं चल पाया, अतः श्रीअयोध्याप्रसाद और श्रीमती हरवंशीके पुत्र ठाकुरप्रसादको श्रीपट्टीमें नवासा मिल गया इसलिये पंडित अयोध्याप्रसादजी अपने मूल स्थान गुलालपुरसे आकर श्रीपट्टीमें ही बस गए। श्रीस्वामीजीके पितामह पंडित अयोध्याप्रसादजी और पिता पंडित ठाकुरप्रसादजी दोनों संस्कृतके धुरन्धर पण्ड़ित और निष्णात कर्मकाण्ड़ी थे। इसलिये मध्यप्रदेशकी तत्कालीन रियासतोंके सम्पन्न भूपति उन्हींको यज्ञ, अनुष्ठान, संस्कार आदि धार्मिक कृत्योंके लिये सदा आमन्त्रित किया करते थे।

अपने विद्वान् पितामह और पिताजीकी श्लाघनीय परम्परामें श्रीरामस्वरूपने भी अल्प अवस्थामें ही तत्कालीन विद्वान् पंडित व्रजविलास तिवारीजीसे अनेक शास्त्रोंमें पारंगति प्राप्त कर ली। पंडित रामस्वरूपजी (स्वामीजी) विद्वान् होनेके साथ साथ इतने धर्मिष्ठ और आस्तिक भी थे कि जबतक वे नित्य नावसे उस पार जाकर श्रीविन्ध्यवासिनीजीके दर्शन नहीं कर आते थे तबतक अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे। उनका विवाह छोटी अवस्थामें ही सरैया (गुरसंडी) ग्रामके पण्डित वेणीमाधवकी बहन मकतूला देवीसे कर दिया गया। सन् १८९३ के लगभग उनके भगवतीप्रसाद नामक पुत्र हुआ जो अभी दो वर्षका भी न हो पाया था कि घटनावश तीव्र वैराग्य हो जानेके कारण श्रीस्वामीजी घरबार छोड़-छाड़कर सन् १८९६ में काशी चले गए और वहाँ कुछ दिनोंतक तो काशीनरेशके नगवा-स्थित बगीचेमें और कुछ दिन नवाबगंजमें रहकर चिन्तन करते रहे। जब उनके ग्रामवासी उन्हें खोजते हुए वहाँ आकर उन्हें घर ले जानेका आग्रह करने लगे तब वे उन्हें निराश करके सन् १८९६ में ही हरिद्वार चले गए। वहाँ दीक्षा-गुरुकी खोज करते हुए देहरादूनसे लगभग छह किलोमीटर दूर पश्चिमाम्नायके चन्द्रमणि आश्रमके प्रसिद्ध दण्डी स्वामीजीसे उन्होंने दण्ड संन्यास ले लिया और हरिद्वार आकर रहने लगे। कनखलमें एक चातुर्मास्य करके पुनः काशी लौटकर वे काशि-

राजके नगवा-स्थित बगीचेमें रहने लगे। वहाँ एक चातुर्मास्य करके उन्होंने हरिद्वार जाकर कनखलमें एक चातुर्मास्य किया।

सन् १९०२ में हरिद्वार–कुम्भके अवसरपर मिस्त्री बिशनसिंह रामसिंह, और रुलियाराम काशी ले चलनेके बहाने उन्हें अपने साथ पंजाबमें दोराहेके पास नत्ताँ ग्राम लेते गए। वहाँ एक चातुर्मास्य करके वे पासके ही सिबली ग्राम चले गए जहाँ एक चातुर्मास्य करके सन् १९०६ में वे लुधियानेके लाला चन्दूलालके बागीचेमें जा रहे। उन्होंने एक चातुर्मास्य वहाँ किया, दो चातुर्मास्य लाहौरियोंके बगीचेमें किए और एक चातुर्मास्य जालन्धरके सेठ हुकुमचन्दके बगीचेमें करके ढण्ढोंके आग्रहपर वे लुधियानेके सिविल लाइन्स-स्थित ढंढोके बाग (वर्त्तमान तपोवन) में आ गए जहाँ निरन्तर एकान्तवास करते हुए ब्रह्मलीन होनेका संकल्प करके आषाढ शुक्ला पूर्णिमा (२७ जुलाइ, सन् १९६१) को बड़े विधिविधानके साथ काशीके पण्डितोंके द्वारा शतद्रु (सतलज) नदीमें अपना दण्ड विसजंन कराया और भाद्रपद युक्ला पूर्णिमा संवत् २०१८ (२४ दिसम्बर, सन् १९६२) को वे नवनिर्मित सिद्ध पीठमें बड़ी धूमधामके साथ ले जा पहुँचाए गए जहाँ एक वर्य सोलह दिनोंके पश्चात् भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी (ऋषिपञ्चमी) सं० २०२० (२४ अगस्त, सन् १९६२) को प्रातः सात बजकर बीस मिनटपर वे ब्रह्मलीन हो गए और वहीं सिद्धपीठमें ही स्वामी श्रीरामाश्रमजीके निर्देशानुसार उन्हें भू-समाधि दे दी गई।

श्रीरामस्वरूपजी (श्रीस्वामीजीके पूर्वाश्रम-नाम) के पुत्र श्री भगवतीप्रसादका विवाह मिश्रदायके पण्डित उदितनारायण मिश्रकी सुपुत्री श्रीमती बलवन्ती देवीसे हुआ जिनके क्रमशः विश्वनाथ, नवजादी, मर्यादी, छबिनाथ, कृपानाथ और प्रभुनाथ नामक छह सन्तान हुई। श्रीविश्वनाथका पहला विवाह बेनीपुर (कुडरिया) के पंडित ज्ञानदत्त मिश्रकी पुत्री अमरावतीसे हुआ था जिसके निधन हो जानेपर उनका दूसरा विवाह हिरामनके पंडित सीताराम पाठककी पुत्री श्रीमती दुर्गादेवीसे हुआ जिनकी पुत्री माधुरीका विवाह काशीके वकील श्री अयोध्यानाथ पांडेयसे हुआ और पुत्र नरेन्द्रदेवका विवाह ठाठर गोपालपुर (रामपुर) के पंडित फूलचन्दकी पुत्री श्रीमती शीलासे हुआ। विश्वनाथजी पाँच वर्ष उत्तर प्रदेश विधानसभाके सदस्य रहे और नरेन्द्रदेव आजकल कटिहार (बिहार)–में कांग्रसके सन्द्रष्टा (औब्जर्वर) हैं। श्रीमती नवजादीका विवाह पंडित वंशीधर शुक्लसे और श्रीमती मर्यादी देवीका विवाह पंडित रमाशंकर दुबेसे हुआ। डाक्टर पंडित छबिनाथ पांडेयका विवाह काशीके पण्डित सीताराम चतुर्वेदीकी

सुपुत्री डाक्टर श्रीमती जयशीलासे हुआ। डा० छबिनाथ पाण्डेय मीरजापुरके धनश्यामदास बिनानी महाविद्यालयमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष और प्राचार्य हैं तथा डा० श्रीमती जयशीला पाण्डेय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें हिन्दीकी प्राध्यापिका हैं। इनकी ज्येष्ठ सन्तान सुश्री कल्पलता पाण्डेयने एम्० ए०, एम्० एड्०, पी एच्० डी० किया है, द्वितीय सन्तान श्री मुकुल पाण्डेयने एल्-एल्० बी० किया और उनका विवाह पनियरा (जखिनी) के प्रसिद्ध वकील पण्डित रामबड़ाई द्विवेदीकी सुपुत्री स्नेहलतासे हुआ जिनके एक पुत्री ललिता है। तृतीय सन्तान श्री मंजुल पाण्डेय अच्छे संगीत-कलाकार तथा वेदज्ञ हैं और काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें अध्ययन कर रहे हैं।

किसी कारणवश श्री कृपानाथ कुछ वर्ष पूर्व किसी अज्ञात स्थानको चले गए। श्री प्रभूनाथ विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करके मध्य प्रदेशके शिक्षा-विभागमें अध्यापक-पदपर काम कर रहे हैं। उनका विवाह इंटवा महाराजगंज (जिला वाराणसी) के पंडित रामचन्द्र मिश्रकी सुपुत्री श्रीमती निर्मलासे हुआ जिनके दो सन्तान हैं—जया और पंकज।

इस प्रकार श्री स्वामीजी महाराजके आशीर्वादसे उनके पूर्वाश्रमका परिवार निरन्तर उन्नति करता जा रहा है।

◆

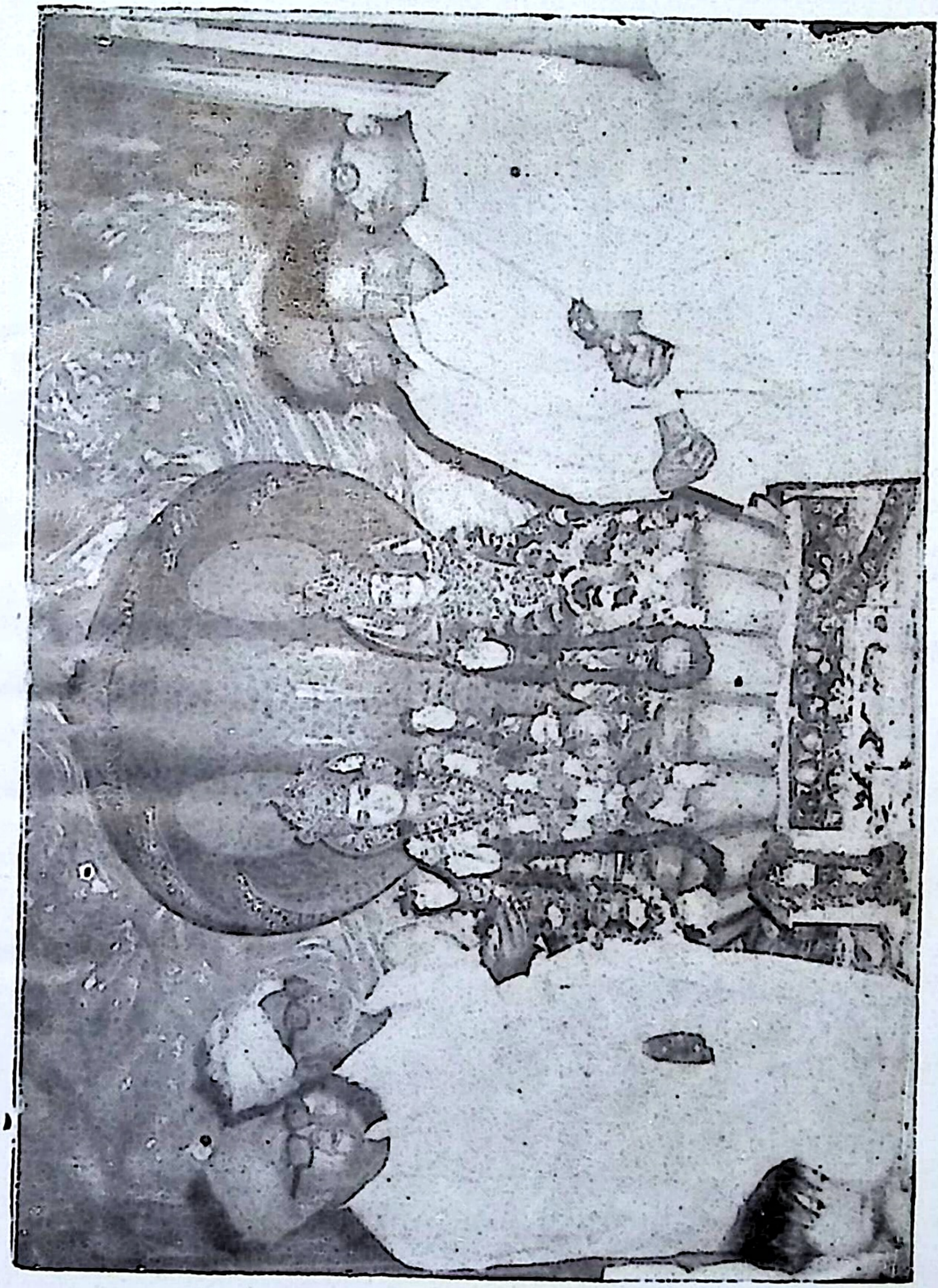

प्रारम्भिक ट्रस्टीगण

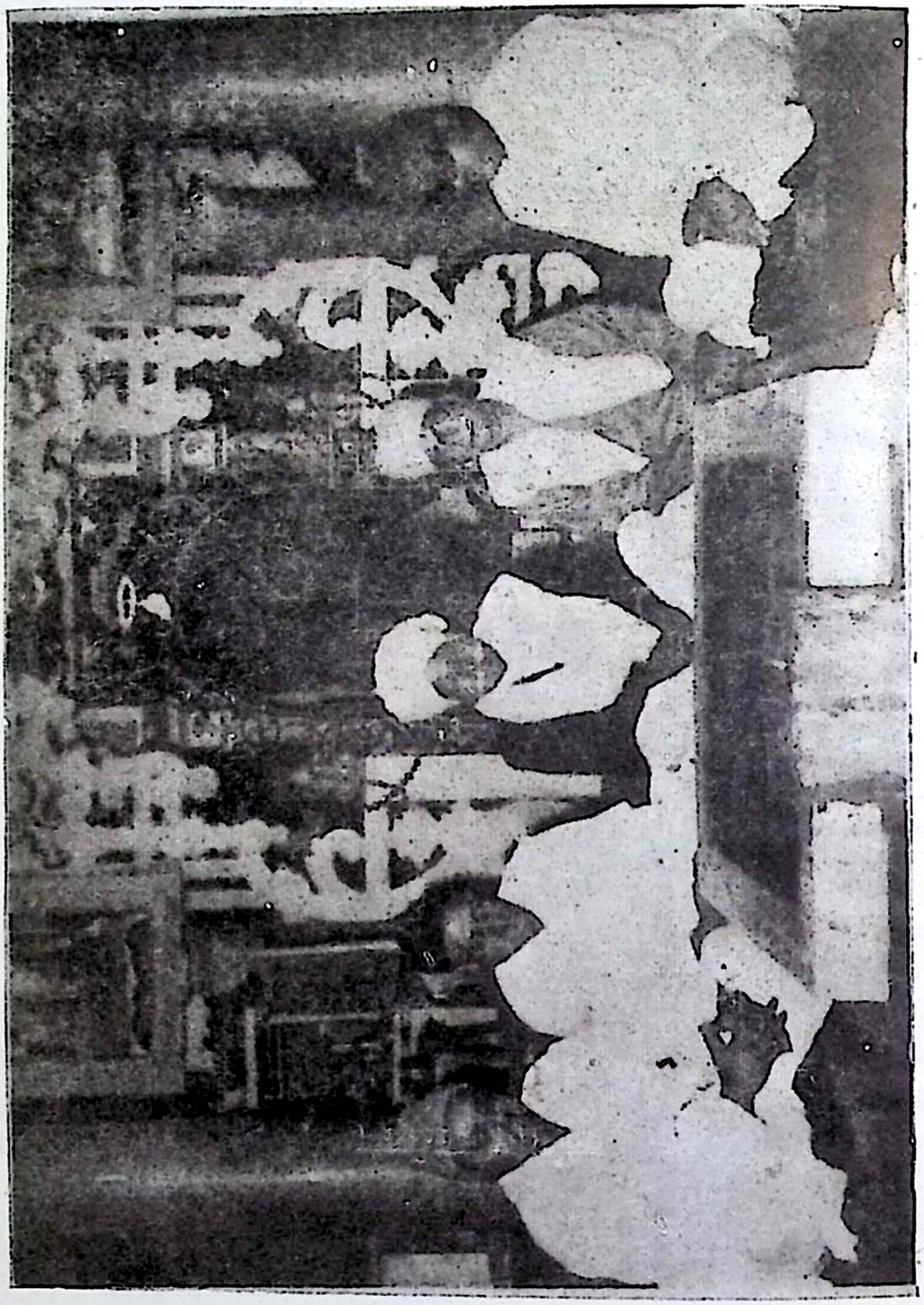

वर्तमान ट्रस्टीगण

ध्यानस्थ श्री १००८ स्वामी शंकराश्रमजी महाराज

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीगुरुमण्डलार्चनपद्धतिः प्रारभ्यते ।

※ अथाऽनुक्रमः ※

मंगलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः ।
मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥
सुस्नातः प्राङ्मुखो भूत्वा यजमानः कृताह्निकः ।
आहूय ब्राह्मणान् कुर्यात् प्रतिज्ञां विधिवत्तदा ॥ १ ॥
गणेशपूजनं कृत्वा वरुणं च ततो यजेत् ।
पुण्याहवाचनं कृत्वाऽभिषेकं कारयेत्ततः ॥ २ ॥
गौर्यादिपूजनं चैव घृतमातृकपूजनम् ।
आयुष्यमन्त्रपाठं तु नान्दीश्राद्धमतः परम् ॥ ३ ॥
सर्वेषां वरणं कृत्वा सर्वतोभद्रपूजनम् ।
ततः प्रधानदेवस्य पूजनं च समारभेत् ॥ ४ ॥
स्थाप्याग्नि सुग्रहाणां च स्थापनं कुशकण्डिकाम् ।
कृत्वा ततो यजेदाज्याऽऽहुतिं भक्तिपुरस्सरः ॥ ५ ॥
सूर्य्यादीनां ग्रहाणाञ्च होमः कार्यस्तिलादिभिः ।
ततः प्रधानदेवस्य होमः कार्यो यथाविधि ॥ ६ ॥
सर्वतोभद्रदेवानां हवनं वै समाचरेत् ।
पूजनं स्विष्टकृच्चैव घृतेनैव नवाहुतिः ॥ ७ ॥
दिक्पालेभ्यो बलिं दीपं सूर्यादीनामतः परम् ।
प्रधानस्य बलिं दद्याद्दद्यात् क्षेत्राधिपाय च ॥ ८ ॥

पूर्णाहुतिमथो हुत्वा वसोर्द्धारां समाचरेत् ।
भस्मना त्र्यायुषं कृत्वा संस्रवप्राशनादिकम् ॥ ९ ॥
श्रेयो दानं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् स्वर्णसुदक्षिणाम् ।
कारयेदभिषेकादीन् विसर्जनमतः परम् ॥ १० ॥

※ अथ कर्तव्यता ※

शुभग्रहानुकूलसमये (आषाढशुक्लपौर्णिमायां, पौषशुक्लपौर्णिमायां वा) शुभे दिने शुभे लग्ने च कृतनित्यक्रियो यजमानः शुभासने प्राङ्मुख उपविश्य । ॐ केशवाय नमः १ ॐ नारायणाय नमः २ ॐ माधवाय नमः ३ ॥ इति त्रिराचम्य ॥

ॐ पवित्त्रेस्त्थो व्वैष्ष्णव्व्यौ सवितुर्व्वः प्प्रसव ऽउत्पुनाम्म्यच्छिद्द्रेण पवित्त्रेण सूर्य्यस्य रश्म्मिभिः ॥ तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ १ ॥

इति मन्त्रेण पवित्रधारणं कृत्वा ततः प्राणायामत्रयं कुर्यात् ।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ३ ॥

इत्यात्मानं पूजासामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य ॥ तण्डुलपूरितताम्रपात्रे मृण्मये वा कुङ्कुमेनाऽष्टदलं पद्मं कृत्वा तदुपरि गोमयमयीं गौरीं फलमयं गणेशं च संस्थाप्य हस्ते अक्षत-पुष्पाणि गृहीत्वा मङ्गलमन्त्रान् पठेत् ॥

ॐ आ नो भद्द्राः क्क्रतवो यन्तु व्विश्वतो दब्धासो ऽअपरीतासऽउद्द्भिदः ॥ देवा नो यथा सदमिद्वृधे ऽअसन्नप्प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥१॥ देवानाम्भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवानाᳬंरातिरभि नो निवर्त्तताम् ॥ देवानाᳬंसख्यमुपसेदिमा

व्वयन्देवा न ऽआयुः प्प्रतिरन्तु जीवसे ।। २ ।। तान्पूर्व्वया निविदा हूमहे व्वयम्भगम्मित्त्रमदितिन्दक्षमस्त्रिधम् ।। अर्य्यमणं वरुणंठँ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।। ३ ।। तन्नो व्वातो मयोभु व्वातु भेषजन्तन्माता पृथिवी तत्पिता द्द्यौः ।। तद्द्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना श्रृणुतन्धिष्ण्या युवम् ।। ४ ।। तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्प्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् ।। पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रांक्षता पायुरदब्धः स्वस्तये ।। ५ ।। स्वस्ति न ऽइन्द्रो व्वृद्धश्श्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्श्ववेदाः ।। स्वस्ति नस्ताक्ष्यों ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्द्दधातु ।। ६ ।। पृषदश्श्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंय्यावानो व्विदथेषु जग्मयः ।। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो व्विश्श्वे नो देवा ऽअवसा गमन्निह ।। ७ ।। भद्द्रङ्कर्ण्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्द्रम्पश्येमाक्षभिर्य्यजत्त्राः ।। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः ।। ८ ।। शतमिन्नु शरदो ऽअन्ति देवा यत्त्रा नश्चचक्क्रा जरसन्तनूनाम् ।। पुत्त्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मद्ध्या रीरिषतायुर्ग्गन्तोः ।। ९ ।। अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्त्रः ।। व्विश्श्वे देवा ऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्त्वम् ।। १० ।। द्यौः शान्तिरन्तरिक्षठँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।। व्वनस्प्पतयः शान्तिर्व्विश्श्वे देवाः शान्तिर्ब्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वठँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ।। ११ ।। यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।। शन्नः कुरु प्प्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः ।। १२ ।। सुशान्तिर्भवतु ।।

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।। लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ।। उमामहेश्वराभ्यां नमः ।। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः ।। शचीपुरन्द-

राभ्यां नमः ॥ मातापितृभ्यां नमः ॥ इष्टदेवताभ्यो नमः ॥ कुलदेवताभ्यो नमः ॥ ग्रामदेवताभ्यो नमः ॥ वास्तुदेवताभ्यो नमः ॥ स्थानदेवताभ्यो नमः ॥ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ॥ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ॥

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ॥ १ ॥
वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ २ ॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ ३ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ४ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ५ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ६ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ७ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः ॥ ९ ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥१०॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ।। ११ ।।
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। १२ ।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। १३ ।।
स्मृतेः सकलकल्याणं भाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ।। १४ ।।
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धि ब्रह्मेशानजनार्दनाः ।। १५ ।।

यजमानः जलाक्षतद्रव्यं चादाय सङ्कल्पं कुर्यात् ।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथमचरणे भूर्लोके जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे सारस्वतप्रदेशे, शतद्रोः दक्षिणे (अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे भागे) विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे आषाढमासे शुक्लपक्षे पौर्णमास्यां तिथौ (अथवा पौषमासे शुक्लपक्षे पौर्णमास्यां) अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (वर्मा) ऽहं मम आत्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिक-चतुर्विधपातकदुरितक्षय-द्वारा धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थप्राप्त्यर्थं सर्वलोक-कल्याणार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं च श्रीगुरुमण्डलार्चनमहं करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्द्धारापूजनं साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धमाचार्यादिवरणानि

णानि च करिष्ये ।। तत्राऽऽदौ निविघ्नतासिद्धार्थं गणेशाऽम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये ।

इति सङ्कल्पं कृत्वा षोडेशोपचारैः गणपतिं पूजयेत् ।। हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा गणपतिमावाहयेत् ।।

हरिः ॐ गणानान्त्वा गणपतिठँ हवामहे प्प्रियाणान्त्वा प्प्रियपतिठँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिठँ हवामहे व्वसो मम ।। आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ।।

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम् ।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ अम्बे ऽअम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्च्चन ।। ससस्त्यश्श्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि ।।

ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्प्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्ट्टं य्यज्ञठँ समिमन्दधातु ।। विश्श्वेदेवास ऽइह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ ।। १ ।।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ।। १ ।।

टि० १ षोडशोपचारास्तु कर्मप्रदीपे—
"आवाहनाऽऽसने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।। स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात् ।। १ ।।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा ।। पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश ।। २ ।।"
"फलेन सफलावाप्तिः साङ्गता दक्षिणार्पणात्" इति ।।

गणेशाऽम्बिके सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम् ।
विचित्ररत्नखचितं दिव्यास्तरणसंयुतम् ।।
स्वर्णसिंहासनं चारु गृह्णीष्व सुरपूजित ! ।। १ ।।

ॐ पुरुष ऽएवेदꣳ सर्व्वं यद्भूतं य्यच्च भाव्व्यम् ।। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आसनं समर्पयामि ।।
ॐ सर्वतीर्थसमुद्भूतं पाद्यं गन्धादिभियुतम् ।
विघ्नराज गृहाणेदं भगवन् भक्तवत्सल ! ।। २ ।।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च्च पूरुषः ।। पादोस्य व्विश्श्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ।।

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पाद्यं समर्पयामि ।।
ॐ गणाध्यक्ष नमस्तेऽस्तु गृहाण करुणाकर ।
अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धमाल्याक्षतैयुतम् ।।

ॐ त्रिपादूर्द्ध्वं ऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।। ततो व्विष्ष्वङ् व्व्यक्क्रामत्साशनानशने ऽअभि ।। ३ ।।

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, अर्घ्यम् समर्पयामि ।।
विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैरभिवन्दित ।
गङ्गोदकेन देवेश कुरुष्वाचमनं प्रभो ।।

ॐ ततो व्विराडजायत व्विराजो ऽअधि पूरुषः ।। स जातो ऽअत्यरिच्च्यत पश्च्चाद्भूमिमथो पुरः ।। ४ ।।

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आचमनं समर्पयामि ।।
मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।। पशूँस्ताँश्च्चक्क्रे व्वायव्व्यानारण्ण्या ग्ग्राम्याश्च्च ये ।। ५ ।।

गणेशाम्बिकाभ्यां नमः स्नानम् समर्पयामि ।। अथवा ।। ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि समर्पयामि ।।

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेभवत्सरित् ।।

पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु ।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।। १ ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।। अथवा।।

कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ।।

ॐ पयः पृथिव्व्याम्पय ऽओषधीषु पयो दिव्व्यन्तरिक्षे पयो धाः ।। पयस्वतीः प्प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पयःस्नानं समर्पयामि ।।

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव! स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ दधिक्क्राव्णो ऽअकारिषञ्जिष्ण्णोरश्श्वस्य व्वाजिनः ।। सुरभि नो मुखा करत्प्र ण ऽआयूꣳषि तारिषत् ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः दधिस्नानं समर्पयामि ।।

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ घृतम्मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्म्वस्य धाम ।। अनुष्ष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृत व्वृषभ व्वक्षि हव्व्यम् ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः घृतस्नानं समर्पयामि ॥

पुष्परेणुसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु ।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ मधुव्वाता ऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ॥ माद्ध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्त्थिवठं रजः ॥ मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २ ॥ मधुमान्नो व्वनस्प्पतिर्म्मधुमाँ२ ऽअस्तु सूर्य्यः ॥ माध्वीर्ग्गावो भवन्तु नः ॥ ३ ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मधुस्नानं समर्पयामि ॥

इक्षुरससमुद्भूतां शर्करां पुष्टिदां शुभाम् ॥
मलापहारिकां दिव्यां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।

ॐ अपाꣳ रसमुद्द्वयसठं सूर्य्ये सन्तठं समाहितम् ॥ अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं व्वो गृह्णाम्म्युत्तममुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टङ्गृह्णाम्म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः शर्करास्नानं समर्पयामि ॥

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्जे दधातन ॥ महे रणाय चक्षसे ॥ अथवा ॥ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्द्राय पशुपतये कर्ण्णा यामा ऽअवलिप्प्ता रौद्द्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्न्याः ॥

गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती ।
नर्मदा सिन्धु कावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः स्नानान्ते आचमनं समर्पयामि ॥

ॐ युवा सुवासाः परिवीतऽआगात्सऽउ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय ऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥

शीतवातोष्णसंत्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः वस्त्रं समर्पयामि ।
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आचमनं समर्पयामि ॥

ॐ सुजातो ज्योतिषा सह शर्म्म व्वरूथमासदत्त्स्वः । व्वासो अग्ग्ने व्विश्श्वरूपꣳ संव्व्ययस्व व्विभावसो ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः उपवस्त्रं समर्पयामि ।
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आचमनं समर्पयामि ॥

[वा] ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः वस्त्रोपवस्त्रार्थे रक्तसूत्रं समर्पयामि । अलङ्करणार्थे अक्षतान् समर्पयामि ॥

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ! ॥
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, आचमनं समर्पयामि ॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥
ॐ त्वां गन्धर्व्वा ऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्प्पतिः ॥
त्वामोषधे सोमो राजा व्विद्द्वान्न्यक्ष्मादमुच्च्यत ॥
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः गन्धं समर्पयामि ॥
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ! ॥
ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्प्रियाऽअघूषत ॥
अस्तोपत स्वभानव्वो व्विप्प्रा नविष्ठया मती योजा न्न्विन्द्र ते हरी ॥
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः अक्षतान् समर्पयामि ॥

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ! ।।
मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।१।।

ॐ ओषधीः प्प्रतिमोदद्ध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।।
अश्वा ऽइव सजित्त्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्ण्णवः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।।२३।।

दुर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान् ।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक ! ।।

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।। एवा नो दूर्व्वे प्प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि ।।

सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्द्धनम् ।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ सिन्धोरिव प्प्राद्ध्वने शूघनासो व्वातप्प्रमियः पतयन्ति यह्व्वाः ।। घृतस्य धारा ऽअरुषो न व्वाजी काष्ट्ठा भिन्दन्नूर्म्मिभिः पिन्वमानः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः सिन्दूरं समर्पयामि ।।

नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम् ।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धं चारु प्रगृह्यताम् ।।

ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्याया हेतिं प्परिबाधमानः ।। हस्तग्घ्नो व्विश्श्वा व्वयुनानि व्विद्द्वान्पुमान्पुमाᳬँसं प्परिपातु व्विश्श्वतः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि ।।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ धूरसि धूर्व्वं धूर्व्वन्तं धूर्व्वंतं य्योस्म्मान्धूर्व्वति तं धूर्व्वं यं व्वयं धूर्व्वामः ।। देवानामसि व्वह्नितमꣳ सस्नितमम्पप्रितमञ्जुष्ट्टतमन्देवहूतमम् ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः धूपं समर्पयामि ।।

साज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।।
भक्त्या दीपं प्रयच्छामि देवाय परमात्मने ।
त्राहि मां निरयाद्घोराद्दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ।।

ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्योतिर्ज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ।। अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा ।। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा ।।१।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः दीपं समर्पयामि ।। हस्तप्रक्षालनम् ।।

नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ।।
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च ।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्ण्णो द्यौः समवर्त्तत ।। पद्भ्याम्भूमिर्द्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्प्पयन् ।। अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।। प्रप्र दातारं तारि ष ऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।।

ॐ प्राणाय स्वाहा ।। ॐ अपानाय स्वाहा ।। ॐ समानाय स्वाहा ।। ॐ उदानाय स्वाहा ।। ॐ व्यानाय स्वाहा ।। ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः नैवेद्यं समर्पयामि ।।

आचमनीयं मध्ये पानीयम् उत्तरापोशनं समर्पयामि ।।

ॐ चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम् ।
करोद्वर्तनकं देव गृहाण परमेश्वर ।।

ॐ अꣳशुना ते अꣳशुः पृच्च्यतां परुषा परुः ।।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्च्युतः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः चन्दनेन करोद्वर्तनं समर्पयामि ।।

ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।। व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ् ग्रीष्म्म ऽइध्मः शरद्धविः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मुखवासार्थे पूगीफलताम्बूलं समर्पयामि ।

इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ।।

ॐ याः फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्प्पा याश्च्च पुष्प्पिणीः ।। बृहस्पतिप्प्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः नारिकेलफलं समर्पयामि ।।

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।।

ॐ हिरण्यगर्ब्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।। स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्म्मै देवाय हविषा व्विधेम ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः कृतायाः पूजायाः षाड्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि ।।२६।।

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥

ॐ इदꣳ हविः प्रजननम्मे ऽअस्तु दशवीरꣳ सर्व्वगण ꣳस्वस्तये । आत्त्मसनि प्प्रजासनि पशुसनि लोकसन्न्यभयसनि । अग्निः प्प्रजाम्बहुलाम्मे करोत्त्वन्नम्पयो रेतो ऽअस्म्मासु धत्त ॥ आ रात्त्रि पार्त्थिवꣳ रजः पितुरप्प्रायि धामभिः ॥ दिवः सदाꣳसि बृहती व्वितिष्ठ्ठस ऽआ त्त्वे षं वर्त्तते तमः ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ॥२७॥

नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्प्रथमान्यासन् ॥ ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्प्रियाणान्त्वा प्प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम ॥ आहमजानि गर्ब्भधमात्त्वमजासि गर्ब्भधम् ॥ १ ॥

ॐ अम्बेऽअम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्चन ॥ ससस्त्यश्श्वकः सुभद्द्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ॥ ॐ व्विश्श्वतश्च्चक्षुरुत व्विश्श्वतोमुखो व्विश्श्वतोबाहुरुत व्विश्श्वतस्प्पात् ॥ सम्बाहुब्भ्यान्धमति सम्पतत्त्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽएकः ॥

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥

पदे पदे या परिपूजकेभ्यः सद्योऽश्वमेधादिफलं ददाति ।
तां सर्वपापक्षयहेतुभूतां प्रदक्षिणां ते परितः करोमि ॥

ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।।
तेषाꣳसहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ।।

ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

अथ विशेषार्घः ।

रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्यरक्षक !
भक्तानामभयं कर्ता त्राता भव भवार्णवात् ।। १ ।।
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो ! ।
वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ।। २ ।।
अनेन सफलार्घ्येण सफलोऽस्तु सदा मम ।।
ॐ गणेशाम्बिकाभ्यां नमः विशेषार्घ्यं समर्पयामि ।।

अथ प्रार्थना ।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।१।।
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ।।२।।

नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ।। ३ ।।
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ! ।। ४ ।।
लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।। ५ ।।
त्वां विघ्नशत्रुदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति ।
विद्याप्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ।। ६ ।।

अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेतां न मम ॥

अथ पञ्चोङ्कारपूजनम् ।

आवाहयाम्यहं देवमोङ्कारं परमेश्वरम् ॥
त्रिमात्रं त्र्यक्षरं दिव्यं त्रिपदं च त्रिदैवकम् ॥ १ ॥
त्र्यक्षरं त्रिगुणाकारं सर्वाक्षरमयं शुभम् ।
त्र्यर्णवं प्रणवं हंसं स्रष्टारं परमेश्वरम् ॥ २ ॥
अनादिनिधनं देवमप्रमेयं सनातनम् ।
परं परतरं बीजं निर्मलं निष्कलं शुभम् ॥ ३ ॥
ओङ्कारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ओङ्काराय नमो नमः ॥ ४ ॥

ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर ऽइषव्योतिव्याधी महारथो जायतान्दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतान्निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ १ ॥

अथ भैरवपूजनम् ।

ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती ।
क्रतुसमयसपर्या विघ्नविच्छेदहेतु-
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥

आसन-पवित्र-करण-मन्त्राः ।

ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः ॥

ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥

* अथ कलशस्थापनम् *

तत्रादौ कलशक्षणं यथा—

स्वर्णं वा राजतं वाऽपि ताम्रं मृण्मयजं तु वा ।
अकालमव्रणं चैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
पञ्चाशाङ्गुलवैपुल्यमुत्सेधे षोडशाङ्गुलम् ।
द्वादशाङ्गुलकं मूलं मुखमष्टाङ्गुलं तथा ॥

अथ सप्तधान्यानि—

यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव च ।
श्यामकाश्चणकाश्चैव सप्त धान्यानि संविदुः ॥

अथवा—

यव–धान्य–तिलाः कङ्गुः मुद्ग–चणक–श्यामकाः ।
एतानि सप्त धान्यानि सर्वकार्येषु योजयेत् ॥

अथ सप्तमृदः—

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद् ह्रदात् ।
राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥

अथ सर्वौषधयः—

मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।
शटी चम्पकमुस्ते च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥

अथ पञ्चपल्लवाः—

न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थः चूतः प्लक्षस्तथैव च ।

अथ पञ्चरत्नानि—

कनकं कुलिशं मुक्ता पद्मरागं च नीलकम् ।
एतानि पञ्च रत्नानि सर्वकार्येषु योजयेत् ॥

प्रकारान्तरम्—

वज्र–मौक्तिक–वैडूर्य्य–प्रवालं चेन्द्रनीलकम् ।
अलभे सर्वरत्नानां हेमं सर्वत्र योजयेत् ॥ इति ॥

ततः कुङ्कुमादिना भूमौ अष्टदलं पद्मं कृत्वा ।।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽइमं य्यज्ञं मिमिक्षताम् ।। पिप्पृतान्नो भरीमभिः ।। इति भूमिं स्पृष्ट्वा ।। १ ।। ॐ ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा ।। यस्म्मै कृणोति ब्ब्राह्मणस्तठं राजन्न्पारयामसि ।। इति सप्तधान्यं विकिरेत् ।। ॐ आजिग्घ्र कलशं मह्या त्वा व्विशन्त्विन्दवः पुनरूर्ज्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्क्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्माविशताद्द्रयिः ।। इति सप्तधान्योपरि कलशं स्थापयेत् ।। २ ।। ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्न्यसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद ।। इति कलशे जलं पूरयेत् ।। ३ ।। ॐ त्वां गन्धर्व्वा ऽअखनँ स्त्वामिन्न्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिः ।। त्वामोषधे सोमो राजा व्विद्द्वान्न्यक्ष्मादमुच्च्यत ।। इति गन्धं क्षिपेत् ।। ४ ।। ॐ या ओषधीः पूर्व्वा जाता देवेब्भ्यस्त्रियुगं पुरा ।। मनैनु बब्भ्रूणामहठं शतं धामानि सप्त च ।। इति सर्वौषधीः ।। ५ ।। ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्प्परि ।। एवा नो दूर्व्वे प्प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।। इति दूर्वाङ्कुरान् ।। ६ ।। ॐ अश्श्वत्त्थे वो निषदनं पर्ण्णे वो व्वसतिष्कृता ।। गोभाज ऽइत्किलासथयत्त्सनवथ पूरुषम् ।। इति पञ्चपल्लवान् ।। ततः पवित्रं पवित्रेस्थ इति मंत्रेण कलशे क्षिपेत् ।। ७ ।। ॐ स्योना पृथिवि नो भवान्नृक्षरा निवेशनी ।। यच्छा नः शर्म्म सप्प्रथाः ।। इति सप्तमृदः ।। ८ ।। ॐ याः फलिनीर्या ऽअफला अपुष्ष्पा ऽयाश्च्च पुष्ष्पणीः ।। बृहस्प्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वठं हसः ।। इति पूगीफलम् ।। ९ ।। ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्व्यान्न्यक्क्रमीत् ।। दधद्द्रत्त्नानि दाशुषे ।। इति पञ्चरत्नानि ।। १० ।। हिरण्ण्यगर्ब्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।। स

दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमां कस्म्मै देवाय हविषा व्विधेम ।। इति हिरण्यम् ।। ११ ।। सुजातो ज्ज्योतिषा सह शर्म्म व्वरूथमासदत्स्वः ।। व्वासो ऽग्ग्ने व्विश्श्वरूपठं संव्व्ययस्व व्विभावसो ।। इति युग्मवस्त्रेण कलशं वेष्टयेत् ।। १२ ।। ॐ पूर्ण्णा दर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत ।। व्वस्न्नेव व्विक्क्रीणावहा इषमूर्ज्जठं शतक्क्रतो ।। इति पूर्णपात्रमुपरि न्यसेत् ।। १३ ।। याः फलिनीरिति मन्त्रेण कलशोपरि नारिकेलफलं संस्थाप्य । ॐ तत्त्वा यामि ब्ब्रह्मणा व्वन्न्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः ।। अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशठं समान ऽआयुः प्रमोषीः ।। इति ।। १४ ।।

अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि ।। ॐ अपां पतये वरुणाय नमः । इति पञ्चोपचारैर्वरुणं सम्पूज्य ।। ततो गङ्गाद्यावाहनम् ।।

कलाकला हि देवानां दानवानां कलाकलाः ।
सङ्गृह्य निर्मितो यस्मात् कलशस्तेन कथ्यते ।। १ ।।
कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ।। २ ।।
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
अर्जुनी गोमती चैव चन्द्रभागा सरस्वती ।। ३ ।।

कावेरी कृष्णवेणा च गङ्गा चैव महानदी ।
तापी गोदावरी चैव माहेन्द्री नर्मदा तथा ।। ४ ।।

नदाश्च विविधा जाता नद्याः सर्वास्तथापराः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशस्थानि तानि वै ।। ५ ।।

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ।। ६ ।।

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदों ह्यथर्वणः ।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥७॥
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥८॥

यजमानः स्वहस्ते अक्षतान् गृहीत्वा—

ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्य्यंज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं य्यज्ञठं समिमन्दधातु ॥ व्विश्श्वेदेवास ऽइह मादयन्तामो३ प्रतिष्ठ ॥

कलशे वरुणाद्यावाहितदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु ॥ ॐ वरुणाद्यावाहितदेवताभ्यो नमः, विष्णवाद्यावाहितदेवताभ्यो नम इति वा ॥ आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि ॥ पादयोः पाद्यं समर्पयामि ॥ हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि ॥ आचमनं समर्पयामि ॥ पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि । शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । स्नानाङ्गाचमनं समर्पयामि ॥ वस्त्रं समर्पयामि ॥ आचमनं समर्पयामि ॥ यज्ञोपवीतं समर्पयामि ॥ आचमनं समर्पयामि ॥ उपवस्त्रं समर्पयामि ॥ आचमनं समर्पयामि ॥ गन्धं समर्पयामि ॥ अक्षतान् समर्पयामि ॥ पुष्पमालां समर्पयामि ॥ नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि ॥ धूपं आघ्रापयामि ॥ दीपं दर्शयामि ॥ हस्तप्रक्षालनम् ॥ नैवेद्यं समर्पयामि ॥ आचमनीयं समर्पयामि ॥ मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं समर्पयामि ॥ ताम्बूलं समर्पयामि ॥ पूगीफलं समर्पयामि ॥ कृतायाः पूजायाः षाड्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि ॥ आर्तिक्यं समर्पयामि ॥ मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ॥ प्रदक्षिणां समर्पयामि ॥ अनया पूजया वरुणाद्यावाहितदेवताः प्रीयन्तां न मम ॥

अथ प्रार्थना—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥१॥

त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिता ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥२॥

शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥३॥

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ।
सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥४॥

नमो नमस्ते स्फटिकप्रभाय सुश्वेतहाराय सुमङ्गलाय ।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥५॥

पाशपाणे नमस्तुभ्यं पद्मिनीजीवनायक ।
पुण्याहवाचनं यावत्तावत्त्वं सन्निधो भव ॥६॥

इति कलशप्रार्थना ।

अथ पुण्याहवाचनम्—

अवनिकृतजानुमण्डलः कमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधायाऽनन्तरं दक्षिणेन पाणिना स्वर्णपूर्णकलशं धारयित्वा आशिषः प्रार्थयेत् ॥ ७ ॥

यजमानः—दीर्घा नागा नद्यो गिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च ।
तेनाऽऽयुःप्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु ॥

विप्राः—अस्तु दीर्घमायुः ॥

ॐ त्त्रीणि पदा व्विचक्क्रमे व्विष्ण्णुर्ग्गोपा ऽअदाब्भ्यः ॥ अतो धर्म्माणि धारयन् ॥ १ ॥

तेनायुःप्रमाणेन पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु, इति यजमानः ॥२॥ पुण्यं पुण्याहं दीर्घमायुरस्त्विति द्विजाः ॥ एवं द्विरपरं शिरसि

भूमौ निधाय ।। यजमानः ब्राह्मणानां हस्ते ॐ शिवा आपः सन्तु, इति जलं दद्यात् ।। सन्तु शिवा आप इति ब्राह्मणाः ।। एवं सर्वत्र वचनोत्तरं दद्युः ।।३।। यजमानः —सौमनस्यमस्तु, इति पुष्पं दद्यात् । विप्राः—अस्तु सौमनस्यम् ।। यजमानः—अक्षतं चारिष्टं चास्तु, इत्यक्षतान् दद्यात् ।। विप्राः—अस्त्वक्षतमरिष्टञ्च ।। यजमानः— गन्धाः पान्तु, इति गन्धं दद्यात् ।। विप्राः—सुमङ्गल्यं चास्तु ।। यजमानः— अक्षताः पान्तु ।। विप्राः—आयुष्यमस्तु ।। यजमानः— पुष्पाणि पान्तु ।। विप्राः— सौश्रियमस्तु ।। यजमानः—सफलताम्बूलानि पान्तु ।। विप्राः-ऐश्वर्यमस्तु ।। यजमानः—दक्षिणाः पान्तु ।। विप्राः-बहु देयं चाऽस्तु ।। यजमानः—पुनरत्रापः पान्तु ।। विप्राः—स्वर्चितमस्तु ।। यजमानः— दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो वित्तं बहुपुत्रं बहुधनं चायुष्यं चास्तु ।। विप्राः—तथाऽस्तु ।।

भो ब्राह्मणाः मया क्रियमाणस्य गुरुमंडलार्चनाख्यस्य कर्मणः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु, इति यजमानः ।। ॐ पुण्याहं इति ब्राह्मणाः ।। ॐ अस्य कर्मणः पुण्याऽहं भवन्तो ब्रुवन्तु, इति यजमानः ।। पुण्याहं इति ब्राह्मणाः ।। एवं वचनं प्रतिवचनं च त्रिः पठित्वा ।।

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्न्तु मनसा धियः ।। पुनन्न्तु
व्विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ।।

पृथिव्यामुद्धृतायां तु यत्कल्याणं पुरा कृतम् ।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुवन्तु नः ।।

भो ब्राह्मणाः मया क्रियमाणस्य गुरुमंडलार्चनाख्यस्य कर्मणः कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु ३ ।। ॐ कल्याणम् ३ ।।

ॐ यथेमां व्वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।। ब्रह्मराजन्न्याभ्याᳪ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च ।। प्प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृद्ध्यतामुप मादो

नमतु ॥ २ ॥

सागरस्य तु या ऋद्धिर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता ।
सम्पूर्णा सुप्रभावा च तामृद्धिं प्रब्रुवन्तु नः ॥

भो ब्राह्मणाः मया क्रियमाणस्य गुरुमंडलार्चनाख्यस्य कर्मणः ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु ३ ॥ ॐ कर्म ऋध्यताम् ३ ॥

ॐ सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽअभूम ॥ दिवं पृथिव्या ऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ३ ॥

भो ब्राह्मणाः मया क्रियमाणस्य गुरुमंडलार्चनाख्यस्य कर्मणः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ३ ॥ ॐ आयुष्मते स्वस्ति ३ ॥ अस्मै कर्मणे स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु, इति यजमानः ॥ आयुष्मते स्वस्ति ३ इति ब्राह्मणाः ॥

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो व्वृद्धश्श्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्श्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ४ ॥

भो ब्राह्मणः मया क्रियमाणस्य गुरुमंडलार्चनाख्यस्य कर्मणः श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ३ इति यजमानः ॥ ॐ अस्तु श्रीः ३, इति ब्राह्मणाः ॥

ॐ श्रीश्च्च ते लक्ष्मीश्च्च पत्न्यावहोरात्त्रे पाश्श्र्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्श्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुं म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ॥ ५ ॥

मृकण्डसूनोरायुर्यद्-ध्रुवलोमशयोस्तथा ।
आयुषा तेन संयुक्ता जीवेम शरदः शतम् ॥

इति यजमानः ॥ शतं जीवन्तु भवन्तः इति ब्राह्मणाः ॥१॥

ॐ शतमिन्नुशरदो ऽअन्ति देवा यत्त्रा नश्च्चक्क्रा जरसं तनूनाम् ॥ पुत्त्रासो यत्त्र पितरो भवन्न्ति मा नो मध्या रीरिषता-

युग्गंन्तोः ।।

शिवगौरीविवाहे या या श्रीरामे नृपात्मजे ।
धनदस्य गृहे या श्रीरस्माकं साऽस्तु सद्मनि ।।

इति यजमानः ।। ॐ अस्तु श्रीः, इति ब्राह्मणाः ।। १ ।।

ॐ मनसः काममाकूतिं व्वाचः सत्यमशीय ।। पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।।

प्रजापतिर्लोकपालो धाता ब्रह्मा च देवराट् ।
भगवाञ्छाश्वतो नित्यं नो वै रक्षन्तु सर्वतः ।।
ॐ भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् ।। १ ।।

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्न्यन्न्यो व्विश्श्वा रूपाणि परि ता बभूव ।। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्त्वयममुष्य पितासावस्य पिता व्वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा ।।

आयुष्मते स्वस्तिमते यजमानाय दाशुषे ।
श्रिये दत्ताशिषः सन्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ।।

इति यजमानः ।। ॐ आयुष्मते स्वस्ति, इति ब्राह्मणाः ।।१।।

ॐ प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।। येन व्विश्श्वाः परि द्विषो व्वृणक्ति व्विन्दते व्वसु ।।

ॐ स्वस्तिवाचनसमृद्धिरस्तु ।। कृतस्य स्वस्तिवाचनकर्मणः समृद्ध्यर्थं स्वस्तिवाचकेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इमां दक्षिणां विभज्य दातुमहमुत्सृजे ।।

* अथ मातृका-पूजनम् *

अथाऽऽग्नेय्यां प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु वा प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा पीठोपरि मातृस्थापनम् । तद्यथा—

समीपे मातृवर्गस्य सर्वविघ्नहरं सदा ।
त्रैलोक्यवन्दितं देवं गणेशं स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ गणानां त्वा गणपतिठँ हवामहे प्प्रियाणां त्वा प्प्रियपतिठँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिठँ हवामहे व्वसो मम ॥ आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् ।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि ॥१॥

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम् ।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमोदसदन्मातरम्पुरः ॥ पितरञ्च प्प्रयन्त्स्वः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि ॥२॥

पद्माभां पद्मवदनां पद्मनाभोरुसंस्थिताम् ।
जगत्प्रियां पद्मवासां पद्मामावाहयाम्यहम् ।

ॐ हिरण्यरूपा ऽउषसो व्विरोक ऽउभाविन्द्रा ऽउदिथः सूर्य्यश्च ॥ आरोहतं व्वरुण मित्त्र गर्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिञ्च मित्त्रोऽसि व्वरुणोऽसि ॥

ॐ पद्मायै नमः पद्मामावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

दिव्यरूपां विशालाक्षीं शुचिकुण्डलधारिणीम् ।
रक्तमुक्ताद्यलङ्कारां शचीमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ निवेशनः सङ्गमनो व्वसूनां व्विश्श्वा रूपाभिचष्ट्टे शचीभिः ॥ देव ऽइव सविता सत्यधर्म्मेन्द्रो न तस्त्थौ समरे पथीनाम् ॥

ॐ शच्यै नमः शचीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

विश्वेऽस्मिन् भूरिवरदां जरां निर्जरसेविताम् ।
बुद्धिप्रबोधिनीं सौम्यां मेधामावाहयाम्यहम् ॥

ॐ मेधाम्मे व्वरुणो ददातु मेधामग्निः प्प्रजापतिः ॥ मेधामिन्द्रश्श्च व्वायुश्श्च मेधान्धाता ददातु मे स्वाहा ॥

ॐ मेधायै नमः मेधामावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

जगत्सृष्टिकरीं धात्रीं देवीं प्रणवमातृकाम् ।
वेदगर्भां यज्ञमयीं सावित्रीं स्थापयाम्यहम् ॥

ॐ सविता त्त्वा सवानाꣳ सुवतामग्निर्ग्गृहपतीनाꣳ सोमो व्वनस्प्पतीनाम् ॥ बृहस्पतिर्व्वाचि ऽइन्द्रो ज्ज्यैष्ठ्याय रुद्द्रः पशुब्भ्यो मित्त्रः सत्यो व्वरुणो धर्म्मपतीनाम् ॥

ॐ सावित्र्यै नमः सावित्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ६ ॥

सर्वास्त्राधारिणीं देवीं सर्वाभरणभूषिताम् ।
सर्वदेवस्तुतां वन्द्यां विजयां स्थापयाम्यहम् ॥

ॐ व्विज्ज्यन्धनुः कपर्दिनो व्विशल्यो बाणवाँ२ उत ॥ अनेशन्नस्य या ऽइषव ऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥

ॐ विजयायै नमः विजयामावाहयामि स्थापयामि ॥७॥

सुरारिमथिनीं देवीं देवानामभयप्रदाम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां शुभ्रां जयामावाहयाम्यहम् ॥

ॐ बह्वीनाम्पिता बहुरस्य पुत्त्रश्शिचश्श्चाकृणोति समनावगत्य । इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्प्रसूतः ॥

ॐ जयायै नमः जयामावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥

मयूरवाहनां देवीं खड्गशक्तिधनुर्धराम् ।
आवाहयेद्देवसेनां तारकासुरमर्द्दिनीम् ॥

ॐ इन्द्र ऽआसान्नेता वृहस्पतिर्द्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु

सोमः ।। देवसेनानामभिभञ्जतीनाञ्जयन्तीनाम्मरुतो यन्त्वग्ग्रम् ।।

ॐ देवसेनायै नमः देवसेनामावाहयामि स्थापयामि ।। ९ ।।

अग्रजा सर्वदेवानां कव्यार्थं या प्रतिष्ठिता ।
पितृणां तृप्तिदां देवीं स्वधामावाहयाम्यहम् ।।

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।। अक्षन्निपतरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्न्त पितरः पितरः शुन्धद्ध्वम् ।।

ॐ स्वधायै नमः स्वधामावाहयामि स्थापयामि ।। १० ।।

हविर्गृहीत्वा सततं देवेभ्यो या प्रयच्छति ।
तां दिव्यरूपां वरदां स्वाहामावाहयाम्यहम् ।।

ॐ स्वाहा प्प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः ।। पृथिव्व्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा व्वायवे स्वाहा ।। दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा ।।

ॐ स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामि स्थापयामि ।।११।।

आवाहयाम्यहं मातॄः सकलाः लोकपूजिताः ।।
सर्वकल्याणरूपिण्यो वरदा दिव्यभूषणाः ।।

ॐ आपो ऽअस्मान्न्मातरः शुन्धयन्तु धृतेन नो घृतप्प्वः पुनन्तु ।। व्विश्श्वठं हि रिप्प्रम्प्रहवन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत ऽएमि ।। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्ग्माम्परिदधे भद्द्रं व्वर्णं पुष्ष्यन् ।।

ॐ मातृभ्यो नमः मातॄः आवाहयामि स्थापयामि ।।१२।।

आवाहयेल्लोकमातॄर्जयन्तीप्रमुखाः शुभाः ।
नानाऽभीष्टप्रदाः शान्ताः सर्वलोकहितावहाः ।।

ॐ रयिश्च्च मे रायश्च्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिश्च्च मे व्विभु च मे प्रभु च मे पूर्ण्णञ्च मे पूर्ण्णतरञ्च मे कुयवञ्च मेऽक्षितञ्च मेऽन्नञ्च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्प्पन्ताम् ।।

ॐ लोकमातृभ्यो नमः लोकमातृः आवाहयामि स्थापयामि ।। १३ ।।

सर्वहर्षकरीं देवीं भक्तामभयप्रदाम् ।
हर्षोत्फुल्लास्यकमलां धृतिमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्प्रजासु ।। यस्मान्न ऽऋते किञ्च न कर्म्म क्क्रियते तन्न्मे मनः शिवङ्कल्प्पमस्तु ।।

ॐ धृत्यै नमः धृतिमावाहयामि स्थापयामि ।। १४ ।।

पोषयन्तीं जगत्सर्वं स्वदेहप्रभवैर्न्नवैः ।
शाकैः फलैर्जलै रत्नैः पुष्टिमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ अङ्गान्यात्मन्न्भिषजा तदश्श्विनात्मानमङ्गैः समधात्त्सरस्वती ।। इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्च्चन्द्रेण ज्ज्योतिरमृतं दधानाः ।।

ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिमावाहयामि स्थापयामि ।। १५ ।।

देवैराराधितां देवीं सदा सन्तोषकारिणीम् ।
प्रसादसुमुखीं देवीं तुष्टिमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहातिवेदः ।
सनः पर्षदतिदुर्ग्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः ।।

ॐ तुष्ट्यै नमः तुष्टिमावाहयामि स्थापयामि ।। १६ ।।

पत्तने नगरे ग्रामे विपिने पर्वते गृहे ।
नानाजातिकुलेशानीं दुर्गामावाहयाम्यहम् ।।

ॐ प्राणाय स्वाहा ऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा ।। चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा व्वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ।।

ॐ आत्मनः कुलदेवतायै नमः आत्मनः कुलदेवतामावाहयामि स्थापयामि ।। १७ ।।

ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्प्पतिर्य्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं य्यज्ञꣳ समिमं दधातु ।। व्विश्श्वेदेवास ऽइह मादयन्तामोँ३ प्रतिष्ठ ।।

गौर्याद्याः कुलदेवतान्तमातरो गणपतिसहिताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ।।

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ।। १ ।।

धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिः आत्मनः कुलदेवताः ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ।। २ ।।

ॐ गणपत्यादिकुलदेवतान्तमातृभ्यो नमः इत्यभ्यर्चनम् ।।

❋ अथ वसोर्द्धारापूजनम् ❋

आग्नेय्यां भित्तौ कुङ्कुमादिना बिन्दुकरणेनालङ्करणं कृत्वाऽऽगामिमन्त्रं पठन् घृतेन सप्तधाराः प्राक्संस्था उदक्संस्था वा कुर्यात् ।।

व्वसोः पवित्त्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्त्रमसि सहस्रधारम् ।। देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्त्रेण शतधारेण सुप्वा ।। इति मन्त्रेण वसोर्द्धाराः कर्तव्याः ।। ॐ कामंधुक्षः इत्येतावता मन्त्रेण धारामर्धभागेन गुडेनैकीकरणम् । प्रतिधारामेकैकदेवतामावाहयेत् ।। ॐ मनसः काममाकूतिं व्वाचः सत्त्यमशीय ।। पशूनाꣳ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।। ॐ श्रियै नमः श्रियमावाहयामि स्थापयामि ।। १ ।। ॐ श्रीश्च ते

लक्ष्मीश्च्च पत्न्यावहोरात्त्रे पाश्श्र्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्श्विनौ व्यात्तम् ।। इष्ण्ण-न्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ।। ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीमावाहयामि स्थापयामि ।। २ ।। ॐ भद्द्रं कर्ण्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्द्रं पश्येमाक्षभिर्य्यजत्त्राः ।। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳪंसस्तनूभिर्व्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः ।। ॐ धृत्यै नमः धृतिमावाहयामि स्थापयामि ।।३।। ॐ मेधाम्मे व्वरुणो ददातु मेधामग्निः प्प्रजापतिः ।। मेधामिन्द्रश्श्च व्वायुश्श्च मेधान्धाता ददातु मे स्वाहा ।। ॐ मेधायै नमः मेधामावाहयामि स्थापयामि ।। ४ ।। ॐ प्राणाय स्वाहा अपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्त्राय स्वाहा व्वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ।। ॐ स्वाहायै नमः स्वाहामावाहयामि स्थापयामि ।। ५ ।। ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्क्रमीदसदन्न्मातरम्पुरः पितरञ्च प्प्रयन्त्स्वः ।। ॐ प्रज्ञायै नमः प्रज्ञामावाहयामि स्थापयामि ।। ६ ।। ॐ पावका नः सरस्वती व्वाजेभिर्व्वाजिनीवति यज्ञं व्वष्टुधियावसुः ।। ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ श्रीर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वती ।
माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः, इति मन्त्रेण वा ।।

ॐ वसोर्धारादेवताभ्यो नमः, इत्यावाह्य ।। ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं य्यज्ञᳪं समिमं दधातु व्विश्वेदेवा स इह मादयन्तामों३ प्रतिष्ठ ।। वसोर्द्धारादेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ।। सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।।

यदङ्गत्वेन भो देव्यः पूजिता विधिमार्गतः ।।
कुर्वन्तु कार्यमखिलं निर्विघ्नेन क्रतूद्भवम् ।
अनया पूजया वसोर्द्धारादेवताः प्रीयन्ताम् ।।

इति वसोर्द्धाराकरणम् ।

अथ साङ्कल्पिकेन विधिना [1]नान्दीश्राद्धप्रयोगः ।

सव्येन[2] सर्वं कार्यम् ।। ऋजवः एव कुशास्तिलस्थाने यवा दातव्याः ।। ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ।। ॐ मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ।। ॐ पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं वृद्धिः ।। ॐ मातामह-प्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः ।।

आसनदानम्—

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः, नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ।। ॐ मातृपितामहीप्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः, नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्त्यो भवन्त्यः तथा प्राप्नुवामः ।। ॐ पितृपितामहप्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः, नान्दीश्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ।। ॐ मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इमे आसने वो नमो नमः, नान्दी-

---

[1] टि०—भविष्यपुराणे—

"पिण्डनिर्वपणं कुर्य्यान्न वा कुर्य्यान्नराधिप ! वृद्धिश्राद्धे महाबाहो !
कुलधर्म्मानवेक्ष्य हि" ।।

[2] टि०—अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम् । अनाम्नामतिलाद्यैश्च
नान्दीश्राद्धं च सव्यवत् ।।

श्राद्धेक्षणौ क्रियेतां यथा प्राप्नुवन्तो भवन्तः तथा प्राप्नुवामः ॥

ततो गन्धादिदानम्—

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ ॐ मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ ॐ पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ ॐ मातामह-प्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं गन्धाद्यर्चनं स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ भोजननिष्क्रयदानम्[1] । ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ ॐ मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः । ॐ पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ॥ ॐ मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः इदं युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तामान्ननिष्क्रयभूतं द्रव्यममृतरूपेण स्वाहा सम्पद्यतां वृद्धिः ।

स-क्षीरयवमुदकदानम्—

सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् ॥ मातृपितामही-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः प्रीयन्ताम् ॥ पितृपितामह-

---

[1] टि०—नान्दीश्राद्धे अन्नाभावे आमं, आमाभावे हिरण्यं, हिरण्याभावे युग्मब्राह्मणभोजन-पर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतयथाशक्ति किञ्चिद् द्रव्यदानम् । इति धर्मसिन्धौ ॥

प्रपितामहाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् ।। मातामह-प्रमातामह वृद्ध-प्रमातामहाः :सपत्नीकाः नान्दीमुखाः प्रीयन्ताम् ।। शिवा आपः सन्तु, इति जलम् ।। सौमनस्यमस्तु इति पुष्पम् ।। अक्षतं चारिष्टञ्चाऽस्तु, इत्यक्षतान् ।। अघोराः पितरः सन्तु ।। इति पूर्वाग्रां जलधारां दद्यात् ।। इति समाचारः ।। केवलपाठमात्रम् ।। ततः कृताञ्जलिः प्रार्थयेत् ।। यजमानः— ॐ गोत्रन्नो वर्धतां दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तु अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ।। एताः सत्या आशिषः सन्तु ।। ब्राह्मणाः—सन्त्वेताः सत्या आशिष इति ।।

दक्षिणादानम् ।। ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दोश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षाऽऽमलक-यव-मूल[1]निष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।। ॐ मातृपितामही[2]-प्रपितामह्यः नान्दीमुख्यः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।। ॐ पितृपितामह-प्रपितामहाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।। ॐ मातामह प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः नान्दीमुखाः ॐ भूर्भुवः स्वः कृतस्य नान्दीश्राद्धस्य फलप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थं द्राक्षामलकयवमूलनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृजे ।।

---

[1] मुनक्का । आँवला । जौ । अदरखमूल—इत्यादि ।

[2] माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ।। पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।। मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः । एते भवन्तु सुप्रीताः प्रयच्छन्तु च मङ्गलम् ।।

ॐ उपास्म्मै गायता नरः पवमानायेन्न्दवे ।। अभि देवाँ २ इयक्षते ।। इडामग्ग्ने पुरुदꣳसꣳसनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।। स्यान्नः सूनुस्तनयो व्विजावाग्ग्ने सा ते सुमतिर्भूत्त्वस्मे ।। यजमानः—अनेन नान्दीश्राद्धं सम्पन्नम् ।। ब्राह्मणाः—सुसम्पन्नम् । व्वाजेवाजे इति विसृज्य ॐ व्वाजेवाजेऽवत व्वाजिनो नो धनेषु व्विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ।। अस्य मद्ध्वः पिबत मादयद्ध्व तृप्प्ता यात पथिभिर्द्देवयानैः ।। आ मा व्वाजस्येत्यनुवृज्य ।। ॐ आ मा व्वाजस्य प्प्रसवो जगम्म्या देमे द्यावापृथिवी व्विश्वरूपे ।। आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मः सोमोऽअमृतत्वेन गम्म्यात् ।।

विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति विसृज्य ।। यजमानः—मयाऽऽचरिते साङ्कल्पिकनान्दीश्राद्धे न्यूनातिरिक्तो यो विधिः स उपविष्टब्राह्मणानां वचनाच्छ्रीगणेशप्रसादात् परिपूर्णोऽस्तु । ब्राह्मणाः—अस्तु परिपूर्णः ।। इति नान्दीश्राद्धप्रयोगः ।।

आचार्यवरणम् ।

उदङ्मुखमाचार्यमुपवेश्य गन्धादिभिः सम्पूज्य ॐ अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकप्रवरान्वितः अमुकशर्माऽहं अमुकगोत्रोत्पन्नममुकप्रवरान्वितं शुक्लयजुर्वेदान्तर्गतवाजसनेयमाध्यन्दिनीयशाखाध्यायिनममुकशर्माणं ब्राह्मणमस्मिन् गुरुमंडलार्चनाख्ये कर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः आचार्यत्वेन त्वामहं वृणे, इति यजमानः ।। वृतोऽस्मि, इति विप्रप्रतिवचनम् ।।

यजमानः—आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन् आचार्यो भव सुव्रत ।।

ॐ व्व्रतेन दीक्षामाप्प्नोति दीक्षयाप्प्नोति दक्षिणाम् ।। दक्षिणा श्श्रद्धामाप्प्नोति श्श्रद्धया सत्त्यमाप्प्यते ।।

अथ यजमानः करसम्पुटं कृत्वा प्रार्थयेत् ।।

अस्मिन्कर्मणि ये विप्राः वृता गुरुमुखादयः ।
सावधानाः प्रकुर्वन्तु सर्वं कर्म यथोदितम् ॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया ।
सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम् ॥
यथाविहितं कर्म कुरु ॥ विप्रः—यथाज्ञानं करवाणि ॥

इत्याचार्यवरणम् ।

आचार्यः आचम्य प्राणानायम्य ॥ देशकालौ सङ्कीर्त्य अस्मिन् गुरुमंडलार्चनाख्ये कर्मणि यजमानेन वृतोऽहं आचार्यकर्म करिष्ये ॥ आचार्यो वामहस्ते गौरसर्षपान् गृहीत्वा दिग्रक्षणं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः ।

रक्षोहणं व्वलगहनं व्वैष्णवीमिदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्य्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं व्वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ १ ॥ रक्षोहणो वो व्वलगहनः प्प्रोक्षामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवनयामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणो वो व्वलगहनोऽवस्तृणामि व्वैष्णवान्त्रक्षोहणौ वां व्वलगहना ऽउपदधामि व्वैष्णवी रक्षोहणौ वां व्वलगहनौ पर्य्यूहामि व्वैष्णवी व्वैष्णवमसि व्वैष्णवाः स्थ ॥ २ ॥ रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाध ऽइदमहꣳ रक्षोऽधम तमो नयामि ॥ घृतेन द्यावापृथिवी प्प्रोर्णुवाथां व्वायो व्वेस्तोकानामग्निराज्ज्यस्य व्वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥ ३ ॥ रक्षोहा व्विश्वचर्ष्षणिरभि योनिमयोहते ॥ द्द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥ १ ॥

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ २ ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन शान्तिकर्म समारभे ॥ ३ ॥
भूतानि राक्षसा वाऽपि येऽत्र निष्ठन्ति केचन ।
ते सर्वेऽप्यपगच्छन्तु ग्रहयागं करोम्यहम् ॥ ४ ॥

इति तिष्ठन् पूर्वादिदिक्षु विकिरेत् । उदकोपस्पर्शः ।

ततो वास्तुपूजनम् ।

आचम्य प्राणानायम्य ॥ संकल्पः ॥ देशकालौ संकीर्त्य० अमुकगोत्रोहं अमुकशर्माहं सपत्नीकोऽहं सनवग्रहमखहवनात्मकगुरुमंडलार्चनकर्मणि मण्डपाङ्गवास्तुपूजनं करिष्ये ॥ ततो वास्तुमण्डलचतुष्कोणेषु आग्नेयादिप्रदक्षिणक्रमेण शंकुरोपणम् ॥

रोपणमन्त्रः—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।
मण्डपेऽत्राऽवतिष्ठन्ति आयुर्बलकराः सदा ॥

इति चतुर्विदिक्षु रोपयेत् ॥ शंकूनां पार्श्वे रोपणक्रमेण सदीपदधिमाषबलिं दद्यात् ॥ तद्यथा ॥

अग्निभ्योऽथ सर्पेभ्यो ये ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ इत्याग्नेयाम् ॥
नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ इति नैर्ऋत्याम् ॥
वायव्याधिपतिश्चैव वायव्यां ये च राक्षसाः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ इति वायव्याम् ॥
रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॥ इत्यैशान्याम् ॥

ततो वास्तुपीठे वस्त्रं प्रसार्य रजतपुटके कुंकुमं गृहीत्वा कनकशलाकया नव रेखा कार्या ।। प्रथमप्रागन्ता: ।। ॐ लक्ष्म्यै नमः ।। १ ।। ॐ यशोवत्यै नमः ।। २ ।। ॐ कान्तायै नमः ।।३।। ॐ सुप्रियायै नमः ।। ४ ।। ॐ विमलायै नमः ।। ५ ।। ॐ श्रियै नमः ।। ६ ।। ॐ सुभगायै नमः ।। ७ ।। ॐ सुमत्यै नमः ।। ८ ।। ॐ इडायै नमः ।। ९ ।। तत उदगन्ताः रेखाः कार्याः ।। ॐ धान्यायै नमः ।। १ ।। ॐ प्राणायै नमः ।। २ ।। ॐ विशालायै नमः ।। ३ ।। ॐ स्थिरायै नमः ।। ४ ।। ॐ भद्रायै नमः ।। ५ ।। ॐ जयायै नमः ।। ६ ।। ॐ निशायै नमः ।। ७ ।। ॐ विरजायै नमः ।। ८ ।। ॐ विभवायै नमः ।। ९ ।। इति रेखादेवता सम्पूज्य । ततः शिख्यादिवास्तुमण्डलदेवताः प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु पूगीफलेषु वा प्रतिष्ठापयेत्पूजयेच्च ।। तद्यथा ।। ईशानकोणदक्षिणार्द्धे वास्तुशिरसि शिखी रक्तः ।।

ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियं जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् ।। पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदंब्धः स्वस्तये ।। ॐ भूर्भुवः स्वः शिखिने नमः शिखिनमा० ।।१।।

तद्दक्षिणसार्द्धपदे दक्षिणनेत्रे पर्जन्यः पीतः ।।

ॐ शन्नो व्वातः पवताꣳ शन्नस्तपतु सूर्यः ।। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्यो ऽअभिवर्षतु ।। ॐ भू० पर्ज्जन्याय० पर्ज्जन्यं० ।।

तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणश्रोत्रे जयन्तं पीतम् ।।

ॐ मर्म्माणि ते व्वर्म्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजा मृते नानुवस्ताम् ।। उरोर्व्वरीयो व्वरुणस्ते कृणोतु जयन्तन्त्वानुदेवा मदन्तु ।।

ॐ भू० जयन्ताय नमः जयन्तं० ।। ३ ।।

तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणांसे कुलिशायुधं पीतम् ।।

ॐ महाँ२ ऽइन्द्रो य ऽओजसा पर्ज्जन्यो व्वृष्टिमाँ२ऽ इव ॥ स्तामैर्व्वत्सस्य व्वावृधे ॥ उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा ॥ ॐ भू० कुलिशायुधाय नमः कुलिशायुधं० ॥ ४ ॥

तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणबाहुं सूर्यं रक्तम् ॥

ॐ बण्महाँ२ ऽअसि सूर्य्य वडादित्य महाँ२ ऽअसि ॥ महस्ते सतो महिमा पनस्य तेद्धा देव महाँ२ असि ॥ ॐ भू० सूर्याय० सूर्यं० ॥ ५ ॥

तद्दक्षिणपदद्वये दक्षिणप्रवाहवे सत्यं श्वेतम् ॥

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ॐ भू० सत्याय० सत्यं० ॥ ६ ॥

तद्दक्षिणसार्द्धपदे दक्षिणकूर्परे भृशं कृष्णम् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देव हितं य्यदायुः ॥ ॐ भू० भृशाय नमः भृशं० ॥ ७ ॥

तद्दक्षिणाग्नेयपूर्वपदार्धे दक्षिणप्रवाहौ आकाशं कृष्णम् ॥

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत व्वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश ऽआदिशो व्विदिश ऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ ॐ भू० आकाशाय नमः आकाशं०॥८॥

तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिणप्रवाहौ वायुं धूम्रम् ॥

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरठँ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ॥ व्वायो ऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ भू० वायवे नमः वायुं० ॥ ९ ॥

तत्पश्चिमसार्द्धपदे दक्षिणमणिबन्धे पूषाणं रक्तम् ॥

ॐ पूषन्तव व्व्रते व्वयन्नरिष्ष्येम कदाचन ॥ स्तोतारस्त ऽइह स्म्मसि ॥ ॐ भू० पूष्णे नमः पूषाणं० ॥ १० ॥

तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणपार्श्वे वितथं श्वेतम् ॥

ॐ तत्सूर्य्यस्य देवत्वन्तन्महित्त्वम्मद्ध्या कर्त्तोर्व्विततठं सञ्जभार ॥ यदेदयुक्त हरितः सधस्त्थादाद्द्रात्री व्वासस्तनुते सिमस्म्मै ॥ ॐ भू० वितथाय नमः वितथमा० ॥ ११ ॥

तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणपार्श्वे गृहक्षतं पीतम् ॥

ॐ अक्षन्नमी मदन्त ह्यव प्रिया ऽअधूषत ॥ अस्तोषत स्वभानवो व्विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥ ॐ भू० गृहक्षताय नमः गृहक्षतमा० ॥ १२ ॥

तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणोरौ यमं कृष्णम् ॥

ॐ यमाय त्वांगिरस्वते पितृमते स्वाहा ॥ स्वाहा धर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे ॥ ॐ भू० यमाय० यमं० ॥ १३ ॥

तत्पश्चिमपदद्वये दक्षिणजानौ गन्धर्वं रक्तम् ॥

ॐ गन्धर्व्वस्त्वा व्विश्श्वा वसुः परिदधातु व्विश्श्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः ॥ इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो व्विश्श्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः ॥ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्म्मणा व्विश्श्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः ॥ ॐ भू० गन्धर्वाय नमः गन्धर्वमा० ॥ १४ ॥

तत्पश्चिमसार्द्धपदे दक्षिणजंघायां भृङ्गराजं कृष्णम् ॥

ॐ सौरी बलाका शार्ङ्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्श्वाविद्भौमी शार्दूलो व्वृकः पृदाकुस्ते मन्न्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ॐ भू० भृंगराजाय० भृंगराजं० ॥ १५ ॥

तत्पश्चिमनैर्ऋत्यपदार्धे दक्षिणस्फिचि मृगं पीतम् ॥

ॐ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था परस्याः ॥ सृकꣳ सꣳ शाय पविमिन्द्र तिग्मं व्विशत्रून्ताड्ढि व्विमृधो नुदस्व ॥ ॐ भू० मृगाय नमः मृगं० ॥ १६ ॥

तत्पश्चिमनैऋत्यपदार्धे पादयोः पितॄन् रक्तान् ॥

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ अक्षन्निपतरो मीमदन्त पितरो तीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ ॐ भू० पितृभ्यो नमः पितॄना० ॥ १७ ॥

तदुत्तरसार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकं रवतम् ॥

ॐ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्रचतिष्ठ ॥ नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ॐ भू० दौवारिकाय० दौवारिकमा० ॥ १८ ॥

तदुत्तरपदद्वये वामजंघायां सुग्रीवं श्वेतम् ॥

ॐ नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्द्रा ऽउपश्रिताः ॥ तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥ ॐ भू० सुग्रीवाय नमः सुग्रीवमा० ॥ १९ ॥

तदुत्तरपदद्वये वामजानुप्रदेशे पुष्पदन्तं रक्तम् ॥

ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्व्रातेभ्यो व्व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्विरूपेभ्यो व्विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ ॐ भू० पुष्पदन्ताय नमः पुष्पदन्तं० ॥ २० ॥

तदुत्तरपदद्वये वामोरौ वरुणं श्वेतम् ॥

ॐ इमम्मे व्वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ॥ त्वामवस्युराचके ॥ ॐ भू० वरुणाय० वरुणमा० ॥ २१ ॥

तदुत्तरपदद्वये वामपार्श्वे असुरं पीतम् ॥

ॐ ये रूपाणि प्प्रतिमुञ्चमाना ऽअसुराः सन्तः स्वधया

चरन्ति ।। परा पूरोनि पुरो ये भरन्त्यन्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ।। ॐ असुराय नमः असुरमा० ।। २२ ।।

तदुत्तरसार्द्धपदे वामपार्श्वे शेषं कृष्णम् ।।

या ऽइषवो यातुधाना नान्येवा ब्वनस्प्पती १ँ रनु ।। ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ।। ॐ भू० शेषाय नमः शेषमा० ।। २३ ।।

तदुत्तरवायव्यपदार्धे दाममणिबन्धे पापं पीतम् ।।

ॐ एतत्ते रुद्द्रा वसन्ते न परो मूजवतोतीहि ।। अवतत धन्न्वा पिनाका वसः कृत्तिवासा ऽअहिंठँ सन्नः शिवोतीहि ।। ॐ भू० पापाय नमः पापं० ।। २४ ।।

तत्प्राक् वायव्यपदार्द्धे वामप्रवाहौ रोगं रक्तम् ।।

ॐ द्रापे ऽअन्धसस्प्पते दरिद्र नीललोहित ।। आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्मा भेर्म्मा रोङ् मोचनः किञ्चनाममत् ।। ॐ भू० रोगाय० रोगं० ।। २५ ।।

तत्प्राक्सार्द्धपदे वामप्रवाहौ अहिर्बुध्न्यं रक्तम् ।।

ॐ नमोस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।। ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ।। ॐ भू० अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमा० ।। २६ ।।

तत्प्राक्पदद्वये वामकूर्परे मुख्यं रक्तम् ।।

ॐ अवतत्त्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।। निशीर्य्य शल्ल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव ।। ॐ मुख्याय नमः मुख्यं० ।। २७ ।।

तत्प्राक् पदद्वये वामबाहौ भल्लाटं कृष्णम् ।।

ॐ इमा रुद्द्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्वीराय प्प्रभरामहे मतीः ।। यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे व्विश्वम्पुष्टङ् ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम् ।। ॐ भू० भल्लाटाय नमः भल्लाटं० ।। २८ ।।

तत्प्राक्पदद्वये वामबाहौ सोमं श्वेतम् ॥

ॐ व्वयर्ठ० सोम व्व्रतेतव मनस्तनूषु विभ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ भू० सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ २९ ॥

तत्प्राक्पदद्वये वामांसे सर्पान् कृष्णान् ॥

ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ॥ ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ॐ भू० सर्पेभ्यो नमः सर्पाना० ॥ ३० ॥

तत्प्राक्सार्द्धपदे वामश्रोत्रे अदितिं पीतम् ॥

ॐ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्म्माता स पिता स पुत्रः ॥ व्विश्श्वे देवाऽअदितिः पञ्चजना ऽअदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्त्वम् ॥ ॐ भू० अदितये० अदितिमा० ॥ ३१ ॥

तात्प्रागर्द्धपदे वामनेत्रे दितिं पीतम् ॥

ॐ इड ऽएह्यदिति ऽएहि काम्या एत ॥ मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ ॐ भू० दितये नमः दितिमा० ॥ ३२ ॥

ईशानपदोत्तरार्द्धे शिखिपदादधः अपः श्वेतम् ॥

ॐ आपो ऽअस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ॥ व्विश्वर्ठ० हरिप्प्रम्प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरापूत ऽएमि ॥ ॐ भू० अद्भ्यो नमः अपः आवा० ॥ ३३ ॥

ततः ईशानपददक्षिणार्द्धे मुखे आपवत्सं श्वेतम् ॥

ॐ आ ते वत्सो मनोयमत्परमाच्चित्सधस्त्यात् ॥ अग्ने त्वां कामयागिरी ॥ ॐ भू० आपवत्साय नमः आपवत्सं० ॥३४॥

ततः पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तने अर्य्यमाणं कृष्णम् ॥

ॐ यदद्य सूर ऽउदिते नागा मित्रो ऽअर्य्यमा ॥ सुवाति सविता भगः ॥ ॐ भू० अर्य्यम्णे नमः अर्य्यमाणं० ॥ ३५ ॥

तद्दक्षिणाग्नेयपदार्द्धे दक्षिणहस्ते सावित्रं श्वेतम् ॥

ॐ उपयाम गृहीतोसि सावित्रो सिचनो धाश्च नो धा ऽअसि च नो मयि धेहि ।। जिन्व यज्ञञ्जिन्वं यज्ञपतिम्भगाय देवाय त्वा सवित्रे ।। ॐ भू० सावित्राय० सावित्रमा० ।। ३६ ।।

आग्नेयपदपश्चिमार्द्धे सवितरं रक्तम् ।।

ॐ व्विश्श्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।। यद्भद्रन्तन्न ऽआसुव ।। ॐ भू० सवित्रे नमः सवितारमा० ।।३७।।

तत्पश्चिमपदद्वये जठरं दक्षिणभागे विवस्वन्तं श्वेतम् ।।

ॐ व्विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्नमत्स्व ।। श्रदस्म्मै नरो व्वचसे दधातन यदाशीर्द्दा दम्पती व्वाममश्नुतः ।। पुमान्न पुत्रो जायते व्विन्दते व्वस्वधा व्विश्श्वाहारप ऽएधते गृहे ।। ॐ भू० विवस्वते नमः विवस्वन्तं० ।। ३८ ।।

तत्पश्चिमनैर्ऋत्यपदार्द्धे वृषणयोः विबुधाधिपं रक्तम् ।।

ॐ स वोधि सूरिर्म्मघवा व्वसुपते व्वसुदावन् ।। युयोद्ध्यस्मद्द्वेषाᳪसि व्विश्श्वकर्म्मणे स्वाहा ।। ॐ भू० विबुधाधिपाय नमः विबुधाधिपं० ।। ३९ ।।

तदुत्तरार्द्धे मेढ्रे जयन्तं श्वेतम् ।।

ॐ मर्म्माणि ते वर्म्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजा मृतेनानु वस्ताम् ।। उरोर्व्वरीयो व्वरुणस्ते कृणोतु जयन्तन्त्वानु देवा मदन्तु ।। ॐ भू० जयन्ताय नमः जयन्तं ।। ४० ।।

तदुत्तरपदद्वये जठरवामभागे मित्रं श्वेतम् ।।

ॐ तन्मित्रस्य व्वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपङ्कृणुते द्यौरुपस्त्थे ।। अनन्तमन्न्यद्द्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्न्यद्धरितः सम्भरन्ति ।। ॐ भू० मित्राय नमः मित्रं० ।। ४१ ।।

तदुत्तरवायव्यपदार्धे वामहस्ते राजयक्ष्माणं रक्तम् ।।

ॐ अभिगोत्राणि सहसा गाहमानो दयोव्वीरः शतमन्न्यु-

रिन्द्रः ।। दुश्श्च्यवनः पृतना षाड युद्ध्योऽस्म्माकꣳ सेना ऽअवतु प्प्रयुत्त्सु ।। ॐ भूः० राजयक्ष्मणे नमः राजयक्ष्माणं० ।। ४२ ।।

तत्पूर्वार्द्धे वामहस्ते रुद्रं रक्तम् ।।

ॐ नमस्ते रुद्द्र मन्न्यव ऽउतोत ऽइषवे नमः ।। बाहुभ्भ्यामुत ते नमः ।। ॐ भूः० रुद्राय नमः रुद्रं० ।। ४३ ।।

तत्पूर्वपदद्वये वामस्तने पृथिवीधरं रक्तम् ।।

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरानिवेशनी ।। यच्छानः शर्म्मं सप्रथाः ।। ॐ भूः० पृथिवीधराय नमः पृथिवीधरं० ।।४४।।

ततो मध्यपदचतुष्के हृदये नाभौ च ब्रह्माणं पीतं श्वेतं वा ।।

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः सबुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ।। ॐ भूः० ब्रह्मणे० ब्रह्माणं० ।। ४५ ।।

ततो मण्डलाद्बाह्ये ईशानादिकोणेषु चरक्या स्थापयेत् ।। ईशान्यां चरकीं धूम्रवर्णाम् ।।

ॐ ईशाव्वास्यमिदꣳ सर्व्वं य्यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। ॐ चरक्यै नमः चरकीमा० ।।१।।

आग्नेय्यां विदारीं रक्ताम् ।।

ॐ अक्षराजाय कितवङ् कृताया दिनवद्द्रर्शन्त्रेतायै कल्प्पनन्द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्मृत्यवे गोव्व्यच्छमन्तकाय गोघातङ् क्षुधे योगां व्विकृन्तन्तम्भिक्षमाण ऽउपतिष्ठति दुष्कृताय चरका चार्य्यम्पाप्मने सैलगम् ।। ॐ भूः० विदार्य्यै नमः विदारीमा० ।।

ततो नैर्ऋत्ये पूतनां पीताम् ।।

ॐ नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काटयाय च नीप्याय

च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च व्वैशन्ताय च ॥

ॐ भू० पूतनायै नमः पूतना० ॥ ३ ॥

ततो वायव्ये पापराक्षसीं कृष्णाम् ॥

ॐ यस्यास्ते घोर ऽआसञ्जुहोम्म्येषाम्बन्धानामव सर्ज्जनाय ॥ यान्त्वा जनो भूमिरिति प्प्रमंदते निर्ऋतिन्त्वाहम्परिवेद व्विश्श्वतः ॥ ॐ भू० पापराक्षस्यै नमः पापराक्षसीं ॥ ४ ॥

ततः पूर्वादिक्रमेण स्कन्दादीन् । पूर्वे स्कन्दं रक्तम् ॥

ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान ऽउद्यन्त्समुद्द्रादुत वा पुरीषात् ॥ श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यम्महिषा तन्ते ऽअर्व्वन् ॥ ॐ भू० स्कन्दाय नमः स्कन्दमा० ॥ १ ॥
ततो दक्षिणे अर्य्यमणे कृष्णम् ॥

ॐ यदद्य सूर ऽउदिते नागा मित्त्रो ऽअर्य्यमा ॥ सुवाति सविता भगः ॥ ॐ भू० अर्य्यमणे नमः अर्य्यमाणं ॥२॥

ततो पश्चिमे जृम्भकं रक्तम् ॥

ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहा क्क्रन्दाय स्वाहा स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्प्रप्पोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा ग्घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा बल्गते स्वाहा सोनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्ग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा व्विचृत्ताय स्वाहा सꣳहनाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्प्रायणाय स्वाहा ॥ ॐ भू० जृम्भकाय० जृम्भकं० ॥ ३ ॥

तत उत्तरे पिलिपिच्छं पीतम् ॥

ॐ कास्विदासीत्पूर्व्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद्बृहद्वयः ॥ कास्विदासीत्पिलिप्पिका स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ॐ भू० पिलि-

पिच्छाय० पिलिपिच्छं० ॥ ४ ॥

ततः पुनः मण्डलाद्वाह्ये प्रागादि दिक्षु विदिक्षु इन्द्रादिदशदिक्पालानावाहयेत् ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठँ हवे हवे सुहवठँ शूरमिन्द्रम् ॥ ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ॐ भू० इन्द्राय नमः इन्द्रं० ॥ १ ॥

आग्नेयाम् ॥ ॐ त्वन्नो ऽअग्ने तव देव पायुभिर्मघो नो रक्ष तन्न्ववन्द्य ॥ त्राता लोकस्य तनये गवामस्य निमिषठँ रक्षमाणस्तव व्व्रते ॥ ॐ भू० अग्नये० अग्निमा ॥ २ ॥

दक्षिणे ॥ ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे ॥ ॐ भू० यमाय नमः यममा० ॥३॥

नैर्ऋत्ये ॥ ॐ असुन्त्वन्तमयजमानमिच्छस्तेन स्येत्यामन्विहि तस्करस्य ॥ अन्न्यमस्म्मादिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ॐ भू० निर्ऋतये० निर्ऋतिमा० ॥ ४ ॥

पश्चिमे ॥ ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ॥ अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशठँ समान ऽआयुः प्प्रमोषीः ॥ ॐ भू० वरुणाय० वरुणमा० ॥ ५ ॥

वायव्ये ॥ ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरठँ सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् । व्वायो ऽअस्मिन्त्सवनमादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ॐ भू० वायवे० वायुमा० ॥ ६ ॥

उत्तरे ॥ ॐ व्वयठँ सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः ॥ प्प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ॐ भू० सोमाय० सोममा० ॥ ७ ॥

ईशान्याम् ॥ ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्त्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा व्वेद सामसद्वृधे रक्षिता

पायुरदब्धः स्वस्तये ।। ॐ भू० ईशानाय० ईशानं० ।। ८ ।। (इति अष्टलोकपालाः) ।।

ईशानेन्द्रमध्ये ।। ॐ अस्मे रुद्रा मेहनापर्व्वतासो व्वृत्रहत्त्ये भरहूतौ सजोषाः ।। यः शठँसते स्तुवते धायिपज्ज ऽइन्द्रज्येष्ठा ऽअस्माँ२ऽ अवन्तु देवाः ।। ॐ भू० ब्रह्मणे० ब्रह्माणं० ।। ९ ।।

निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ।। ॐ स्योना पृथिवि नो भवान्नृक्षरा निवेशनि ।। यच्छानः शर्म्मं सप्प्रथाः ।। ॐ भू० अनन्ताय० अनन्तमा० ।। १० ।। इति दशदिक्पालाः ।।

ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञठँ समिमन्दधातु ।। व्विश्वेदेवास ऽइह मादयन्तामो३ँ प्रतिष्ठ ।। ॐ भू० शिख्यादिवास्तुमण्डलस्थदेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ।। ॐ शिख्यादिवास्तुमण्डलस्थदेवताभ्यो नमः ।। इत्यभ्यर्चनम् ।। ततो मण्डलादीशान्यां उत्तरे वा ताम्रकलशमव्रणं सर्वलक्षणसंयुतं कलशस्थापनविधिना स्थापयेत् ।। तदा सुवर्णप्रतिमाया अग्न्युत्तारणम् ।। तद्यथा ।। देशकालौ संकीर्त्य गोत्रः शर्माहं अस्यां वास्तुमूर्त्तौ अवघातादिदोषपरिहारार्थं अग्न्युत्तारणं देवतासान्निध्यार्थं च प्राणप्रतिष्ठां करिष्ये ।। ततो मूर्त्तिं पात्रे निधाय घृतेनाभ्युक्ष्य तदुपरि दुग्धधारां च पातयेत् ।। तत्र मंत्राः ।।

ॐ समुद्द्रस्य त्वावकयाग्ग्नेपरि व्ययामसि ।। पावको ऽअस्म्यभ्यठँ शिवो भव ।। १ ।। ॐ हिमस्य त्वा जरायुणाग्ग्ने परिव्व्ययामसि ।। पावको ऽअस्मभ्यठँ शिवो भव ।। २ ।। ॐ उपज्ज्मन्नुप वेतसेवतर नदीष्वा ।। अग्ग्ने पित्तमपामसि मण्डकिताभिरागहिसेमन्नो यज्ञम्पावकवर्ण्णठँ शिवङ्कृधि ।। ३ ।। ॐ अपामिदन्न्ययनठँ समुद्द्रस्य निवेशनम् ।। अन्न्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यठँ शिवो भव ।। ४ ।। ॐ अग्ग्ने पावक-

रोचिषामन्द्रया देव जिह्वया ।। आदेवान्न्वक्षिपाक्षि च ।। ५ ।। ॐ स नः पावक दीदिवोग्ग्ने देवाँ२ इहावह ।। उप यज्ञठं हविश्च्च नः ।। ६ ।। ॐ पावकया यश्चितयन्त्यात्कृपाक्षामन्त्रुरुच ऽउषसो न भानुना ।। तूर्व्वन्नपामन्नेतशस्यनूरण आपो घृणेन त तृषाणो ऽअजरः ।। ७ ।। ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्त्वर्चिषे ।। अन्न्याँस्ते ऽअस्म्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यठं शिवो भव ।। ८ ।। नृषदेव्वे ऽप्सु यदेव्वेड्वर्हिषदेव्वेड्वनसदेव्वेस्वर्विदेव्वेट् ।।९।। ॐ ये देवा देवानां य्यज्ञिया यज्ञियानाᳪ संवत्सरीणमुपभागमासते ।। अहुतादोहविषो यज्ञे ऽअस्म्मिन्त्स्वयम्पिबन्तु मधुनो घृतस्य ।। १० ।। ॐ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमापन्न्ये ब्रह्मणः पुर ऽएतारो अस्य ।। येभ्यो न ऽऋतेपवते धाम किञ्चन न ते दिवो न ऽपृथिव्या ऽअधिस्न्नुषु ।। ११ ।। ॐ प्राणदा ऽअपानदा व्यानदा व्वर्च्चोदा व्वरिवोदाः ।। अन्न्याँस्ते ऽअस्म्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यठं शिवो भव ।। १२ ।। इत्यग्न्युत्तारणम् ।।

तदा सुवर्णप्रतिमां कलशोपरि स्थापयेत् पूजयेच्च ।।

अथ सर्वतोभद्रपूजनम् ।

ततः सर्वतोभद्रं रचियत्वा तत्र देवस्थापनं पूजनं च कृत्वा । ततः सर्वतोभद्रे कलशस्थापनविधिन कलशं संस्थाप्य कलशोपरि अग्न्युत्तारणपूर्वकप्रधानप्रतिमां संस्थाप्य विधिना पूजयेत् । तद्यथा ।।

प्रागुदीच्यां गता रेखा कुर्यादिकोनविंशतिः ।
खण्डेन्दुस्त्रिपदः श्वेतः पञ्चभिः कृष्णशृङ्खलाः ।। १ ।।
नीलैकादश वल्ली तु भद्रं रक्तपदैर्नव ।
चतुर्विंशत्सिता वापी परिधिः पीतविंशतिः ।। २ ।।
मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः रक्तं पद्मं सकर्णिकम् ।
परिध्यावेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः ।।

तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरेश्वरान् ।। इति सर्वतोभद्रकारिका ।।

अथ वेदोक्तसर्वतोभद्र-देवतास्थापनक्रमः ।।

तद्यथा ।। ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्द्वि सीमतः सुरु-

चोव्वेन ऽआवः ॥ स बुध्न्या ऽउपमा अस्य व्विष्ठ्ठाः सतश्च्च योनिमसतश्च्च व्विवः ॥ मध्ये कर्णिकायां ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः, ब्रह्माणमावाहयामि ॥ १ ॥

ॐ व्वयꣳ सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्भ्रतः ॥ प्रजावन्तः सचेमहि ॥ उत्तरे वाप्यां ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः, सोममावाहयामि ॥२॥

ॐ तमीशानं जगतस्तस्त्थुषस्प्पतिन्न्धियंजिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् ॥ पूषा नो यथा व्वेदसामसद्द्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ईशान्यां खण्डेन्दौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः, ईशानमावाहयामि ॥ ३ ॥

ॐ त्त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ॥ ह्वयामि शक्क्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्त्विन्द्रः ॥ पूर्वे वाप्यां ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः, इन्द्रमावाहयामि ॥ ४ ॥

ॐ त्वन्नो ऽअग्ने तव देव पायुभिर्म्मघोनो रक्ष तन्न्वश्च्च व्वन्द्य ॥ त्त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्व्रते ॥ आग्नेय्यां खण्डेन्दौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः, अग्निमावाहयामि ॥ ५ ॥

ॐ यमाय त्त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ॥ स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्त्रे ॥ दक्षिणे वाप्यां ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः, यममावाहयामि ॥ ६ ॥

ॐ असुन्न्वन्तमयजमानमिच्च्छ स्तेनस्येत्यामन्न्विहि तस्क्करस्य ॥ अन्न्यमस्म्मदिच्च्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुब्भ्य मस्तु ॥ नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः, निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ७ ॥

ॐ तत्त्वा यामि ब्ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः ॥ अहेडमानो व्वरुणेह वोद्ध्युरुशठँस मा न ऽआयुः प्प्रमोषीः ॥ पश्चिमे वाप्यां ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः, वरुणमावाहयामि ॥ ८ ॥

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरठँ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ॥ व्वायोऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ वायव्यां खण्डेन्दौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः, वायुमावाहयामि ॥ ९ ॥

ॐ व्वसुब्भ्यस्त्वा रुद्रेब्भ्यस्त्वाऽऽदित्येब्भ्यस्त्वा सञ्जानाथां द्यावापृथिवी मित्त्रावरुणौ त्वा व्वृष्ट्यावताम् ॥ व्यन्तु व्वयोक्तठँ रिहाणा मरुतां पृषतीर्ग्गच्छ व्वशा पृश्निर्ब्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो व्वृष्टिमावह ॥ चक्षुष्प्पा ऽअग्ग्नेऽसि चक्षुर्म्मे पाहि ॥ वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः, अष्टवसून् आवाहयामि ॥ १० ॥

ॐ नमस्ते रुद्द्र मन्न्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः ॥ बाहुब्भ्यामुत ते नमः ॥ सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः एकादशरुद्रेभ्यो नमः, एकादशरुद्रानावाहयामि ॥ ११ ॥

ॐ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्म्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ॥ आवोऽर्व्वाची सुमतिर्व्ववृत्त्यादठँ होश्चिद्या व्वरिवोवित्तरासत् ॥ ईशानेन्द्रमध्ये भद्रे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः द्वादशादित्येभ्यो नमः, द्वादशादित्यानावाहयामि ॥ १२ ॥

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्प्राणेन सरस्वती व्वीर्य्यम् ॥ व्वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ इन्द्राग्निमध्ये भद्रे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः, अश्विनौ आवाहयामि ॥ १३ ॥

ॐ विश्वेदेवास ऽआगत श्रृणुताम ऽइमठँ हवम् ।। एदं बर्हिर्न्निषीदत ।। उपयामगृहीतोऽसि व्विश्श्वेब्भ्यस्त्वा देवेब्भ्य ऽएष ते योनिर्व्विश्वेब्भ्यस्त्वा देवेब्भ्यः ।। अग्नियममध्ये भद्रे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, स-पैतृकविश्वान्देवानावाहयामि ।।

ॐ अभि त्वं देवठँ सवितारमोण्योः कविक्क्रतुमर्च्चामि सत्त्यसवठँरत्न्नधामभि प्प्रियं मतिङ्कविम् ।। ऊर्द्ध्वा यस्याऽमतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्क्रतुः कृपा स्वः ।। प्रजाब्भ्यस्त्वा प्प्रजास्त्वानुप्प्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्प्राणिहि ।। यमनिर्ऋतिमध्ये भद्रे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः सप्तयक्षेभ्यो नमः, सप्तयक्षानावाहयामि ।। १५ ।।

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेब्भ्यो ये के च्च पृथिवीमनु ।। ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेब्भ्यः सर्प्पेब्भ्यो नमः ।। निर्ऋतिवरुणमध्ये भद्रे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टकुलनागेभ्यो नमः, अप्टकुलनागानावाहयामि ।। १६ ।।

ॐ ऋताषाड्ऋतधामाग्निर्गन्धर्व्वस्तस्यौषधयोऽप्प्सरसो मुदो नाम ।। स न ऽइदं ब्ब्रह्म क्षत्त्रं पातु तस्म्मै स्वाहा व्वाट् ताब्भ्यः स्वाहा ।। वरुणवायुमध्ये भद्रे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः गन्धर्वाऽप्सरोभ्यो नमः, गन्धर्दाऽप्सरसः आवाहयामि ।। १७ ।।

ॐ यदक्क्रन्दः प्प्रथमं जायमान ऽउद्यन्त्समुद्द्रादुत वा पुरीषात् ।। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्त्यं महि जातं ते ऽअर्व्वन् ।। ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां लिङ्गे वा ।। ॐ भूः स्कन्दाय नमः, स्कन्दमावाहयामि ।। १८ ।।

ॐ आशुः शिशानो व्वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्च्चर्षणीनाम् ।। सङ्क्रन्दनो ऽनिमिष ऽएकवीरः शतठँ सेना ऽअजयत्त्साकमिन्द्रः ।। तदुत्तरे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः वृषभाय नमः,

वृषभमावाहयामि ।। १९ ।।

ॐ कार्षिरसि समुद्द्रस्य त्त्वाक्षित्त्या ऽउन्नयामि ।। समापो ऽअद्भिरग्ग्मत समोषधीभिरोषधीः ।। तदुत्तरे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः शूलाय नमः, शूलमावाहयामि ।। २० ।।

अनेनैव मंत्रेण तदुत्तरे ॐ भूर्भुवः स्वः महाकालाय नमः, महाकालमावाहयामि ।। २१ ।।

ॐ शुक्क्रज्ज्योतिश्च्च चित्त्रज्ज्योतिश्च्च सत्यज्ज्योतिश्च्च ज्ज्योतिष्ष्माँश्च्च ।। शुक्क्रश्च्च ऽऋतपाश्च्चात्यठँहाः ।। ब्रह्मेशानमध्ये शृङ्खलायाम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः दक्षादिसप्तगणेभ्यो नमः, दक्षादिसप्तगणानावाहयामि ।। २२ ।।

ॐ अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्च्चन ।। ससस्त्यश्श्वकः सुभद्द्रिकां काम्पीलवासिनीम् ।। ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्याम् लिङ्गे वा ।। ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गायै नमः, दुर्गामावाहयामि ।। २३ ।।

ॐ इदं व्विष्ष्णुर्व्विचक्क्रमे त्त्रेधा निदधे पदम् ।। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ।। तत्पूर्वे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः विष्ष्णवे नमः, विष्ष्णुमावाहयामि ।। २४ ।।

पितृब्भ्यः स्वधायिब्भ्यः स्वधानमः पितामहेब्भ्यः स्वधायिब्भ्यः स्वधा नमः प्प्रपितामहेब्भ्यः स्वधायिब्भ्यः स्वधा नमः ।। अक्षन्न्पितरोऽमीमदन्न्त पितरो ऽतीतृप्पन्न्त पितरः पितरः शुन्धद्द्ध्वम् ।। ब्रह्माग्निमध्ये शृंखलायाम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वधायै नमः, स्वधामावाहयामि ।। २५ ।।

ॐ परं मृत्यो ऽअनु परेहि पन्न्थां य्यस्ते ऽअन्न्य इतरो देवयानात् ।। चक्षुष्ष्मते शृण्वते ते ब्ब्रवीमि मा नः प्प्रजाꣳरी-

रिषो मोत व्वीरान् ।। ब्रह्मयममध्ये वाप्यां लिङ्गे वा ।। ॐ मृत्युरोगेभ्यो नमः, मृत्युरोगानावाहयामि ।। २६ ।।

ॐ गणानां त्वा गणपतिठँ हवामहे प्प्रियाणां त्वा प्रियपतिठँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिठँ हवामहे व्वसो मम ।। आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् ।। १ ।। ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये श्रृङ्खलायाम् ।। ॐ गणपतये नमः, गणपतिमावाहयामि ।। २७ ।।

ॐ अप्प्स्वग्ग्ने सधिष्ष्ट्व सौषधीरनु रुध्यसे ।। गर्ब्भे सञ्जायसे पुनः ।। ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्यां लिङ्गे वा ।। ॐ अद्भ्यो नमः, अपः आवाहयामि ।। २८ ।।

ॐ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो व्विमहसः ।। स सुगोपातमो जनः ।। ब्रह्मवायुमध्ये श्रृंखलायाम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः मरुद्भ्यो नमः, मरुतः आवाहयामि ।। २९ ।।

ॐ स्योना पृथिवि नो भवान्नृक्षरा निवेशनी ।। यच्छा नः शर्म्म सप्प्रथाः ।। ब्रह्मणः पादमूले ।। ॐ भूर्भुवः स्वः पृथिव्यै नमः ।। पृथ्वीमावाहयामि ।। ३० ।।

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ।। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे ऽभवत्सरित् ।। तदुत्तरे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः गङ्गादिनदीभ्यो नमः, गङ्गादिनदीनावाहयामि ।। ३१ ।।

ॐ समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्म्मयोभूरभि मा व्वाहि स्वाहा । मारुतोऽस मरुतां गणः शम्भूर्म्मयोभूरभि मा व्वाहि स्वाहा । अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्म्मयोभूरभि मा व्वाहि स्वाहा ।। तदुत्तरे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः सप्तसागरेभ्यो नमः, सप्तसागरानावाहयामि ।। ३२ ।।

ॐ प्र पर्व्वतस्य व्वृषभस्य पृष्ठ्ठान्नावश्च्चरन्ति स्वसिच ऽइयानाः ॥ ता ऽआववृत्रन्नधरागुदक्ता अहिर्ब्बुध्न्यमनु रीयमाणाः । व्विष्ण्णोर्व्विक्क्रमणमसि व्विष्ण्णोर्व्विक्क्रान्तमसि व्विष्ण्णोः क्क्रान्तमसि ॥ कर्णिकापरिधौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः मेरवे नमः, मेरुमावाहयामि ॥ ३३ ॥

अथ सोमादिक्रमेण ॥ ॐ गणानां त्वा० ॥ सत्त्वबाह्यपरिधौ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः गदायै नमः ॥ गदामावाहयामि ॥३४॥

ॐ त्रिꣳशद्धाम व्विराजति व्वाक्क् पतङ्गाय धीयते ॥ प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ईशान्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः त्रिशूलाय नमः, त्रिशूलमावाहयामि ॥ ३५ ॥

ॐ महाँ२ इन्द्रो व्वज्रहस्तः षोडशा शर्म्म यच्छतु ॥ हन्तु पाप्मानं योऽस्मान्द्द्वेष्टि ॥ उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा ॥ पूर्वे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वज्राय नमः, वज्रमावाहयामि ॥ ३६ ॥

ॐ व्वसु च मे व्वसतिश्श्च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्याच मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥ आग्नेय्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः शक्तये नमः, शक्तिमावाहयामि ॥ ३७ ॥

ॐ इड ऽएह्यदित ऽएहि काम्म्य ऽएत ॥ मयि वः कामधरणं भूयात् ॥ दक्षिणे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः दण्डाय नमः, दण्डमावाहयामि ॥ ३८ ॥

ॐ खड्गो व्वैश्श्वदेवः श्श्वा कृष्ण्णः कर्ण्णो गर्द्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्श्वेषा देवानां पृषतः ॥ नैर्ऋत्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः खड्गाय नमः, खड्गमावाहयामि ॥ ३९ ॥

ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्म्मदवाधमं व्वि मध्यमꣳ श्रथाय ।। अथा व्वयमादित्य व्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम ।। पश्चिमे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः पाशाय नमः, पाशमावाहयामि ।। ४० ।।

ॐ अꣳशुश्च्च मे रश्म्मिश्च्च मेऽदाभ्यश्च्च मेऽधिपतिश्च्च मऽउपाꣳशुश्च्च मेऽन्न्तर्य्यामश्च्च मऽऐन्द्रवायवश्च्च मे मैत्त्रावरुणश्श्च मऽआश्श्विनश्श्च मे प्प्रतिप्प्रस्थानश्श्च मे शुक्क्रश्श्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्प्पन्न्ताम् ।। वायव्याम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः अङ्कुशाय नमः, अङ्कुशमावाहयामि ।। ४१ ।।

ॐ आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्न्मातरं पुरः ।। पितरञ्च प्प्रयन्त्स्वः ।। तद्वाह्ये उत्तरे रक्तपरिधौ सोमादिस्थापनम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः गौतमाय नमः, गौतममावाहयामि ।। ४२ ।।

ॐ अयं दक्षिणा व्विश्श्वकर्म्मा तस्य मनो व्वैश्श्वकर्म्मणं ग्रीष्म्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳस्वारादन्तर्य्यामोन्तर्य्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद्बृहद्भरद्वाज ऽऋषिः प्प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ।। ईशान्याम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः भरद्वाजाय नमः, भरद्वाजमावाहयामि ।। ४३ ।।

ॐ इदमुत्तरात्स्वतस्य श्श्रोत्त्रꣳसौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिन ऽएकविꣳश ऽएकविꣳशाद्वैराजं व्विश्श्वामित्र ऽऋषिः प्प्रजापतिगृहीतया त्वया श्श्रोत्रं गृह्णामि प्प्रजाभ्यः ।। पूर्वे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वामित्राय नमः, विश्त्रामित्रमावाहयामि ।। ४४ ।।

ॐ त्र्यायुषं ज्जमदग्ग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।। आग्नेय्याम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः कश्यपाय नमः, कश्यपमावाहयामि ।। ४५ ।।

ॐ अयं पश्श्चाद्द्विश्श्वव्व्यचास्तस्य चक्षुर्व्वैश्श्वव्व्यचसं व्वर्षाश्चाक्षुष्ष्यो जगती व्वार्षी जगत्या ऽऋक्क्समम्मृक्क्समाच्छुक्रः शुक्क्रात्सप्प्तदशः सप्प्तदशाद्द्वैरूपं ज्जमदग्ग्निर्ऋषिः प्प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्ग्गृह्णामि प्प्रजाब्भ्यः ॥ दक्षिणे ॥ ॐ भूर्भुवः स्त्रः जमदग्नये नमः, जमदग्निमावाहयामि ॥ ४६ ॥

ॐ अयं पुरो भुवस्तस्य प्प्राणो भौवायनो व्वसन्तः प्प्राणायनो गायत्त्री व्वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्त्रादुपाꣳ शुरुपाꣳ शोस्त्रिवृत्त्रिवृतो रथन्तरं व्वसिष्ठ ऽऋषिः प्प्रजापतिगृहीतया त्वया प्प्राणं गृह्णामि प्प्रजाब्भ्यः ॥ नैर्ऋत्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः वसिष्ठाय नमः, वसिष्ठमावाहयामि ॥ ४७ ॥

ॐ अत्त्र पितरो मादयद्द्ध्वं य्यथाभागमावृषायद्ध्वम् ॥ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ पश्चिमे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अत्रये नमः, अत्रिमावाहयामि ॥ ४८ ॥

ॐ तं पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्त्रैर्ब्भ्रातृभिरुत वा हिरण्ण्यैः ॥ नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽअधिरोचने दिवः ॥ वायव्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अरुन्धत्यै नमः, अरुन्धतीमावाहयामि ॥ ४९ ॥

तद्बाह्ये कृष्णपरिधौ पूर्वादिक्रमेण ॥ ॐ अदित्त्य रास्स्नासीन्द्राण्ण्या ऽउष्ष्णोषः ॥ पूषासि घर्म्माय दीष्ष्व ॥ पूर्वे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः ऐन्द्र्यै नमः ॥ ऐन्द्रीमावाहयामि ॥ ५० ॥

ॐ अम्बेऽअम्बिके० ॥ आग्नेय्याम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः कौमार्य्यै नमः, कौमारीमावाहयामि ॥ ५१ ॥

ॐ इन्द्रायाहि धियेषितो व्विप्रजूतः सुतावतः ॥ उप ब्ब्रह्म्माणि व्वाग्घतः ॥ दक्षिणे ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः ब्राह्म्यै नमः, ब्राह्मीमावाहयामि ॥ ५२ ॥

ॐ इन्द्रस्य क्क्रोडोऽदित्त्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्त्यै भसज्जीमूतान्न्हृदयौपशेनान्तरिक्ष पुरीतता नभ ऽउदर्य्येण चक्क्रवाकौ मतस्नाब्भ्यां दिवं व्वृक्काब्भ्यां गिरीन्न्प्लाशिभिरुपलान्न्प्लीन्न्हा व्वल्मीकान्न्क्लोमभिग्ग्लौभिग्गुल्म्मान्न्हिराभिः स्रवन्तोर्हृदान्न्कुक्षिब्भ्याꣳ समुद्द्रमुदरेण व्वैश्श्वानरं भस्स्मना ।। नैर्ऋत्याम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः वाराह्यै नमः, वाराहीमावाहयामि ।। ५३ ।।

ॐ अम्बे ऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्श्चन ।। ससस्त्यश्श्वकः सुभद्द्रिकां काम्पीलवासिनीम् ।। पश्चिमे ।। चामुण्डायै नमः, चामुण्डामावाहयामि ।। ५४ ।।

ॐ आप्प्यायस्व समेतु ते व्विश्श्वतः सोम व्वृष्ण्यम् ।। भवाव्वाजस्य सङ्गथे ।। वायव्ये ।। ॐ भूर्भुवः स्वः वैष्णव्यै नमः ।। वैष्णवीमावाहयामि ।। ५५ ।।

ॐ या ते रुद्द्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनो ।। तया नस्तन्न्वा शन्न्तमया गिरिशन्न्ताभिचाकशीहि ।। उत्तरे ।। ॐ भूर्भुवः स्वः माहेश्वर्य्यै नमः ।। माहेश्वरीमावाहयामि ।। ५६ ।।

ॐ समक्ख्ये देव्व्या धिया सन्दक्षिणयोरुचक्षसा ।। मा म आयुः प्प्रमोषीर्म्मो ऽअहं तव व्वीरं व्विदेय तव देवि सन्दृशि ।। ईशान्याम् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः वैनायक्यै नमः ।। वैनायकीमावाहयामि ।। ५७ ।।

इति सर्वतोभद्रदेवतास्थापनक्रमः ।

—:o:—

* अथ श्रीशालग्राम-पूजनम् *

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।। स भूमिꣳ सर्वतस्स्पृत्वात्त्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।। शालग्राममावाहयामि ।।

ॐ पुरुष एवेदꣳ सर्व्वं य्यद्भूतं य्यच्च भाव्यम् ।। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।। आसनं समर्पयामि ।।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च्च पूरुषः ।। पादोऽस्य विश्श्वा भूतानि त्त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। पाद्यं समर्पयामि ।।

ॐ त्रिपादूर्द्ध्व ऽउदैत्पुरुषः पादो स्येहाभवत्पुनः ।। ततो व्विष्वङ् व्यक्क्रामत्साशनानशने ऽअभि ।। अर्घ्यं समर्पयामि ।।

ॐ ततो व्विराडजायत व्विराजो ऽअधि पूरुषः ।। स जातो ऽअत्यरिच्च्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।। आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्ज्यम् ।। पशूँस्ताँश्चक्क्रे वायव्यानारण्ण्या ग्ग्राम्याश्च्च ये ।। स्नानं समर्पयामि ।।

ॐ पयः पृथिव्व्यां पय ऽओषधीषु पयो दिव्व्यन्तरिक्षे पयोधाः ।। पयस्वतीः प्प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।। दुग्धस्नानं समर्पयामि ।। पुनः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।।

ॐ दधिक्क्राव्णो ऽअकारिषं जिष्ष्णोरश्श्वस्य व्वाजिनः । सुरभि नो मुखाकरत्प्र ण ऽआयूꣳषि तारिषत् ।। दधिस्नानं समर्पयामि ।। पुनः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।।

ॐ घृतङ्घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः । पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।। घृत-स्नानं समर्पयामि ।। पुनः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।।

ॐ मधुव्वाता ऽऋतायते मधु क्षरन्न्ति सिन्धवः । माद्ध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः ।। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ।। मधुमान्नो व्वनस्प्पतिर्म्मधुमाँ ऽअस्तु सूर्य्यः । माद्ध्वीर्गावो भवन्तु नः ।। मधुस्नानं समर्पयामि ।। पुनः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।।

ॐ अपाꣳरसमुद्वयसठँसूर्ये सन्तठँ समाहितम् । अपाꣳ-

रसस्य यो रसस्तं व्वो गृह्णाम्म्युत्तममुपयाम गृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।। शर्करास्नानं समर्पयामि ।। पुनः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।।

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ।। पंचामृतस्नानं समर्पयामि ।।

कावेरी नर्मदा वेणी तुङ्गभद्रा सरस्वती ।
गङ्गा च यमुना चैव ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।।
गृहाण त्वं रमाकान्त स्नानार्थं श्रद्धया जलम् ।।
शुद्धोदक-स्नानं समर्पयामि ।।

ॐ तस्म्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि ।। आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।

ॐ तस्म्मादश्श्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्जाता ऽअजावयः ।। यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।। आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।

दधिमध्वाज्यसंयुक्तं पात्रयुग्मसमन्वितम् ।।
मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदो भव शोभन ।।
मधुपर्कं समर्पयामि ।। आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।

ॐ तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः । तेन देवा ऽअजयन्त साद्ध्या ऋषयश्च ये ।। गन्धं समर्पयामि ।।

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रिया ऽअधूषत ।। अस्तोषत स्वभानवो व्विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ।। अक्षतान् समर्पयामि ।।

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ।। पुष्पाणि समर्पयामि ।।

ॐ ओषधीः प्प्रतिमोदद्ध्वम्पुष्पवतीः प्रसूवरीः । अश्वा ऽइवसजित्त्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्णवः ।। पुष्पमालां समर्पयामि ।।

ॐ यत्पुरुषं व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्पयन् ।। मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा ऽउच्च्येते ।। १ ।। तुलसीपत्रं समर्पयामि ।।

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपाञ्च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ।। २ ।। तुलसीपत्रं समर्पयामि ।।

ॐ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।। ३ ।। तुलसी-पत्रं समर्पयामि ।।

तुलसी-बिल्व-निम्बैश्च जम्बीरैरामलैः शुभैः ।
पञ्चबिल्वमिति ख्यातं प्रसीद परमेश्वर ।।
बिल्वपत्राणि समर्पयामि ।।

विष्ण्वादिसर्वदेवानां दूर्वे त्वं प्रीतिदा सदा ।
क्षीरसागरसंभूते वंशवृद्धिकरी भव ।। दूर्वाङ्कुरान् समर्पयामि ।।

शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी ।।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ।। शमीपत्रं समर्पयामि ।।

ॐ रत्न-कङ्कण वैदूर्य-मुक्ता-हारादिकानि च ।।
सुप्रसन्नेन मनसा दत्तानि स्वीकुरुष्व भोः ।। आभूषणं समर्पयामि ।।

नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम् ।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धं चारु प्रगृह्यताम् ।। अबीरं समर्पयामि ।।

ॐ तैलानि च सुगन्धीनि द्रव्याणि विविधानि च।
मया दत्तानि लेपार्थं गृहाण परमेश्वर ॥
सुगन्धिततैलं समर्पयामि ॥

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो ऽअजायत ॥ १ ॥ धूपमाघ्रापयामि ॥

ॐ धूरसि धूर्व्व धूर्व्वन्तं धूर्व्वतं य्योऽस्म्मान् धूर्व्वति तं धूर्व्वयं व्वयं धूर्व्वामः। देवानामसि व्वह्नितमठं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमन्देवहूतमम् ॥ २ ॥ पुनः धूपमाघ्रापयामि ॥

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्श्चक्षोः सूर्य्यो ऽअजायत ॥ श्श्रोत्त्राद्वायुश्श्च प्प्राणश्श्च मुखादग्निरजायत ॥ दीपं दर्शयामि ॥ हस्तप्रक्षालनम् ॥

प्राणाय स्वाहा ॥ अपानाय स्वाहा ॥ व्यानाय स्वाहा ॥ उदानाय स्वाहा ॥ समानाय स्वाहा ॥

ॐ नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षठं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्द्दिशः श्श्रोत्त्रात्तथा लोकाँ२ ऽअकल्पयन् ॥ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ॥ व्वसन्तो स्यासीदाज्ज्यं ग्ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥ सप्प्तास्यासन्न्परिधयस्त्रिः सप्प्त समिधः कृताः ॥ देवा यद्यज्ञन्तन्न्वाना ऽअबध्नन्न्पुरुषम्पशुम् ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्न्यासन्। ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्त्र पूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥ अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च व्विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्ग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्ग्रे ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव व्विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था व्विद्यतेऽयनाय ॥

प्रज पतिश्चरति गर्भे ऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। यो देवेभ्य ऽआतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।। रुचं ब्राह्मञ्जनयन्तो देवा ऽअग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽअसन्वशे ।। श्रीश्च्च ते लक्ष्मीश्च्च पत्न्यावहोरात्त्रे पार्श्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्विनौ व्व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वंलोकम्म ऽइषाण ।। नैवेद्यं निवेदयामि ।।

एलोशीर-लवङ्गादि-कर्पूरपरिवासितम् ।।
प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर ।। मध्ये पानीयं समर्पयामि ।।

बीजपूराम्र-पनस-खर्जूरी-कदली फलम् ।
नारिकेलफलं दिव्यं गृहाण परमेश्वर ।। ऋतुफलान् समर्पयामि ।।

कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् ।
आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ।।

आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।

फलेन फलितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्मात् फलप्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।।

अखंडऋतुफलान् समर्पयामि ।।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ।।

ताम्बूलपूगीफलं समर्पयामि ।।

पूजाफलसमृद्ध्यर्थं दक्षिणा च तवाग्रतः ।
स्थापिता तेन मे प्रीतः पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।। दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि ।।

आर्त्तिक्यम् ।

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरन्तु प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ।।

विष्णु–स्तुतिः ।

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकांतं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ।। १ ।।
आदौ देवकिदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्द्धनम्
मायापूतनजीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनम्
एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ।। २ ।।
कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुं करे कङ्कणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः ।। ३ ।।
फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसप्रियम् ।
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसंघावृतम्
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ।। ४ ।।
आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनम्
द्यूतस्त्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालयावेधनम् ।
लीलागोहरणं रणे विचरणं सन्ध्याक्रियावर्धनम्
पश्चाद्भीष्मसुयोधनादि हननमेतन्महाभारतम् ।। ५ ।।

मत्स्याऽश्व–कच्छप–नृसिंहवराह–हंस–राजन्य–विप्र–विबुधेषु कृतावतारः ।। त्वं पालनस्त्रिभुवनश्च यथाधुनेश ! भारं भुवो हर यदूत्तम ! वन्दनं ते ।।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये ।।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना ।।७।।

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ।।८।।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।। ९ ।।

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ।। १० ।।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।। ११ ।।

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ।। १२ ।।

एकोऽपि कृष्णश्च कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।।१३।।

पुष्पाञ्जलिः ।।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।। ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे । स मे कामान् कामकामाय मह्यम् कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ।। ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यराज्यं महाराजमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी

स्यात् ।। सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति । (तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो) मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।। पुष्पांजलिं समर्पयामि ।। ॐ व्विश्वतश्चक्षुरुत व्विश्वतोमुखो व्विश्वतो बाहुरुत व्विश्श्वतस्पात् । सं बाहुभ्यान्धमति संपतत्रै द्द्यावाभूमी जययन्देव ऽएकः ।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् । करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत् ।।

प्रदक्षिणा ।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

क्षमा-प्रार्थना ।

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव ! परिपूर्णं तदस्तु मे ।।
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ।। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः ।।

—:०:—

अथ योगिनीपूजनम् ।

अथाऽऽग्नेय्यां वेद्यां योगिनीं पूजयेत् ।।

वेद्युपरि वस्त्रं प्रसार्य पूर्वापरायता दक्षिणोत्तरायताश्च नव रेखाः कार्याः ।। एवं कृते चतुःषष्ठिकोष्ठानि भवन्ति ।। तस्योपरि त्रीणि त्रिकोणानि कृत्वा त्रिषु त्रिकोणेषु क्रमेण दक्षिणत आरभ्योदगन्ता कलशं प्रतिष्ठाप्य तस्योपरि महाकालीं, महालक्ष्मीं, महासरस्वतीं च पूजयेत् । ततः चतुःषष्टिपदेषु प्रतिकोष्ठे चित्रविचित्रतण्डुलैः त्रिकोणं कृत्वा चतुःषष्टियोगिनीः प्रागन्ता उदगन्ता वा पूजयेत् ।। तद्यथा ।। आचम्य प्राणानायम्य ।। देशकालौ संकीर्त्य

गोत्रः शर्मा सपत्नीकोऽहम् अस्मिन् प्रतिष्ठाख्ये कर्मणि महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती—पूजनपूर्वक—दिव्यादि—चतुःषष्टियोगिनीनां स्थापनं पूजनं च करिष्ये ।। ततो योगिनीवेद्युपरि पूर्वतः उदगन्ता स्थापनविधिना त्रीन् कलशान् स्थापयेत् ।। तस्योपरि अग्न्युत्तारण-पूर्विकां स्वर्णमयीं महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीप्रतिमां स्थापयेत् ।। तत्र मन्त्राः ।।

ॐ अम्बेऽअम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्श्चन ।। स सत्यश्शबकः सुभद्द्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ।।

खड्गं चक्र-गदेषुचाप-परिघान् शूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः महाकाल्यै नमः, महाकालीमावाहयामि स्थापयामि ।। १ ।। तदुत्तरे ।।

ॐ श्रीश्च्च ते लक्ष्मीश्च्च पत्न्यावहोरात्त्रे पाश्श्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्श्विनौ व्यात्तम् ।। इष्ण्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ।।

अक्ष-स्रक्-परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शाक्तमसिञ्च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाश-सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः महालक्ष्म्यै नमः, महालक्ष्मीमावाहयामि स्थापयामि ।। २ ।। तदुत्तरे ।। ॐ पावका नः सरस्वती० ।।

घण्टा-शूल-हलानि शङ्ख-मुशले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महा
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः महासरस्वत्यै नमः, महासरस्वतीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ततः चतुःषष्टियोगिनीः प्रागन्ता वा आत्राहयेत् ॥ तत्राऽऽवाहनमन्त्राः ॥

ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्प्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् । पूषा नो यथा व्वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥

आवाहयामि तां देवीं दिव्यानाम्नेति विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय कोष्ठे चाद्यं प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दिव्ययोगिन्यै नमः, दिव्ययोगिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्ब्रह्मवर्च्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्न्यः शूर ऽइषव्व्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्य्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्च्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं महाशब्देति विश्रुताम् ।
सर्वसिद्धिप्रदां पूज्यां कोष्ठे चैव द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः महायोगिन्यै नमः, महायोगिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ महाँ२ ऽइन्द्रो व्वज्ज्रहस्तः षोडशी शर्म्म यच्छतु हन्तु पाप्मानं य्योऽस्म्मान्द्वेष्टि । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्म्महेन्द्राय त्वा ॥

आवाहयामि तां देवीं सिद्धिपूर्वेति विश्रुताम् ।
महासिद्धिकरां देवीं पूज्या कोष्ठे तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धियोगिन्यै नमः, सिद्धियोगिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥

आवाहयामि तां देवीं माहेश्वरीति वा स्वयम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठे चतुर्थके ॥

ॐ माहेश्वर्य्यै नमः, माहेश्वरीमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥

ॐ आदित्यं गर्भं पयसा समङ्‌धि सहस्रस्य प्प्रतिमां व्विश्वरूपम् । परिवृङ्‌धि हरसा माभिमँस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥

आवाहयामि तां देवीं प्रेताक्षी नाम विश्रुताम् ।
महाभयहरीं देवीं पूजयेत् पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रेताक्ष्यै नमः, प्रेताक्षीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

ॐ स्वर्णघर्म्मः स्वाहा स्वाहा स्वर्णार्क्कः स्वाहा स्वर्णशुक्क्रः स्वाहा स्वर्णज्जोतिः स्वाहा स्वर्णसूर्य्यः स्वाहा ॥

आवाहयामि तां देवीं डाकिनी नाम विश्रुताम् ॥
सर्वरोगहरां देवीं षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः डाकिन्यै नमः, डाकिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ६ ॥

ॐ सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं कालीं किल बलप्रदाम् ।
प्रसन्नां सर्वकाले च पूजयेत् सप्तमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः काल्यै नमः, कालीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥

ॐ भाये दार्व्वाहारं प्रभाया ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य व्विष्टपायाभिषेक्तारं व्वर्षिष्ठ्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्प्रकरितारं सर्व्वेभ्यो लोकेभ्य ऽउपसेक्तारमव ऽऋत्यै व्वधायो प्रमन्थितारं मेधाय व्वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥

आवाहयामि तां देवीं कालरात्रीति विश्रुताम् ।
सर्वदा सुखदां देवीं कोष्ठे वाऽष्टमिते तथा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कालरात्र्यै नमः, कालरात्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥ [इति प्रथमाष्टकपंक्तिः ।]

ॐ जिह्वा मे भद्द्रं व्वाङ्महो मनो मन्न्युः स्वराड् भामः । मोदाः प्प्रमोदा ऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्त्रं मे सहः ॥

आवाहयामि तां देवीं निशाकरीति विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूजयेत् प्रथमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः निशाकर्य्यै नमः, निशाकरीमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्क्रन्दाय स्वाहा प्प्रोथते स्वाहा प्प्रप्प्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा व्वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्ग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्प्रबुद्धाय स्वाहा व्विजृम्भमाणाय स्वाहा व्विचृताय स्वाहा । सꣳहानाय स्वाहोपस्त्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्प्रायणाय स्वाहा ॥

आवाहयामि तां देवीं हुङ्कारी नाम विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठे द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः हुङ्कार्य्यै नमः, हुङ्कारीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ अग्निश्च मे घर्म्मंश्च मेऽर्क्कंश्च मे सूर्य्यंश्च्च मे प्प्राणश्च्च मेऽश्श्वमेधश्च्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च्च मे दितिश्च मे द्यौश्च्च मे ऽङ्गुलयः शक्क्वरयो दिशश्च्च मे यज्ञन कल्प्पन्ताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं सिद्धिवैतालिकां शुभाम् ।
यज्ञसिद्धिकरां देवीं पूजयेत्तां तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिवैतालिकायै नमः, सिद्धिवैतालिकामावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ पूषन् तव व्व्रते व्वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्तऽइह स्म्मसि ॥

आवाहयामि तां देवीं ह्लींकारी नाम विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठे चतुर्थके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ह्लींकार्य्यै नमः, ह्लींकारीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ व्वेद्या व्वेदिः समाम्यते ब्बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ॥ यूपेन यूप ऽआप्याते प्प्रणीतो ऽअग्निरग्निना ॥

आवाहयामि तां देवीं नामतो भूतडामराम् ।
भूतरक्षाकरीं देवीं पूजयेत् पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भूतडामरायै नमः भूतडामरामावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

ॐ अयमग्निः सहस्रिणो व्वाजस्य शतिनस्प्पतिः । मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥

आवाहयामि तां देवीमूर्ध्वकेशीति विश्रुताम् ।
सर्वशत्रुविनाशाय षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ऊर्ध्वकेश्यै नमः, ऊर्ध्वकेशीमावाहयामि स्थापयामि ।। ६ ।।

ॐ इमं मे व्वरुण श्श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ।।

आवाहयामि तां देवीं विरूपाक्षीति विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूजयेत् सप्तमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विरूपाक्ष्यै नमः, विरूपाक्षीमावाहयामि स्थापयामि ।। ७ ।।

ॐ यमाय यमसूमर्व्वभ्योऽवतोकाꣳसंव्वत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सराया तोत्वरोमिद्द्वत्सरायातिष्कद्वरीं मत्सराय व्विजर्जराꣳसंव्वत्सराय पलिक्क्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धठँ साद्धयेभ्यश्च्चर्म्मम्म्नम् ।।

आवाहयामि तां देवीं शुष्काङ्गीनामतः शुभाम् ।
सर्वकार्यकरां देवीं कोष्ठे चैव तथाऽष्टमे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः शुष्काङ्ग्यै नमः, शुष्काङ्गीमावाहयामि स्थापयामि ।। ८ ।। [इति द्वितीयाष्टकपङ्क्तिः]

ॐ असि यमो अस्यादित्यो ऽअर्व्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्व्रतेन । असि सोमेन समया व्विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ।।

आवाहयामि तां देवीं सुप्रीतां नरभोजनीम् ।
सुमखे यजमानस्य पूजयेत् प्रथमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः नरभोजन्यै नमः, नरभोजनीमावाहयामि स्थापयामि ।। १ ।।

ॐ मित्रस्य चर्षणी धृतो वो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ।।

आवाहयामि तां देवीं फेत्कारीनामतो मताम् ।
यज्ञे विघ्नहरां देवी पूज्या कोष्ठे द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः फेत्कार्यै नमः, फेत्कारीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ अग्रे बृहन्नुषसा मूर्द्ध्वो ऽअस्त्थान्नज्जगन्वान्तमसो ज्ज्योतिषागात् । अग्निर्ब्भानुना रुशता स्वङ्ग ऽअजातो व्विश्श्वा सद्मान्यप्प्राः ॥

आवाहयामि तां देवीं वीरभद्रेति विश्रुताम् ।
वीरभद्रकरीं देवीं पूजयेच्च तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वीरभद्रायै नमः, वीरभद्रमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ भग प्प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमान्धियमुदवाददन्नः ॥ भग प्प्र नो जनय गोभिरश्श्वैर्भग प्प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥

आवाहयामि तां देवीं धूम्राक्षीं धूम्रलोचनाम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोप्ठे चतुर्थके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः धूम्राक्ष्यै नमः, धूम्राक्षीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ सुपर्णोसि गरुत्मांस्त्रिवृते शिरो गायत्त्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमे ऽआत्त्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्व्वामदेव्व्य य्यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ष्ण्याः शफाः सुपर्णोसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥

आवाहयामि तां देवीं सुपूज्यां कलहप्रियाम् ।
यज्ञदोषहरां देवीं पूजयेत् पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कलहप्रियायै नमः, कलहप्रियामावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ।। अक्षन्पितरोऽमी मदन्त पितरो तीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।।

आवाहयामि तां देवीं राक्षसीं राक्षसप्रियाम् ।
रक्षार्थं यजमानस्य षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः राक्षस्यै नमः राक्षसीमावाहयामि स्थापयामि ।। ६ ।।

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्य ऋतसदन्न्यसि व्वरुणस्य ऽऋत सदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदन मासीद ।।

आवाहयामि तां देवीं रक्ताक्षीं घोरपूर्वकाम् ।
महाभयकरां देवीं पूजयेत् सप्तमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः घोररक्ताक्ष्यै नमः, घोररक्ताक्षीमावाहयामि स्थापयामि ।। ७ ।।

ॐ व्वरुणः प्प्राविता भुवन्मित्त्रो व्विश्श्वाभिरुतिभिः ।। करतान्नः सुराधसः ।।

आवाहयामि तां देवीं विशालाक्षीति विश्रुताम् ।
विशालां सर्वकार्येषु कोष्ठे चैव तथाऽष्टके ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विशालाक्ष्यै नमः, विशालाक्षीमावाहयामि स्थापयामि ।। ८ ।। [इति तृतीयाष्टकपंक्तिः ।।]

ॐ हꣳ सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता व्वेदिषदतिथिर्द्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजा ऽअद्रिजा ऽऋतम्बृहत् ।।

आवाहयामि तां देवीं कौमारीं चैव विश्रुताम् ।
वरपुष्टिकरां देवीं पूजयेत् प्रथमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः कौमार्यै नमः, कौमारीमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ सुसन्दृशन्त्वा व्वयमघवन्वन्द्विषीमहि । प्रनूनं पूर्णबन्धुरस्तुतो यासि वशाँ२ ऽअनुयोजान्विन्द्र ते हरी ॥

आवाहयामि तां देवीं नाम्ना चण्डीं च विश्रुताम् ।
अभयां सर्वभक्तानां पूजयेद् द्वितये दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्व चण्ड्यै नमः, चण्डीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ प्रतिपदसि प्प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पद त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥

आवाहयामि तां देवीं वाराहीनाम विश्रुताम् ।
पुत्रपौत्रसुखार्थाय पूजयेत्तां तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वाराह्यै नमः, वाराहीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ देवीरापो ऽअपान्नपाद्यो व ऽऊर्म्मिर्हविष्ष्य ऽइन्द्रियावान्मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्तशुक्क्रपेभ्यो येषां भागस्थ स्वाहा ॥

आवाहयामि तां देवीं मुण्डधारिणिविश्रुताम् ।
सर्वशत्रविनाशाय तुर्ये कोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मुण्डधारिण्यै नमः, मुण्डधारिणीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ देवी द्द्वारो ऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती । प्राणं न व्वीर्य्यं नसि द्द्वारो दधुरिन्द्रियं व्वसुवने व्वसुधे यस्य व्वन्तु यज ॥

आवाहयामि तां देवीं भैरवीं भैरवप्रियाम् ।
यजमानहितार्थाय पूजयेत् पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भैरव्यै नमः, भैरवीमावाहयामि स्थापयामि ।। ५ ।।

ॐ देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्द्धयन् । श्रोत्त्रं न कर्ण्णयोर्य्यशो जोष्ट्रीब्भ्यां दधुरिन्द्रियं व्वसुवने व्वसुधे यस्य व्व्यन्तु यज ।।

आवाहयामि तां देवीं वीरां वीरबलप्रदाम् ।
वीरपुष्टिकरीं देवीं षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वीरायै नमः, वीरामावाहयामि स्थापयामि ।। ६ ।।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्श्विनो ब्बाहुब्भ्यां पूष्णो हस्ताब्भ्याम् । अश्श्विनोर्भैषज्ज्येन तेजसे ब्रह्मवर्च्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्ज्येन व्वीर्य्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्श्रियै यशसे ऽभिषिञ्चामि ।।

आवाहयामि तां देवीं नाम्ना चैव भयङ्करीम् ।
अभयां सर्वभक्तानां पूजयेत् सप्तमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भयङ्कर्यै नमः, भयङ्करीमावाहयामि स्थापयामि ।। ७ ।।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्रसश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवन्भूय ऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यन्ते ।।

आवाहयामि तां देवीं वज्रिणीं वज्रधारिणीम् ।
इन्द्रप्रियां महादेवीं पूजयेदष्टमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः वज्रधारिण्यै नमः, वज्रधारिणीमावाहयामि स्थापयामि ।। ८ ।। [इति चतुर्थाष्टकपङ्क्तिः] ।

ॐ भद्द्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्द्रं पश्येमाक्षभिर्य्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः ।।

आवाहयामि तां देवीं क्रोधा नाम्नेति विश्रुताम् ।
वैरिणामुपरि क्रुद्धां पूजयेत् प्रथमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः क्रोधायै नमः, क्रोधामावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ इषे त्वोर्ज्जे त्वा व्वायव स्त्थ देवो वः सविता प्प्रार्प्पयतु श्श्रेष्ट्ठतमाय कर्म्मण ऽआप्प्यायद्ध्वमघ्न्या ऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा ऽअयक्ष्मा मा वस्तेन ऽईशत माघशर्ठंसो द्ध्रुवा ऽअस्मिन्गोपतौ स्यात बह्वीर्य्यजमानस्य पशून्पाहि ॥

आवाहयामि तां देवीं दुर्मुखां सुमुखप्रियाम् ।
सर्वविघ्नहरां देवीं पूज्या कोष्ठे द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्मुख्यै नमः, दुर्मुखीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राद्ध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

आवाहयामि तां देवीं नाम्ना वै प्रेतवाहिनीम् ।
सर्वरोगहरां देवीं पूज्या कोष्ठे तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रेतवाहिन्यै नमः, प्रेतवाहिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न ऽआसुव ॥

आवाहयामि तां देवीं कर्का नामेति विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठे चतुर्थके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कर्कायै नमः, कर्कामावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ असुन्न्वन्तमयजमानमिच्छस्तेन स्येत्यामन्न्विहिं तस्क्करस्य । अन्न्यमस्म्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुब्भ्यमस्तु ॥

आवाहयामि तां देवीं दीर्घलम्बोष्ठपूर्विकाम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या सा पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दीर्घलम्बोष्ठ्यै नमः, दीर्घलम्बोष्ठीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

ॐ अग्निश्च मे घर्म्मश्च मे र्क्कश्च मे सूर्य्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं मालिनीं गणशालिनीम् ।
रूप-लावण्यसंयुक्तां षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मालिन्यै नमः मालिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ६ ॥

ॐ बह्वीनां पिता ब्बहुरस्य पुत्त्रश्चिच्चश्च्चाकृणोति समनावगत्य । इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च्च सर्व्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्प्रसूतः ॥

आवाहयामि तां देवीं योगिनीं मन्त्रपूर्विकाम् ।
सिद्ध्यर्थं मन्त्रबीजानां पूजयेत्सप्तमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मन्त्रयोगिन्यै नमः, मन्त्रयोगिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥

ॐ नमस्ते रुद्र मन्न्यव ऽउतोत ऽइषवे नमः । बाहुब्भ्यामुत ते नमः ॥

आवाहयामि तां देवीं कालाग्निमग्निमोहिनीम् ।
सुखहर्षप्रदां देवीं पूज्या सा चाऽष्टमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कालाग्निमोहिन्यै नमः, कालाग्निमोहिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥ [इति पञ्चमाष्टकपङ्क्तिः ।]

ॐ ऋतञ्च मे ऽमृतञ्च मे ऽयक्ष्मञ्च मे ऽनामयच्च मे जीवातुश्श्च मे दीर्घायुत्वं च मे ऽनमित्रञ्च मे ऽभयञ्च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूखाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन कल्प्पन्ताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं मोहिनीं विश्वमोहिनीम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या तु प्रथमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मोहिन्यै नमः, मोहिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्त्रं विभृतामुपस्त्थे । अप शत्त्रूँ न्न्विद्ध्यताँ सम्विदाने ऽआर्त्त्नी ऽइमे व्विप्प्फुरन्ती आमित्त्रान् ॥

आवाहयामि तां देवीं चक्रा नामेति विश्रुताम् ।
नित्यं शत्रुगणे वक्रां पूजयेत्तां द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चक्रायै नमः, चक्रामावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ वेद्या व्वेदिः समाप्यते वर्हिषा वर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप ऽआप्प्यते प्प्रणीतो ऽअग्निरग्निना ॥

आवाहयामि तां देवीं कुण्डलिनी नामतो मताम् ।
शोभिते कुण्डले यस्याः पूज्या कोष्ठे तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कुण्डलिन्यै नमः, कुण्डलिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ पावका नः सरस्वती व्वाजेभिर्व्वाजिनीवती ।। यज्ञं व्वष्टुधिया व्वसुः ।।

आवाहयामि तां देवीं बालुकां सूक्ष्मरूपिणीम् ।
सुखदां धनदां देवीं तुर्ये कोष्ठे प्रपूजयेत् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः बालुकायै नमः, बालुकामावाहयामि स्थापयामि ।। ४ ।।

ॐ अस्कन्नमद्य देवेभ्य ऽआज्यꣳ संभ्रिया समङ्‌घ्रिणा व्विष्ष्णो मा त्वा वक्क्रमिषं व्वसुमतीमग्ग्ने ते च्छायामुपस्त्थेषं व्विष्ष्णोः स्त्थानमसीत ऽइन्द्रो व्वीर्य्यमकृणोदूद्ध्वों दृध्वर ऽआस्थात् ।।

आवाहयामि तां देवीं कौवेरी नामतो मताम् ।
धनधान्यप्रदा देवी सम्पूज्या पञ्चमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः कौबेर्यै नमः, कौबेरीमावाहयामि स्थापयामि ।। ५ ।।

ॐ ते ऽआचरन्तो समनेव योषा मातेव पुत्त्रं विभृतामुपस्त्थे । अपशत्त्रून्न्विवन्द्यताꣳसंव्विदाने ऽआक्त्नी ऽइमे व्विष्ष्फुरन्ती ऽअमित्त्रान् ।।

आवाहयामि तां देवीं यमदूतीति विश्रुताम् ।
यजमानसुखार्थाय षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमदूत्यै नमः, यमदूतीमावाहयामि स्थापयामि ।। ६ ।।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न ऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतान्नो भरीमभिः ।।

आवाहयामि तां देवीं शुभां वापि करालिनीम् ।
ऋत्विजां क्षेमकामाय पूजयेत्सप्तमे दले ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः करालिन्यै नमः, करालिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥

ॐ उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा ऽअसि च नो मयि धेहि । जिन्न्वयज्ञं जिन्न्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥

आवाहयामि तां देवीं कौशिकी नामतो मताम् ।
षष्ठिचत्वारिके स्थाने पूजयेदष्टमे दले ॥ ८ ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कौशिक्यै नमः, कौशिकीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥ [इति षष्ठाष्टकपङ्क्तिः ।]

ॐ आप्यायस्व समेतु ते व्विश्वतः सोम व्वृष्ण्यम् । भवा व्वाजस्य सङ्गथे ॥

आवाहयामि तां देवीं यक्षिणीं यक्षवल्लभाम् ।
अबलाञ्च महाकायाँ पूजयेत् प्रथमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यक्षिण्यै नमः, यक्षिणीमावाहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि । समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥

आवाहयामि तां देवीं पञ्चाशत्स्थानसंस्थिताम् ।
भक्षिणी नाम या प्रोक्ता पूज्या कोष्ठे द्वितीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भक्षिण्यै नमः भक्षिणीमावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा ऽमृतात् ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पति वेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥

आवाहयामि तां देवीं कौमारीं कामरूपिणीम् ।
पुत्रकामसमृद्ध्यर्थं पूज्या कोष्ठे तृतीयके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कौमार्य्यै नमः, कौमारीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकं म ऽइषाण ॥

आवाहयामि तां देवीं नाम्ना या मन्त्रवाहिनीम् ।
मन्त्राणि सकलार्थाय पूज्या कोष्ठे चतुर्थके ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मन्त्रवाहिन्यै नमः, मन्त्रवाहिनीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ विष्णो रराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रेस्त्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्द्ध्रुवोऽसि । व्वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥

आवाहयामि तां देवीं विशालां विश्वतो मुखाम् ॥
उपरागाय विश्वेषां पूजयेत्पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विशालायै नमः, विशालामावाहयामि स्थापयामि ॥ ४ ॥

ॐ ब्राह्मणमद्य व्विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातु दक्षिणम् ॥ अस्मद्द्राता देवत्रा गच्छत प्प्रदातारमाविशत् ॥

आवाहयामि तां देवीं कार्मुकी नाम विश्रुताम् ।
उपरागाय विश्वेषां षष्ठे कोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कार्मुक्यै नमः, कार्मुकीमावाहयामि-स्थापयामि ॥ ६ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजात्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः ॥

आवाहयामि तां देवीं व्याघ्री नामेति विश्रुताम् ।
यजमानहितार्थाय पूजिता सप्तमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः व्याघ्र्यै नमः, व्याघ्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥

ॐ एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽएकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽएकविꣳशतिश्च म ऽएकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म नवविꣳशतिश्च म ऽएकत्रिꣳशच्च म ऽएकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

आवाहयामि तां देवीं महापूर्वां तु राक्षसीम् ।
रक्षोभयहरां देवीं पूजयेदष्टमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः महाराक्षस्यै नमः, महाराक्षसीमावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥ [इति सप्तमाष्टकपंक्तिः ॥]

ॐ प्रेता जयता नर ऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु । उग्ग्रा वः सन्तु बाहवो ऽनाधृष्या यथासथ ॥

आवाहयामि तां देवीं नाम्ना या प्रेतभक्षिणी ।
सर्वरोगहरां देवीं पूजयेत् प्रथमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रेतभक्षिण्यै नमः, प्रेतभक्षिणीमावाहयामि स्थापयामि ।। १ ।।

ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्द्रा ऽअधिभूम्याम् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।।

आवाहयामि तां देवीं धूर्जटां जटिलां सदा ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठे द्वितीयके ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः धूर्जट्यै नमः धूर्जटीमावाहयामि स्थापयामि ।। २ ।।

ॐ सुपर्ण्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्द्रथन्तरे पक्षौ । स्तोम आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्व्वामदेव्व्यं य्यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ष्ण्याः शफाः सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ।।

आवाहयामि तां देवीं विकटां नामतो मताम् ।
सर्वदोषेषु विकटा पूज्या कोष्ठे तृतीयके ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः विकटायै नमः विकटामावाहयामि स्थापयामि ।। ३ ।।

ॐ या ते रुद्द्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।।

आवाहयामि तां देवीं षष्ठिस्थाने स्थितां शुभाम् ।
घोररूपां महाकायां तूर्यकोष्ठे प्रपूजयेत् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः घोररूपायै नमः घोररूपामावाहयामि स्थापयामि ।। ४ ।।

ॐ देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।।

आवाहयामि तां देवीं सकपालिक-पालिकाम् ।
यजमानहितार्थाय पूजयेत् पञ्चमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कपालिकायै नमः, कपालिकामावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

ॐ इदं विष्णुर्विचक्क्रमे त्रेधा निदधे पदम् । स मूढमरय-पाᳫँसुरे स्वाहा ॥

आवाहयामि तां देवीं निकलां सकलां शुभाम् ।
सकलाभीष्टदां देवीं षष्ठकोष्ठे प्रपूजयेत् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः निकलायै नमः निकलामावाहयामि स्थापयामि ॥ ६ ॥

ॐ व्वृष्ण ऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृष्ण ऽऊर्म्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्म्मं देहि व्वृषसे नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा व्वृषसे नोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्म्मं देहि ॥

आवाहयामि तां देवीममलां बलसंयुताम् ।
यज्ञेऽस्मिन्निमलां स्थाप्या पूज्या सा सप्तमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अमलायै नमः अमलामावाहयामि स्थापयामि ॥ ७ ॥

ॐ भार्यै दार्व्वाहारं प्रभाया ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य व्विष्टपायाभिषेक्तारं व्वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्प्रकरितारᳫं सर्व्वेभ्यो लोकेभ्य ऽउपसेक्तारमव ऽऋत्यै व्वधायोपमन्थितारं मेधाय व्वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥

आवाहयामि तां देवीं सर्वदा सर्वसिद्धिदाम् ।
यजमानहितार्थाय पूज्या कोष्ठेऽष्टमे दले ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिद्धिप्रदायै नमः, सिद्धिप्रदामावाहयामि स्थापयामि ॥ ८ ॥ [इति प्रथमाष्टकपंक्तिः ।]

ईशाने । ॐ जयायै नमः, जयामावाहयामि स्थापयामि ॥ पूर्वे । विजयायै नमः, विजयामावाहयामि स्थापयामि ॥ आग्नेये । अजितायै नमः, अजितामावाहयामि स्थापयामि ॥ दक्षिणे । अपराजितायै नमः, अपराजितामावाहयामि स्थापयामि ॥ नैर्ऋत्ये । क्षेमकर्त्र्यै नमः, क्षेमकर्त्रीमावाहयामि स्थापयामि ॥ पश्चिमे । लक्ष्म्यै नमः, लक्ष्मीमावाहयामि स्थापयामि ॥ वायव्ये । वैष्णव्यै नमः, वैष्णवीमावाहयामि स्थापयामि ॥ उत्तरे । पार्वत्यै नमः, पार्वतीमावाहयामि स्थापयामि ॥

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । व्विश्वेदेवास ऽइह मादयन्तामोꣳ३ प्प्रतिष्ठ ॥

साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः सवाहनाः दिव्यादि चतुःषष्ठियोगिन्यः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ॥ ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् ॥

॥ इति योगिनीपूजनं समाप्तम् ॥

—:०:—

अथ वायव्यवेद्यां अजरादि क्षेत्रपालपूजनम् ॥

आचम्य प्राणानायम्य ॥ देशकालौ सङ्कीर्त्य गोत्रः शर्माऽहं सनवग्रहमख-सप्रासाद-सनन्दीश्वरशिवादिमूर्त्तीनां (विष्ण्वादि वा रामचन्द्रादिमूर्त्तीनां) स्थिरप्रतिष्ठाकर्मणि अजरादिपावनपर्यन्तानां क्षेत्रपालानामावाहनं पूजनं च करिष्ये ।

ॐ इमौ ते पक्षावजरौ पतत्त्रिणौ याब्भ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने ॥ ताब्भ्यां पतेम सुकृतामु लोकं य्यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

एह्येहि सर्वामररक्षक त्वं सः क्षेत्रपालः प्रथमो मतो यः ।
तं क्षेत्ररक्षाकरमुख्यपूज्यं समाह्वये त्वाजरनामधेयम् ॥
ॐ भूर्भुवः स्वः अजराय नमः, अजरमावाहयामि ॥ १ ॥

ॐ प्रथमावाꣳसरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि व्विश्श्वा। अपि प्प्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्ज्योतिः प्प्रदिशा दिशन्ता ॥

एह्येहि सद्व्यापितसर्वलोकव्याप्य स्वयं रक्षति जीवलोकम् ।
सद्व्यापकाख्याय महाभुजाय क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः व्यापकाय नमः, व्यापकमावाहयामि ॥ २ ॥

ॐ इन्द्रस्य व्वज्ज्रोसि मित्राव्वरुणयोस्त्वा प्प्रशास्त्रोः प्प्रशिषा युनज्मि। अव्व्यथायै त्वा स्वधायै त्वरिष्टो ऽअर्ज्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥

एह्येहि विघ्नान् हि विनाशय त्वं रक्षां कुरुष्वाखिलभूतयेभ्यः।
सदीन्द्रचौराह्वयकाय तस्मै क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्रचौराय नमः, इन्द्रचौरमावाहयामि ॥ ३ ॥

ॐ एवेदिन्द्रं व्वृषणं व्वज्रब्बाहुं व्वसिष्ठासो ऽअब्भ्यर्च्चन्त्यर्क्कैः। स न स्तुतो व्वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

एह्येहि वृत्रासुरनाशनाय महाभयायासुरघातिने च।
सदिन्द्रमूर्त्ते स्फुरदाह्वयाय सत्क्षेत्रपालाधिपते नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्रमूर्त्तये नमः, इन्द्रमूर्तिमावाहयामि ॥ ४ ॥

ॐ उक्षा समुद्रो ऽअरुणः सुपर्ण्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश। मद्ध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्म्मा व्विचक्क्रमे रजसस्प्पात्यन्तौ ॥

एह्येहि सर्व्वामरवन्दिताङ्घ्रे देवीकृपालोचनवर्द्धिताय ।
कठोरशब्दाखिलभीतिकर्त्रे उक्षाभिधानाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुव स्वः उक्षाभिधाय नमः, उक्षाभिधमावाहयामि ॥ ४ ॥

ॐ यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा व्वयम् । अग्निर्म्मातस्म्मादेनसो व्विश्श्वान्न्मुञ्चत्वᳬहसः ॥

एह्येहि कूष्माण्ड महानुभाव रक्षोगणान्नाशय नाशय त्वम् ।
क्षेत्रेशमर्य्यादिमहाभयेभ्यः त्रायस्व त्रायस्व विभो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कूष्माण्डाय नमः, कूष्माण्डमावाहयामि ॥ ६ ॥

ॐ स न ऽइन्द्राय यज्ज्यवे व्वरुणाय मरुद्भ्यः । व्वरिवोवित्परिस्रव ॥

एह्येहि विख्यातयशोधिपुञ्ज विवेकविद्याविनयाधिवास ।
क्षेत्राधिपं विघ्नविनाशशीलं महानुभावं वरुणं प्रणौमि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः, वरुणमावाहयामि ॥ ७ ॥

ॐ ब्बाहू मे बलमिन्द्रियᳬहस्तौ मे कर्म्म व्वीर्य्यम् । आत्क्मा क्षत्त्रमुरो मम ॥

एह्येहि बौद्धादिमतापहारिन् हराशु बन्दीजनबन्धनानि ।
तं बाहुकाख्यं बटुबुद्धिपुञ्जं क्षेत्राधिप त्वां भगवन्नमामि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बाहुकाय नमः, बाहुकमावाहयामि ॥ ८ ॥

ॐ मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो व्वरुण्यादुत । अथो यमस्य पड्वीशात्सर्व्वस्म्माद्देव किल्विषात् ॥

एह्येहि वैकुण्ठपदाब्जभृङ्ग विवेकविद्याविनयाम्बुराशे ।
विमुक्तसंज्ञाय वराय तस्मै क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विमुक्ताय नमः, विमुक्तमावाहयामि ॥ ९ ॥

ॐ कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेंच्छतꣳ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे ॥

एह्येहि लीलालयलिप्तकाय कस्तूरिकाचन्दनचर्चिताय ।
लक्ष्मीपते लोलविलोचनाय क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः लिप्तकाय नमः, लिप्तकमावाहयामि ॥ १० ॥

ॐ सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्द्रो ऽब्भ्यवह्रियमाणः सलिलः प्प्रप्प्लुतो ययोरोजसा स्क्कभिता रजाꣳसि, व्वीर्य्येभिर्व्वीरतमा शविष्ट्ठा ॥ या पत्त्येते ऽअप्प्रतीता सहोभिर्व्विष्णू ऽअगन्न्वरुणा पूर्व्वहूतौ ॥

एह्येहि 'लीलाक' सुनामधेय लोकाधिनाथैरभिपूजितस्त्वम् ।
लूतादिविस्फोटकभीतिहन्त्रे लीलाकसंज्ञाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः लीलालोकाय नमः, लीलालोकमावाहयामि ॥

ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्व्रातेभ्यो व्व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्विरूपेभ्यो व्विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥

एह्येहि दीर्घास्य-कठोरनेत्रत्रयेण-विद्रावितभूतजाल ।
महोग्रदंष्ट्राविकरालधाम्ने सदेकदंष्ट्राय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः एकदंष्ट्राय नमः, एकदंष्ट्रमावाहयामि ।। १२ ।।

ॐ अर्म्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं व्वीर्य्यायाविपालं तेजसे ऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्द्राय गृहपꣳ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ।।

एह्येहि शक्रस्य सुवाहनाय चतुर्महादन्तविराजिताय ।
ऐरावताख्याय रिपुप्रहर्त्रे सत्क्षेत्रपालाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः ऐरावताख्याय नमः, ऐरावताख्यमावाहयामि ।। १३ ।।

ॐ या ऽओषधीः पूर्व्वा ज्जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।। मनैनु बब्भ्रूणामहꣳ शत धामानि सप्त च ।

एह्येह्यनाचाररतान् हराशु त्वामोषधीघ्नं प्रणमसि सिद्ध्यै ।
सदौषधीवीर्यहराय तस्मै महौषधीघ्नाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः ओषधीघ्नाय नमः, ओषधीघ्नमावाहयामि ।। १४ ।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा ऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मा मुतः ।।

एह्येहि विद्याधरबुद्धिदातः सद्वाणबाणासनहस्तयुग्मः ।
करालदोर्दण्डविदाधतारिं तं बन्धनाख्यं प्रणतोऽहमस्मि ।।
ॐ भूर्भुवः स्वः बन्धनाय नमः, बन्धनमावाहयामि ।।१५।।

ॐ देव सवितः प्प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्व्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु व्वाचस्पतिर्व्वाचं नः स्वदतु ।।

एह्येहि दीर्घास्य-कठोरनेत्र-दोर्दण्ड-संत्रासित-दैत्यवृन्द ।
मे दुःखदारिद्र्यविनाशनाय आ-दिव्यकायाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः दिव्यकायाय नमः, दिव्यकायमावाहयामि ।। १६ ।।

ॐ सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऽऊर्णासूत्रेण कवयो व्वयन्ति । अश्विना यज्ञꣳ सविता सरस्वतीन्द्रस्य रूपं व्वरुणो भिषज्ज्यन् ।।

एह्येहि कस्तूरिविलिप्तकाय दोर्दण्डविद्रावितकोटिदैत्य ।
काश्मीरशत्कम्बलशोभिताय शत्कम्बलाख्याय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः कम्बलाय नमः, कम्बलमावाहयामि ।।१७।।

ॐ आशुः शिशानो व्वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । सङ्क्रन्दनो निमिष ऽएकवीरः शतꣳ सेना ऽअजयत्साकमिन्द्रः ।।

एह्येहि शूराधिपगीतकीर्ते संक्षोभय त्वं विघ्नान् हि शीघ्रम् ।
क्षुद्रारि-पुञ्ज-क्षयकाय तस्मै संक्षोभणाख्याय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः क्षोभणाय नमः, क्षोभणमावाहयामि ।।१८।।

ॐ इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्च्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये । घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् । गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्न्वानस्तन्न्वो निषीद । गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्ष्मस्तं ते शुगृच्छतु ।।

स्वरावविद्रावितसर्वभूत कान्तारनानापशुपालकाय ।
गोतुल्यरूपाय गरिष्ठधाम्ने क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गवयवाय नमः, गवयवमावाहयामि ।।१९।।

ॐ कुम्भो व्वनिष्ठुर्ज्जनिता शचीभिर्य्यस्मिन्नग्ग्रे योन्न्यां गर्भो ऽअन्तः । प्लाशिर्व्व्यक्तः शतधार ऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ।।

घोरारवाघर्घरितस्वराय घोरास्यदंष्ट्राय करालधाम्ने ।
क्षेत्राधिनाथाय घण्टाभिधाय महानुभावाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः घण्टाभिधाय नमः, घण्टाभिधमावाहयामि ।।२०।।

ॐ आक्रन्दय बलमोजो न ऽआधानिष्ट्ट निहि दुरिता बाधमानः । अपप्प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना ऽइत ऽइन्द्रस्य मुष्ट्टिरसि व्वीडयस्व ।।

एह्येहि पाथोनिधिमन्दिराय विशालनेत्राय वरिष्ठधाम्ने ।
नागाधिनाथाय विरोधहन्त्रे व्यालाभिधानाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः व्यालाय नमः, व्यालमावाहयामि ।। २१ ।।

ॐ इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्ष्वनश्च नः ।।

एह्येहि वीराधिपवन्दितांघ्र्ये सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्वकरूपधर्त्रे ।
अरिष्टहर्त्रे परमाणुनाम्ने ह्यणुस्वरूपाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अणुस्वरूपाय नमः, अणुस्वरूपमावाहयामि ।। २२ ।।

ॐ चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहठं हरिरेति कनिक्रदत् ।।

प्रचण्डभुजदण्डाय ह्यतिक्रान्तेन्दुकान्तये ।
चन्द्रवारुणसंज्ञाय क्षेत्राधिपतये नमः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रवारुणाय नमः, चन्द्रवारुणमावाहयामि ।। २३ ।।

ॐ प्रतिश्रुत्काया ऽअर्तनं घोषाय भषमन्ताय बदुवादिनमनन्ताय मूकठं शब्दायाडम्बराघातं महसे व्वीणावादं क्रोशाय तूणब्रध्ध्ममवरस्प्पराय शंखध्ध्मं व्वनाय व्वनपमन्न्यतो ऽरण्याय दावपम् ।।

फेत्कारविद्राबितसर्वभूतं पापघ्नकायं हनुउग्रदेहम् ।
देवं फटाटोप-सुनामधेयं क्षेत्राधिनाथं शिरसा नमामि ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः फटाटोपाय नमः, फटाटोपमावाहयामि ।।२४।।

ॐ उग्ग्रँ ल्लोहितेन मित्त्रठँ सौव्रत्येन रुद्द्रं दौर्व्वंत्येनेन्द्रं प्प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साद्ध्यान्प्प्रमुदा । भवस्य कण्ठ्यठँ रुद्द्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्व्वंस्य व्वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ।।

स्फुरज्जटाजूटविराजिताय जाड्यान्धकाराय शरीरधाम्ने ।
जगज्जनानन्दकराय तस्मै जटालसंज्ञाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः जटालाय नमः, जटालमावाहयामि ।।२५।।

ॐ पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देवदीद्यत् । अग्ग्ने क्रत्वा क्रतूँ १ रनु ।।

कृपाकटाक्षयुक्ताय कर्णकुण्डलशोभिने ।
कुठारपाणये क्षेत्रस्वामिने क्रतवे नमः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः क्रतवे नमः, क्रतुमावाहयामि ।। २६ ।।

ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा व्विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रन्धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्म्माविशताद्रयिः ।।

घण्टारवध्वस्तदिगन्तभीतिघोरास्यसंदर्घरितस्वरं च ।
घण्टेश्वरं पापविनाशकत्वं क्षेत्राधिनाथं भगवन्तमीडे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः घण्टेश्वराय नमः, घण्टेश्वरमावाहयामि ।।२७।।

ॐ व्वायो शुक्रो ऽअयामि ते मद्ध्वो ऽअग्ग्रं दिविष्ट्टिषु । आयाहि सोमपीतये स्प्पार्हो देव नियुक्त्वता ।।

एह्येहि वीरेन्द्र सुवन्दितांघ्रे विख्यातनाम्ने विततोग्रधाम्ने ।
वामप्रियायाथ विनोदकर्त्रे विटङ्कसंज्ञाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्त्रः विटङ्काय नमः, विटङ्कमावाहयामि ।।२८।।

ॐ दैव्व्या होतारा ऽऊर्द्ध्वमध्वरं नोऽग्रेर्ज्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ।।

एह्येहि नानामणिसंयुताय मारीगणाक्षाय मनोहराय ।
मुनीन्द्रवन्द्याय च मोहहर्त्रे नमोऽस्तु तस्मै मणिमन्दिराय ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः मणिमतये नमः, मणिमतिमावाहयामि ।।२९।।

ॐ त्रीणि त ऽआहुर्द्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्प्सु त्रीण्यन्तः समुद्द्रे । उतेव मे व्वरुणश्छन्न्त्स्यर्व्वन्न्यात्त्रा त ऽआहुः परमं जनित्त्रम् ।।

एह्येहि गौरीप्रियकारकाय गणेश विघ्नौघविनाशकारिन् ।
गानप्रियायाथ गुहागृहाय गणौघबन्धाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणबन्धाय नमः, गणबन्धमावाहयामि ।।३०।।

ॐ प्रतिश्रुत्काया ऽअर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायादुम्बराघातं महसे व्वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ध्ममवरस्पराय शङ्खध्ध्मं व्वनाय व्वनपमन्न्यतो ऽरण्याय दावपम् ।।

प्रचण्डकोदण्डलसत्कराय करालरूपाय कुमारकाय ।
कादम्बरीपानरताय तस्मै सत्डामराख्याय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः डामराय नमः, डामरमावाहयामि ।।३१।।

ॐ शुद्धबालः सर्व्वशुद्धबालो मणिबालस्त ऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्द्राय पशुपतये कर्ण्णा यामा अवलिप्ता रौद्द्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्याः ।।

एह्येहि ढङ्कारचकप्रियाय भयापहाराय निवाशिने च ।
कुमारमित्राय विराजिताय सुढुण्ढिकर्णाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः ढुण्ढिकर्णाय नमः, ढुण्ढिकर्णमावाहयामि ॥ ३२ ॥

ॐ व्वनस्प्पते व्वीड्वङ्गो हि भूयाऽ अस्म्मत्सखा प्प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो ऽअसि व्वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥

स्वस्थानसंस्थाय सुवेषकाय सुरारिहन्त्रे च गरिष्ठधाम्ने ।
नेत्रार्चिषा दीपितवासधाम्ने नमो नमस्ते स्थविराभिधाय ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः स्थविराय नमः, स्थविरमावाहयामि ॥ ३३ ॥

ॐ सुपर्णं व्वस्ते मृगो ऽअस्यादन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्प्रसूता। यत्रा नरः स च व्विच द्रवन्ति तत्रास्म्मब्भ्यमिषवः शर्म्म यꣳसन् ॥

विशालदंष्ट्राविकरालरूपं दन्तप्रभानुन्नमतान्धकारम् ।
दारिद्र्य-कान्तार-सुधूमकेतो नमोऽस्तु ते 'दन्तुर'-नामधेयम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दन्तुराय नमः, दन्तुरमावाहयामि ॥ ३४ ॥

ॐ अग्ग्ने ऽअच्छा व्वदेह नः प्प्रति नः सुमना भव। प्र नो यच्छ सहस्रजित्वꣳ हि धनदा ऽअसि स्वाहा ॥

एह्येहि धर्मात्मजतुल्यरूप धराधिनाथस्तुतविक्रमप्रभो ।
धनप्रदायाथ धुरन्धराय धनेशसंज्ञाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः धनदाय नमः, धनदमावाहयामि ॥ ३५ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ शस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

एह्येहि नानाविधविक्रमस्त्वं सुरेन्द्रनागाधिपगीतकीर्ते ।
नारायणाख्यान-रताय तस्मै सन्नागकर्णाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः नागकर्णाय नमः, नागकर्णमावाहयामि ॥ ३६ ॥

ॐ बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म्म व्वीर्य्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥

एह्येहि मारीगणनाशनाय मुनिप्रवन्द्याय मनोहराय ।
दुःखप्रहर्त्रे च खलौघहर्त्रे महाभुजायाथ नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मारीगणाय नमः, मारीगणमावाहयामि ॥ ३७ ॥

ॐ अपां फेनेन नमुचेः शिर ऽइन्द्रो दवर्त्तयः । व्विश्श्वा यदजयः स्पृधः ॥

एह्येहि फेत्कार महानुभाव दारिद्र्यदुःखौघविनाशकारिन् ।
येन प्रभायप्रभवे सुराणां फेत्कारसंज्ञाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः फेत्काराय नमः, फेत्कारमावाहयामि ॥३८॥

ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मे ऽअस्तु दशव्वीरꣳ सर्व्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्प्रजासनि पशुसनि लोकसन्त्यभयसनि ॥ अग्निः प्प्रजां बहुलां मे करोत्त्वन्नं पयो रेतो ऽअस्म्मासु धत्त ॥

एह्येहि चातुर्थ्यसमुद्रमूर्त्ते ! चञ्चत्करास्फालनशोभिताङ्ग ।
सुतप्तकार्त्तस्वरभास्वराङ्ग तं चीकराख्यं भगवन्तमीडे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चीकराय नमः, चीकरमावाहयामि ॥ ३९ ॥

ॐ या व्याघ्रं व्विषूचिकोभौ व्वृकं च रक्षति । श्येनं पतत्त्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥

सिंहाकृति तिग्मकरालदंष्ट्रं नखायुधं भीतिकरं गजानाम् ।
नागेन्द्रनीराजितपादपद्मं क्षेत्राधिपं सिंहवरं नमामि ॥

ॐ सिंहाकृतये नमः, सिंहाकृतिमावाहयामि ॥ ४० ॥

ॐ मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था परस्याः । सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्रतिग्मं व्वि शत्रून् ताड्ढि व्विमृधो तुदस्व ॥

एह्येहि मारीगणनाशनाय महेशपादार्चनतत्पराय ।
मदप्रमत्तौघमदप्रहर्त्रे मृगाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मृगाय नमः, मृगमावाहयामि ॥ ४१ ॥

ॐ इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्सधत्स्थे द्ध्रुव ऽआनिषत्तो ऽनमस्ते ऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ॥

एह्येहि पाथोधिविलासकर्त्रे रुद्राक्षमालाविलसद्गलाय ।
यक्षप्रभामण्डितभूतलाय यक्षाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यक्ष्मप्रियाय नमः, यक्ष्मप्रियमावाहयामि ॥ ४२ ॥

ॐ जीमूतस्येव भवति प्प्रतीकं य्यद्दर्म्मी याति समदामुपस्थे । अनाविद्धया तन्न्वा जय त्वꣳ स त्वा व्वर्म्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥

एह्येहि कारुण्य-सुधा-समुद्र स्वकीय-भासा-हत-चन्द्रकान्ते ।
मेघाद्यकं वाहननामधेयं क्षेत्राधिनाथप्रवरं नमामि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मेघवाहनाय नमः, मेघवाहनमावाहयामि ॥ ४३ ॥

ॐ तीव्रान्घोषान्कृण्वते व्वृषपाणयो ऽश्वा रथेभिः सह व्वाजयन्तः । अवक्क्रामन्तः प्प्रपदैरमित्त्रान्न्क्षिणन्ति शत्रूँ१ रनपव्ययन्तः ॥

एह्येहि तीक्ष्णोष्ट्र महानुभाव जया-प्रसूत-प्रतिमोग्रतेजः ।
नानाविभूषारुचिराय तस्मै तीक्ष्णोष्ट्रसंज्ञाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः तीक्ष्णोष्ट्राय नमः, तीक्ष्णोष्ट्रमावाहयामि ॥ ४४ ॥

ॐ व्वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्ग्रीवश्श्छागै न्न्यंग्ग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्व्वृद्धया । एष रत्यरात्थ्यो व्वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा ऽक्कृष्णश्च नो ऽवतु नमोऽऽग्नये ॥

एह्येहि रातिव्रजनाशनाय खड्गोग्रधाराक्षतदुर्जनाय ।
अग्निस्वरूपाय गुणैकधाम्नेऽनलाभिधानाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अनलाय नमः, अनलमावाहयामि ॥४५॥

ॐ आदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्म्यन्तरिक्षस्य धर्त्री व्विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् । ऊर्म्मिमद्द्र॑प्सो ऽअपामसि व्विश्वकर्म्मातऽऋषिरश्विनाद्ध्वर्य्यू सादयतामिह त्वा ॥

एह्येहि कोटीन्दुसमप्रभाय शुद्धाम्बराकल्पविराजिताय ।
शरीरसामर्थ्ययुताय तस्मै तच्छुक्लतुण्डाय नमो नमस्ते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्लतुण्डाय नमः, शुक्लतुण्डमावाहयामि ॥ ४६ ॥

ॐ द्यौस्ते पृथिव्व्यन्तरिक्षं व्वायुश्छिद्रं पृणातु ते । सूर्य्यस्ते नक्षत्त्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥

एह्येहीह सुधालाप संसारभयहारक ।
सुखप्रदाय भक्तानां क्षेत्रपालाय ते नमः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तरिक्षाय नमः, अन्तरिक्षमावाहयामि ॥४७॥

ॐ सम्बर्हिरङ्क्ताꣳ हविषा घृतेन समादित्यैर्व्वसुभिः सम्मरुद्भिः । समिन्द्रो व्विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्व्य नभो गच्छतु यत्स्वाहा ॥

एह्येहि बन्दीगणबन्धमोचनं बुद्धिप्रदं बाहुबलप्रकाशम् ।
बोधप्रदं बर्बरकाभिधानं क्षेत्राधिनाथं शिरसा नमामि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बर्बरकाय नमः, बर्बरकमावाहयामि ॥४८॥

ॐ पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण व्विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥

एह्येहि राकापतितुल्यवक्त्र स्वरावसम्पूरितदिक्तटाय ।
पूतात्मने सत्पवनाभिधाय क्षेत्राधिनाथाय नमो नमस्ते ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः पावनाय नमः पावनमावाहयामि ।।४९।।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञठँ समिमन्दधातु । विश्वेदेवा स इह मादयन्तामों३ प्रतिष्ठ ।। इति अजरादिपावनान्ताः क्षेत्रपालाः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ।। ॐ अजरादिपावनान्तक्षेत्रपालेभ्यो नमः इति पूजयेत् ।। नवकोष्ठानि कृत्वा मध्ये कोष्ठे पावनं पूजयेत् ।। दिक्षु विदिक्षु अष्टसु कोष्ठेषु पञ्चकोणं कृत्वा मध्ये वृत्तं पूर्वादिक्रमेण अजरादिस्थापनं मध्ये पावनमिति क्रमः ।।

।। इति क्षेत्रपालपूजनं समाप्तम् ।।

—:०:—

श्रीयन्त्रपूजनम् ।

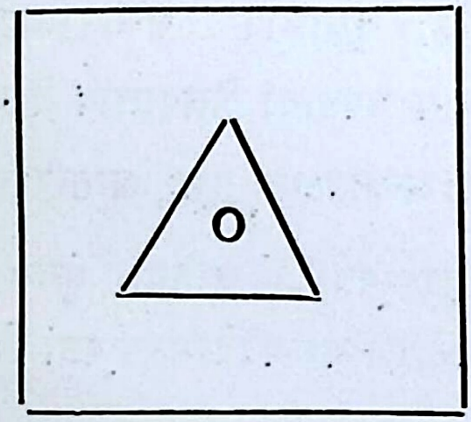

ॐ जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तां पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।। १ ।।
अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।
नवयौवनसंपन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।। २ ।।
सुचारुवदनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ।। ३ ।।

त्रिशूलं दक्षिणो दद्यात् खड्ग चक्रं क्रमादधः ।
तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिर्वामतोपि निबोधत ॥ ४ ॥

खेटकं पूर्णचापं च पाशमंकुशमूद्र्ध्वजम् ।
घंटां वा परशुं वापि वामतः सन्निवेशयेत् ॥ ५ ॥

अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ॥ ६ ॥

हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्दयन्त्रविभूषितम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फारितेक्षणम् ॥ ७ ॥

वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननाम् ।
सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया ॥ ८ ॥

वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम् ॥ ९ ॥

किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठो महिषोपरि ।
स्तूयमानञ्च तद्रूपं सन्निधौ समत्रेशयेत् ॥ १० ॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायका ।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥ ११ ॥
आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् ।
चिन्तयेत्ससततं देवीं धर्मकर्मार्थमोक्षदाम् ॥ १२ ॥

सिंहादुत्थाय कोपाद् धधड्-धड्-धडा धावमाना भवानी
शत्रूणां शस्त्रपाते ततड्-तड्-तडा त्रोटयन्ती शिरांसि ।
तेषां रक्तं पिबन्ती घुघुट्-घुट्-घुटा घोटयन्ती पिशाचान्
तृप्तास्तृप्ता हसन्ती खखल्-खल्-खला शाम्भवी वः पुनातु ॥१३॥

ध्यानम् ॥

ॐ महिषघ्नीं महादेवीं कुमारीं सिंहवाहिनीम् ।
दानवाँस्तर्जयन्तीश्च सर्वकामदुघां शिवाम् ॥ १ ॥

ध्यायामि मनसा दुर्गां नाभिमध्ये व्यवस्थिताम् ।
आगच्छ वरदे ! देवि ! दैत्यदर्पनिपातिनि ॥ २ ॥

पूजां गृहाण सुमुखि ! नमस्ते शङ्करप्रिये ।
सर्वतीर्थमयं वारि सर्वदेवसमन्वितम् ॥ ३ ॥

इमं घटं समागच्छ तिष्ठ देवगणैः सह ।
दुर्गे ! देवि ! समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय ॥ ४ ॥

बलिपूजां गृहाण त्वमष्टाभिः शक्तिभिः सह ।
अस्मिन् घटे समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु ॥ ५ ॥

रक्षां कुरु सदा भद्रे ! विश्वेश्वरि ! नमोऽस्तु ते ।
एह्येहि दुर्गे दुरितौघनाशिनि प्रचण्डदैत्यौघविनाशकारिणि ।
उमे ! महेशार्द्धशरीरधारिणि स्थिरा भव त्वं मम यज्ञकर्मणि ॥

एहि दुर्गे ! महाभागे ! रक्षार्थं मम सर्वदा ।
आवाहयाम्यहं देवि ! सर्वकामार्थसिद्धये ॥

अथ वेदोक्तलक्ष्मीपूजनविधिः ।

अथ आवाहनम्-ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥

आगच्छेह महादेवि सर्वसम्पत्प्रदायिनि ।
यावद्व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधो भव ॥ इत्यावाहनम् ॥

आसनम्—ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

दुर्गे ! देवि ! सुरेशानि ! ज्ञानमार्गप्रदे ! शिवे ! ।
आसनं मणिभूषाढ्यं गृहाण त्वं सुरेश्वरि ! ॥ इत्यासनम् ॥

पाद्यम्—ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥

कात्यायनि ! महादुर्गे ! चामुण्डे ! शङ्करप्रिये ! ।
पाद्यं गृहाण देवेशि ! भद्रकालि नमोऽस्तु ते ।।

अर्घ्यम्—ॐ कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां
तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।
जगत्पूज्ये ! त्रिलोकेशि ! सर्वदानवभञ्जिनि ! ।
अष्टांगार्घ्यं गृहाण त्वं देवि ! विश्वार्तिहारिणि ।। इत्यर्घ्यम् ।।

मधुपर्कम्—ॐ मधुव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः ।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ।।
दधि-मधु-घृत-समायुक्तं पात्रयुग्मसमन्वितम् ।
मधुपर्कं गृहाण त्वं शुभदा भव शोभने ! ।। इति मधुपर्कम्

आचमनम्—ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्म्मे नश्यतां त्वां
वृणोमि।।
पूरितं स्वर्णपात्रे च गांगेयं निर्मलं जलम् ।
ददाम्याचमनं तुभ्यं स्वस्ति कुरु महेश्वरि ।। इत्याचमनम् ।।

स्नानम्—ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ
बिल्वः । तस्य फलानि तपसा नुदन्तु म अन्तरा याश्च
बाह्या अलक्ष्मीः ।।
ज्ञानमूर्त्ते ! भद्रकालि ! दिव्यमूर्त्ते ! सुरेश्वरि ।
स्नानं गृहाण देवेशि ! तीर्थोदकविभूषितम् ।।
इति स्नानम् ।।

पुनराचमनीयम्—ॐ उच्छिष्टोप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ।।

स्नानवस्त्रोपवीतान्तेऽपि तत्स्मृतम् ।।

स्नेहस्नानम्—ॐ अꣳशुना ते ऽअꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्युतः ।।

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकेश्वरि महानघे ।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ।।

दुग्धस्नानम्—ॐ पयः पृथिव्यां पय ऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे
पयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ।।

कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ।।

दधिस्नानम्—ॐ दधि क्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत् ।।

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

घृतस्नानम्—ॐ घृतं घृनपावानः पिबत व्वसां वसापावानः
पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश
ऽआदिशो व्विदिश उदिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।।

नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

मधुस्नानम्—ॐ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु
द्यौरस्तु नः पिता ।।

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु ।
तेजः पुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।

शर्करास्नानम्—ॐ अपाꣳ रसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् ।

अपाꣳ रसस्योरसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयाम गृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका ।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

पञ्चामृतस्नानम्—ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत् सरित् ॥

पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करान्वितम् ।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

गन्धस्नानम्—ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥
मलयाचलसम्भूतं चन्दनाऽगरुसम्भवम् ।
चन्दनं देवि देवेशि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

उद्वर्तनम्—ॐ अꣳशुना ते ऽअꣳशुः पृच्यताम्परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्युतः ॥
नानासुगन्धिद्रव्यं च चन्दनं रंजनीयुतम् ।
उद्वर्तनं मया दत्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

शुद्धजलेन स्नानम्—ॐ शुद्धबालः सर्वशुद्धबालो मणिबालस्त
ऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये
कर्ण्णायामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्याः ॥

वस्त्रयुग्मम्—ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतो सुराष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥
पट्टकूलयुगं देवि ! कंचुकेन समन्वितम् ।
परिधेहि कृपां कृत्वा दुर्गे दुर्गतिनाशिनी ॥
इति युग्मवस्त्रम्, पुनः आचमनम् ॥

यज्ञोपवीतम्—ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्णुद मे गृहात् ॥

स्वर्णसूत्रमयं दिव्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥

चन्दनम्— गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।
श्रीखण्डागरुकस्तूरिरोचनाभिः सुसंयुतम् ।
गृहाण गन्धं देवेशि ! सर्वकामफलप्रदे ! ।।इति चन्दनम्।।

सौभाग्यसूत्रदानम्—ॐ सौभाग्यसूत्रं वरदे सुवर्णमणिसंयुतम् ।
कण्ठे बध्नामि देवेशि सौभाग्यं देहि मे सदा ॥
कण्ठसूत्रं समर्पयामि नमः ॥

अक्षतान्—ॐ अक्षन्नमी मदन्त ह्यव प्रिया ऽअधूषत । अस्तोषत
स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥

अक्षतान्निर्मलान् शुद्धान् मुक्तामणिसमन्वितान् ।
गृहाणेमान् महादेवि ! देहि मे निर्मलां धियम् ॥
इत्यक्षतान् समर्पयामि नमः ॥

हरिद्राचूर्णम्—ॐ हरिद्रारंजिते देवि ! सुखसौभाग्यदायिनि ।
तस्मात्त्वं पूजयाम्यत्र सुखं शान्ति प्रयच्छ मे ॥
इति हरिद्राचूर्णं समर्पयामि नमः ॥

गुलालम्—कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनोकामसम्भवम् ।
कुंकुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥
इति गुलालं समर्पयामि नमः ॥

सिन्दूरम्—सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
अर्पितं ते मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥
इति सिन्दूरं समर्पयामि नमः ॥

कज्जलम्—चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे शान्तिकारकम् ।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि ॥
इति नेत्रे कज्जलं समर्पयामि नमः ॥

दूर्वाङ्कुरान्—ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥

दूर्वादलश्यामले त्वं महोरूपे हरिप्रिये ।
अतो दूर्वाभिर्भवतीं पूजयामि सदाशिवे ॥
इति दूर्वान् समर्पयामि नमः ॥

बिल्वपत्राणि—ॐ आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥
अमृतोद्भव-श्रीवृक्षो महादेवप्रियः सदा ।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥
इति बिल्वपत्राणि समर्पयामि नमः ॥

पल्लवम्—ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतिं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥
गृहद्वारे चोग्रमपि दुष्टासुरनिर्वाहिणी ॥
पूजां करोमि चार्वङ्गि पल्लवैर्नन्दनोद्भवैः ॥
इति पल्लवानि समर्पयामि नमः ॥

फलमालाम्—ॐ महादेवीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि
तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥
शरत्काले समुद्भूतां निशुम्भासुरमर्दिनीम् ।
फलमालां वरां देवि ! गृहाण सुरपूजिते ! ॥
इति फलमालां समर्पयामि नमः ॥

रत्नमालाम्——ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ।।

मुक्ताफलयुतां मालां रत्नवैदूर्यसुप्रभाम् ।
माणिक्यसुवर्णग्रथितां गृह्यतां वरदे नमः ।।

इति रत्नमालां समर्पयामि नमः ।।

पुष्पमालाम्——ॐ आपः स्रजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
निच देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ।।
पद्मपङ्कजपुष्पादिशतपत्रैर्विचित्रताम् ।।

पुष्पमालां प्रयच्छामि गृहाण त्वं सुरेश्वरि ! ।।
इति पुष्पमालां समर्पयामि नमः ।।

पुष्पाणि——ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ।।

नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् ।
प्रयच्छामि च पुष्पाणि गृहाण त्वं सुरेश्वरि ! ।।

इति पुष्पाणि समर्पयामि नमः ।।

पुष्पपत्राणि——कुन्द-मन्दारपुन्नागपाटली-नागकेशरम् ।
आरग्वधं कर्णिकारं जयन्तीं नवमल्लिकाम् ।।

सौगन्धिकं सकङ्कोलं पुन्नागाऽशोक-मल्लिकाम् ।
अन्यान्यपि सुगन्धीनि पुष्पपत्राणि देवि ते ।।
इति शक्तिपुष्पाणि समर्पयामि नमः ।।

अलङ्कारम्——हार-कङ्कण-केयूर-मेखला-कुण्डलादिभिः ।
रत्नाढ्यकुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ।।
इत्यलङ्कारं समर्पयामि नमः ।।

परिमलद्रव्याणि——ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति वाहुञ्ज्याया हेतिं

परिबाधमानः। हस्तघ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान्पुमान्पुमाꣳसं परिपातु व्विश्वतः ॥

चन्दनागरुकर्पूरं कुंकुमं रोचनं तथा ।
कस्तूर्यादिसुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपय ॥
इति परिमलद्रव्य समर्पयामि नमः ॥

धूपम्—ॐ यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चञ्च श्रीकामः सततं जपेत् ॥
गुग्गुलुगन्धसंयुक्तमगुर्वादिसमायुतम् ॥
दशाङ्गं गृह्ण धूपं तु भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥
धूपमाघ्रापयामि नमः ॥

दीपम्—ॐ सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे । भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥

सुरक्तसूत्रसद्वर्त्ति गोघृतेन च पूरितम् ।
दीपं गृहाण देवेशि नमः त्रैलोक्यसुन्दरि ॥
इति दीपं दर्शयामि नमः ॥

नैवेद्यम्—दिव्यान्नरससंपुष्टं नानाभक्ष्यैस्तु संस्कृतम् ।
चोष्य-पेय-समायुक्तमन्नं देवि गृहाण मे ॥
इति नैवेद्यं निवेदयामि नमः ॥

आचमनम्—आचम्यतां महादेवि भक्ति मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥
इत्याचमनं समर्पयामि नमः ॥

करोद्वर्तनम्—करोद्वर्तनकं देवि सुगन्धैः परिवासितैः ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च पराङ्गतिम् ॥
करोद्वर्तनार्थे गन्धं समर्पयामि नमः ॥

हस्तप्रक्षालनार्थे जलम्—गन्धतोयं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
हस्तप्रक्षालनार्थाय पानीयं ते निवेदये ।।
इति हस्तप्रक्षालनार्थे जलं समर्पयामि नमः ।।

ऋतुफलम्—ॐ याः फलिनीर्य्या अफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ।।
नानाफलानि दिव्यानि ऋतुकालोद्भवानि च ।
पूगीफलैश्च सहितान्यम्ब त्वामर्चयाम्यहम् ।।
इति फलानि समर्पयामि नमः ।।

ताम्बूलपूगीफलम्—ॐ तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् । यस्यां हिरण्यं प्रभूतिं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ।।
गृहाण देवि ताम्बूलं कर्पूरेण सुवासितम् ।
पूगीफलसमायुक्तं सचूर्णं मुखमण्डनम् ।।
इति ताम्बूलं समर्पयामि नमः ।।

दक्षिणाद्रव्यम्—ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
पूजायाः सङ्ग्रहार्थं तु दक्षिणा दीयते मया ।
तां गृहाण महेशानि पूजां मे सफलां कुरु ।।
इति दक्षिणां समर्पयामि नमः ।।

ध्यानम्—दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ।। इति नत्वा ।।

ज्योतिःपूजनम्—ॐ भूर्भुवः स्वः आद्यायै सर्वसुरौजोद्भवतेजःस्वरूप-श्रीदुर्गायै नमः ।।

ॐ जातवेदसे सुनवामसोमराती यतो निदहाति वेदः । स न पर्षदति दुर्गाणि विश्वानामेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ।।

पाद्यादिभिः पूजनं विधाय ।।

ध्यानम्—प्रधानसाधारविकल्पसत्तां स्वभाव-भावाद्भुवनत्रयस्य ।
सा विद्यया व्यक्तमपीह माया ज्योतिः परा पातु जगत्तु नित्यम् ।।

आर्तिक्यम्—ॐ आरात्त्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्प्रायि धामभिः ।
दिवः सदाꣳसि बृहती व्वितिष्ट्ठस ऽआत्वेषं व्वर्तते तमः ।।
चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वं ज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ।।

मन्त्रपुष्पाञ्जलिः—ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्न्यासन् । ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ।।

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे । स मे कामान्कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ।। कुबेराय वैश्रवणाय राजाधिराजाय महाराजाय नमः ।। ॐ स्वस्ति । साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात् । पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया ऽएकराडिति ।। तदप्येष श्लोकोभिगीतो ।। मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे । आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः ।। ॐ विश्वतश्च्चक्षुरुत व्विश्वतो मुखो व्विश्वतो बाहुरुत व्विश्श्वतस्प्पात् ।। सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्त्रैर्द्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽएकः ।। मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि नमः ।।

शेवन्तिका-बकुल-चम्पक-पाटलाऽब्जैः
पुन्नाग-जाति-करबीर-रसाल-पुष्पैः ।

विल्व–प्रवाल–तुलसीदल—मञ्जरीभिः
त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद ।।
पापोऽहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसंभवः ।
त्राहि मां सर्वदा मातः सर्वपापहरा भव ।।

प्रदक्षिणा—ॐ यः शुचि प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चंञ्च श्रीकामः सततं जपेत् ।।
ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ।।
नमस्ते देवदेवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे ।
नमस्ते जगतां धात्रि ! नमस्ते शंकरप्रिये ! ।।
नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ।।
इति प्रदक्षिणा ।।

—:०:—

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ।। १ ।।
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि ! सकलोद्धारिणि शिवे !
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।। २ ।।
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे !
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।। ३ ।।

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥
परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥ ५ ॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदम्
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६ ॥
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥
न मोक्षस्याकांक्षा भव-विभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडाणी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किंचन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं तवैव करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परावृतं नहि माता समुपेक्षते सुतम् ।।११।।

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा नहि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवी यथायोग्यं तथा कुरु ।।
अनया पूजया श्रीमहालक्ष्मीः प्रीयतां न मम ।।

—:०:—

अथ श्रीगुरुपादुका-पूजनम्—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम् ।
आसनञ्च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ।। आसनं समर्पयामि ।।
उष्णोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ।। पाद्यं समर्पयामि ।।
अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह ।
करुणां कुरु मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।।
अर्घ्यं समर्पयामि ।।
सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धि निर्मलं जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर ।। आचमनीयं जलं समर्पयामि ।।
गङ्गा-सरस्वती-रेवा-पयोष्णी-नर्मदा-जलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव ! तथा शांतिं कुरुष्व मे ।। स्नानं समर्पयामि ।।
पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करायुतम् ।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ।।
पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।।

मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
तदिदं कल्पितं देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ॥
सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥
वस्त्रं समर्पयामि ॥ आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥
ॐ सुजातो ज्ज्योतिषा सह शर्म्म व्वरूथमासदत्स्वः ।
व्वासोऽअग्ग्ने व्विश्श्वरूपꣳ संव्ययस्व व्विभावसो ॥
उपवस्त्रं समर्पयामि ॥ आचमनीयं जलं समर्पयामि ।
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ गन्धं समर्पयामि ॥
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ॥
अक्षतान्समर्पयामि ॥
पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैः कुमुदैरथ चम्पकैः ।
पूजार्थं दीयते तुभ्यं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥
पुष्पाणि समर्पयामि ॥
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ॥
पुष्पमालां समर्पयामि ॥
वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
धूपमाघ्रापयामि ॥
आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥
दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ॥

शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
नैवेद्यं निवेदयामि ॥

अतितृप्तिकरं तोयं सुगन्धि च पिबेच्छया ।
त्वयि तृप्ते जगत्तृप्तं नित्यतृप्ते महात्मनि ॥
मध्ये आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥

नारिकेलफलं जम्बूफलं नारङ्गमुत्तमम् ।
कूष्माण्डं पुरतो भक्त्या कल्पितं प्रतिगृह्यताम् ॥
ऋतुफलं समर्पयामि ॥

गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
आचम्यतां गुरुश्रेष्ठ शुद्धमाचमनीयकम् ॥
आचमनीयं जलं समर्पयामि ॥

पूगोफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
ताम्बूलपत्रं पूगीफलं समर्पयामि ॥

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥
दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि ॥

चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
आर्तिक्यं समर्पयामि ॥

नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥
पुष्पांजलिं समर्पयामि ॥

प्रार्थना

निषक्तमणिपादुकं नियमिताघकोलाहलं
स्फुरत्किसलयारुणं नखसमुन्मिषच्चन्द्रिकम् ।
परामृत-सरोवरोदितसरोजरोचिष्णु तद्
भजामि शिरसि स्थितं गुरुपदारविन्दद्वयम् ।।

।। अथ गुरुमण्डलार्चनपद्धतिः ।।

हरिः ॐ व्यासपूजां प्रवक्ष्यामि सम्यक्संसिद्धिसिद्धये ।
कृत्वानुष्ठानमाषाढ्यां पूजांगे सन्निधापयेत् ।। १ ।।
प्राणायामत्रयं कृत्वा षडंगं न्यासपूर्वकम् ।
व्यासपूजां करिष्यामि इत्युक्त्वा सलिलं स्पृशेत् ।। २ ।।

तत्रायं प्रयोगः । नित्यक्रियानन्तरं क्षौरादिकं कृत्वा मठादिस्थलमागत्य पादप्रक्षालनं कृत्वा आचमनानन्तरं पूजास्थाने आसने उपविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा आसनबन्धादिकं प्रणवस्य ऋष्यादिषडंगन्यासं कृत्वा देशकालादि स्मृत्वा ब्राह्मणैः सह व्यासपूजां करिष्यामीति संकल्प्य पीठादौ मध्ये अष्टदलकमलकर्णिकायां १ ॐ आं आधारशक्त्यै नमः । २ ॐ कूं कूर्माय नमः । ३ ॐ अं अनन्ताय नमः । ४ ॐ पं पृथिव्यै नमः । ५ ॐ क्षीं क्षीरसमुद्राय नमः । ६ ॐ श्वें श्वेतद्वीपाय नमः । ७ ॐ मं मणिमण्डपाय नमः । ८ ॐ कं कल्पवृक्षाय नमः। ९ ॐ रं रत्नवेदिकायै नमः । १० ॐ रं रत्नसिंहासनाय नमः । ॐ सं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । कृष्णस्याग्नेये ॐ गं गणेशाय नमः गणेशं आवाहयामि १ । नैर्ऋते ॐ सं सरस्वत्यै नमः सरस्वतीं आवाहयामि । २ । वायव्ये ॐ दुं दुर्गायै नमः दुर्गां आवाहयामि ३ । ईशान्ये ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपालं आवाहयामि ४ । इति पीठकोणेषु । कृष्णपञ्चकस्य आग्नेयकोष्ठे ॐ ब्रह्मणे नमः ५ । ईशानकोष्ठे ॐ रुद्राय नमः ६ । पीठमध्ये ॐ कृष्णाय नमः ७ । कृष्णपूर्वे ॐ वासुदेवाय नमः ८ । तद्दक्षिणे ॐ संकर्षणाय नमः ९ ।

पश्चिमे ॐ प्रद्युम्नाय नमः १० । उत्तरे ॐ अनिरुद्धाय नमः ११ । इति कृष्णपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्य दक्षिणे मध्यकोष्ठे ॐ वेदव्यासाय नमः १२ । तत्पूर्वे ॐ वैशम्पायनाय नमः १३ । तद्दक्षिणे ॐ सुमन्तवे नमः १४ । तत्पश्चिमे जैमिनये नमः १५ । तदुत्तरे पैलाय नमः १६ । इति व्यासपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्योत्तरे मध्यकोष्ठे श्रीशङ्कराचार्येभ्यो नमः १७ । तत्पूर्वे विश्वरूपाचार्येभ्यो नमः १८ । तद्दक्षिणे पद्मपादाचार्येभ्यो ममः १९ । तत्पश्चिमे हस्तामलकाचार्येभ्यो नमः २० । तदुत्तरकोष्ठे त्रोटकाचार्येभ्यो नमः २१ । इति शंकरपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्य पश्चिमे मध्यकोष्ठे सनकाय नमः २२ । तत्पूर्वे सनन्दनाय नमः २३ । तद्दक्षिणे सनातनाय नमः २४ । तत्पश्चिमे सनत्कुमाराय नमः २५ । तदुत्तरे कपिलाय नमः २६ । इति सनकादिपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्य नैर्ऋते मध्यकोष्ठे ऋषभदेवाय नमः २७ । तत्पूर्वे दत्तात्रेयाय नमः २८ । तद्दक्षिणे शुकाय नमः २९ । तत्पश्चिमे नारदाय नमः ३० । तदुत्तरे संवर्त्ताय नमः ३१ । इति ऋषभादिपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्य वायव्ये मध्यकोष्ठे श्वेतकेतवे नमः ३२ । तत्पूर्वे दुर्वाससे नमः ३३ । तद्दक्षिणे जडभरताय नमः ३४ । तत्पश्चिमे रैवताय नमः ३५ । तदुत्तरे वामदेवाय नमः ३६ । इति श्वेतकेतुपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्य पूर्वे मध्यकोष्ठे द्रविडाचार्येभ्यो नमः ३७ । तत्पूर्वे गोविन्दभगवत्पूज्यपादाचार्येभ्यो नमः ३८ । तद्दक्षिणे गौडपादाचार्येभ्यो नमः ३९ । तत्पश्चिमे विवरणाचार्येभ्यो नमः ४० । तदुत्तरे समस्तब्रह्मविद्याप्रवर्त्तकाचार्येभ्यो नमः ४१ । इति द्रविडाचार्यपञ्चकम् । कृष्णपञ्चकस्याग्नेये मध्यकोष्ठे गुरुभ्यो नमः ४२ । तत्पूर्वे परमगुरुभ्यो नमः ४३ । तद्दक्षिणे परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः ४४ । तत्पश्चिमे परात्परगुरुभ्यो नभः ४५ । तदुत्तरे समस्तब्रह्मविद्यासम्प्रदायिभ्यो नमः ४६ । इति गुर्वादिपञ्चकम् ।

कृष्णपञ्चकस्य ईशान्ये मध्यकोष्ठे आत्मने नमः ४७ । तत्पूर्वे कोष्ठे अन्तरात्मने नमः ४८ । तद्दक्षिणकोष्ठे परमात्मने नमः ४९ । तत्पश्चिमकोष्ठे सर्वात्मने नमः ५० । तदुत्तरकोष्ठे परब्रह्मणे नमः ५१ ॥ ततो दिक्षु मण्डले ॥ पूर्वे इन्द्राय नमः ५२ । आग्नेये अग्नये नमः ५३ । दक्षिणे यमाय नमः ५४ । नैर्ऋत्ये निर्ऋतये नमः ५५ । पश्चिमे वरुणाय नमः ५६ । वायव्ये वायवे नमः ५७ । उत्तरे सोमाय नमः ५८ । ईशान्ये ईशानाय नमः ५९ । ईशानपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्मणे नमः ६० । निर्ऋति-वरुणयोर्मध्ये अनन्ताय नमः ६१ । इति देवतास्तल्लिङ्गमन्त्रैरथवा प्रणवादिनमोन्तैस्तत्तन्नाममन्त्रैरावाह्य संस्थाप्य यथामिलितोपचारैः सम्पूज्य स्तुत्वा नमेत् । पश्चाद्धूप-दीप-आरार्त्तिकं कृत्वा नैवेद्यं समर्पयेत् । पुनराचमनं दत्वा नीराजनं कुर्यात् । ताम्बूलदक्षिणां दद्यात् । तत्र सम्प्रदायविदः । पश्चाद्द्याद्दन्तकाष्ठं वस्त्रचन्दन-दोरकान् । दन्तकाष्ठमृत्तिकाकटिसूत्रकौपीनचन्दनगोपीचन्दनकर्पूरमुखवासलवङ्गहरीतकीत्यादि समर्पयेत् । अथ पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ॐ लक्ष्मीकलत्रं शतपत्रनेत्रं पूर्णेन्दुवक्त्रं पुरुहूतमित्रम् ।
कारुण्यपात्रं कमनीयगात्रं वन्दे पवित्रं वसुदेवपुत्रम् ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय शुद्धरूप-स्वरूपिणे ।
हिरण्यरेतसे तुभ्यं प्राधान्यवस्तुरूपिणे ॥ २ ॥
नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षि-शिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ ३ ॥
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं प्रभुम् ।
मन्मथं मथुरानाथं प्रद्युम्नं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
अनिरुद्धं महोदारं कामिनं सुन्दरप्रियम् ।
नमाम्यहं प्रपन्नेशं फुल्लेन्दीवरलोचनम् ॥ ५ ॥

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण प्रणवेन वा पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् ।

इति कृष्णपञ्चकपुष्पाञ्जलिः ।

वेदव्यासं स्वात्मरूपं सत्यसिन्धुं परायणम् ।
शान्तेन्द्रियं जितक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम् ।
अनेन मन्त्रेण प्रणवेन वा पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् ।

इति व्यासपञ्चकपुष्पाञ्जलिः ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं परमानन्दवेदिनम् ।
ब्रह्मण्यं शंकराचार्यं प्रणमामि विवेकिनम् ।।
परात्परतरं शान्तं योगीन्द्रं योगिसेवितम् ।
शान्तेन्द्रियं जितक्रोधं सशिष्यं प्रणमाम्यहम् ।।
अनेन मन्त्रेण प्रणवेन वा पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् ।

इति शंकराचार्यपुष्पाञ्जलिः ।

श्रीनाथादि गुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम्
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम्
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ।।
अनया पूजया श्रीगुरुमण्डलं प्रीयताम् ।।
इति व्यासपूजाविधिः ।। श्रीगुरुदेवार्पणमस्तु ।।

अथ सूर्यादिग्रहाणां स्थापनक्रमः ।।

स्कान्दे ।। ईशाने मण्डलं कृत्वा ग्रहाणां स्थापनं ततः ।
वृत्तमण्डलमादित्यमर्धचन्द्रं निशाकरम् ।।
त्रिकोणं मङ्गलं चैव बुधं च धनुषाकृतिम् ।
गुरुमष्टदलं प्रोक्तं चतुष्कोणं च भार्गवम् ।।
नराकृतिं शनिं विन्द्याद्राहुं च मकराकृतिम् ।
केतुं खड्गसमं ज्ञेयं ग्रहमण्डलके शुभे ।। १ ।।

अथ प्रकारान्तरम् ॥

वृत्तमण्डलमादित्यं चतुरस्रं निशाकरम् ।
त्रिकोणं मङ्गलं चैव बुधं वै बाणसन्निभम् ॥

गुरवे पट्टिशाकारं पञ्चकोणं भृगुं तथा ।
मन्दे च धनुषाकारं सूर्पाकारं तु राहवे ॥

केतवे च ध्वजाकारं मण्डलानि क्रमेण तु ।
शुक्रार्कौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरु–सौम्यावुदङ्मुखौ ॥

प्रत्यङ्मुखौ शनिः–सोमौ शेषा दक्षिणतो मुखाः ।
मध्ये तु भास्करं विन्द्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे ॥

दक्षिणे लोहितं विन्द्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम् ॥

पश्चिमे तु शनिं विन्द्याद्राहुं दक्षिणपश्चिमे ।
पश्चिमोत्तरतः केतुं इत्येषा ग्रहसंस्थितिः ॥

आदित्याभिमुखाः सर्वे साऽधिप्रत्यधिदेवताः ।
अधिदेवता दक्षिणे च वामे प्रत्यधिदेवताः ॥

अरुणौ सूर्य-भौमौ च श्वेतौ शुक्र-निशाकरौ ।
हरितवर्णो बुधश्चैव पीतवर्णो गुरुस्तथा ॥
कृष्णवर्णाः शनिः-राहु-केतवस्तु तथैव च ॥

ततः पूर्वनिर्मितहस्तमात्रं चतुरस्रं ग्रहवेद्यां श्वेतवस्त्रं प्रसार्य नवग्रहमण्डलं विलिख्य मध्यादिकोष्ठेषु उक्तदिक्षु विदिक्षु सूर्यादिग्रहाणां स्थापनं पूजनं च कुर्यात् ॥

॥ अथ सूर्याद्यावाहनम् ॥

जपाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं सूर्यमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कलिङ्गदेशोद्भव काश्यपसगोत्र रक्तवर्ण

भो सूर्य ! इहागच्छ इह तिष्ठ सूर्याय नमः । सूर्यमावहयामि स्थापयामि ॥ १ ॥

दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् ।
ज्योत्स्नापतिं निशानाथं सोममावाहयाम्यहम् ॥

ॐ इमन्देवा ऽअसपत्नꣳ सुवद्द्ध्वं महते क्षत्त्राय महते ज्ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्ज्यायेन्द्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्यपुत्त्रममुष्यै पुत्त्रमस्यै व्विश ऽएष वोमीराजा सोमो ऽस्माकं ब्ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यमुनातीरोद्भव आत्रेयसगोत्र शुक्लवर्ण भो सोम इहागच्छ इह तिष्ठ सोमाय नमः । सोममावाहयामि स्थापयामि ॥ २ ॥

धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्तेजस्समप्रभम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं च भौममावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अग्निर्म्मूर्द्धादिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम् । अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अवन्तिकापुरोद्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भो भौम इहागच्छ इह तिष्ठ भौमाय नमः । भौममावाहयामि स्थापयामि ॥ ३ ॥

प्रियङ्गुकलिकाभासं रूपेणाऽप्रतिमं बुधम् ।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं बुधमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ग्ने प्प्रतिजागृहि त्वमिष्ट्टापूर्तेसꣳ सृजेथामयञ्च । अस्मिन्त्सधस्थे ऽअद्ध्युत्तरस्म्मिन्विश्श्वेदेवा यजमानश्श्च सीदत ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र हरितवर्ण भो बुध इहागच्छेह तिष्ठ बुधाय नमः । बुधमावाहयामि स्थापयामि ॥४॥

देवानां च मुनीनां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
वन्द्यभूतं त्रिलोकानां गुरुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ बृहस्पते ऽअतियदर्यो ऽअर्हाद्युमद्विभातिक्क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्प्रजात तदस्म्मासु द्रविणं धेहि चित्त्रम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरससगोत्र पीतवर्ण भो बृहस्पते ! इहागच्छेह तिष्ठ । बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि ॥ ५ ॥

हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् ।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं शुक्रमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्त्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्त्यमिन्द्रियं व्विपानꣳ शुक्क्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोमृतम्मधु ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्लवर्ण भो शुक्र ! इहागच्छेह तिष्ठ । शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि ॥६॥

नीलाम्बुजसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्तण्डसम्भूतं शनिमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ शं नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये । शं य्योरभिस्रवन्तु नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपसगोत्र कृष्णवर्ण भो शनैश्चर ! इहागच्छेह तिष्ठ । शनैश्चराय नमः शनैश्चरंमावाहयामि ॥ ७ ॥

अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।
सिंहिकागर्भसम्भूतं राहुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ कया नश्श्चित्र ऽआभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया व्वृता ।

ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनापुरोद्भव पैठिनसगोत्र कृष्णवर्ण भो राहो ! इहागच्छेह तिष्ठ । राहवे नमः राहुमावाहयामि ॥८॥

पालाशधूम्रसङ्काशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रोद्रं रौद्रात्मकं घोरं केतुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्य्या ऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अन्तर्वेदिसमुद्भव जैमिनिसगोत्र कृष्णवर्ण भो केतो ! इहागच्छेह तिष्ठ । केतवे नमः केतुमावाहयामि ॥९॥

ततोऽधिदेवतास्थापनं[1] ग्रहदक्षिणपार्श्वे—

पञ्चवक्त्रं वृषारूढमुमेशञ्च त्रिलोचनम् ।
आवाहयामीश्वरं तं खट्वाङ्गवरधारिणम् ॥

ॐ त्र्यम्बकं य्यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ईश्वर ! इहागच्छेह तिष्ठ । ईश्वराय नमः ईश्वरमावाहयामि ॥ १ ॥

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम् ।
लम्बोदरस्य जननीमुमामावाहयाम्यहम् ॥

श्रीश्श्च ते लक्ष्मीश्श्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्श्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ।

---

(१) स्कान्दे—शिवः शिवो गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रयमकालकाः ।
चित्रगुप्तोऽथ भान्वादि दक्षिणे चाऽधिदेवताः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अयि देवि उमे ! इहागच्छेह तिष्ठ । उमायै नमः उमामावाहयामि ।। २ ।।

रुद्रतेजःसमुत्पन्नं देवसेनाग्रगं विभुम् ।
षण्मुखं कृत्तिकासूनुं स्कन्दमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ यदक्क्रन्दः प्रथमं जायमान ऽउद्यन्त्समुद्राद्रुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यम्महि जातन्ते ऽअर्व्वन् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो स्कन्द ! इहागच्छेह तिष्ठ । स्कन्दाय नमः स्कन्दमावाहयामि ।। ३ ।।

देवदेवं जगन्नाथं भक्तानुग्रहकारकम् ।
चतुर्भुजं रमानाथं विष्णुमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ व्विष्ष्णो रराटमसि व्विष्ष्णोः श्न्नप्त्रेस्थो व्विष्ष्णोः स्यूरसि व्विष्ष्णोर्द्ध्रुवोऽसि । व्वैष्ष्णवमसि व्विष्ष्णवे त्वा ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो विष्णो ! इहागच्छेह तिष्ठ । विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ।। ४ ।।

कृष्णाजिनाऽम्बरधरं पद्मसंस्थं चतुर्मुखम् ।
वेदाधारं निरालम्बं विधिमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ आ ब्ब्रह्मन्न्ब्राह्मणो ब्ब्रह्मवर्च्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्न्यः शूर ऽइषव्व्योऽतिव्व्याधी महारथो जायतां दोग्ग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्प्तिः पुरन्धिर्य्योषा जिष्ष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्न्यो व्वर्षतु फलवत्त्यो न ऽओषधयः पच्च्यन्न्तां योगक्षेमो नः कल्प्पताम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् ! इहागच्छेह तिष्ठ । ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि ।। ५ ।।

देवराजं गजारूढं शुनासीरं शतक्रतुम् ।
वज्रहस्तं महाबाहुमिन्द्रमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ सजोषा ऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब व्वृत्रहा शूर व्विद्वान् । जहि शत्रूँ२ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि व्विश्श्वतो नः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो इन्द्र ! इहागच्छेह तिष्ठ । इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ।। ६ ।।

धर्मराजं महावीर्यं दक्षिणादिक्पतिं प्रभुम् ।
रक्तेक्षणं महाबाहुं यममावाहयाम्यहम् ।।

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्मः पित्त्रे ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो यम ! इहागच्छेह तिष्ठ । यमाय नमः यममावाहयामि ।। ७ ।।

अनाकारमनन्ताख्यं वर्त्तमानं दिने दिने ।
कलाकाष्ठादिरूपेण कालमावाहयाम्यहम् ।।

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्त्या ऽउन्नयामि । समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो काल ! इहागच्छेह तिष्ठ । कालाय नमः कालमावाहयामि ।। ८ ।।

धर्मराजसभासंस्थं कृताकृतविवेकिनम् ।
आवाहयेच्चित्रगुप्तं लेखनीपत्रहस्तकम् ।।

ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो चित्रगुप्त ! इहागच्छेह तिष्ठ । चित्रगुप्ताय नमः चित्रगुप्तमावाहयामि ।। ९ ।।

ततः प्रत्यधिदेवतास्थापनं[1] ग्रहवामपार्श्वे ॥

रक्तमाल्याम्बरधरं रक्तपद्मासनस्थितम् ।
वरदाभयदं देवमग्निमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ२ ऽआसादयादिह ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो अग्ने ! इहागच्छेह तिष्ठ । अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ १ ॥

आदिदेवसमुद्भूता जगच्छुद्धिकराः शुभाः ।
औषध्याप्यायनकरा अपामावाहयाम्यहम् ॥

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो भोः अप ! इहागच्छत इह तिष्ठत । अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि ॥ २ ॥

शुक्लवर्णां विशालाक्षीं कूर्मपृष्ठोपरि स्थिताम् ।
सर्वशस्याश्रयां देवीं धरामावाहयाम्यहम् ॥

ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अयि देवि पृथिवि ! इहागच्छेह तिष्ठ पृथिव्यै नमः पृथिवीमावाहयामि ॥ ३ ॥

शङ्ख-चक्र-गदा-पद्महस्तं गरुडवाहनम् ।
किरीटकुण्डलधरं विष्णुमावाहयाम्यहम् ॥

---

[1] टि० १ स्कान्दे । अग्निरापो धरा विष्णुः शक्रेन्द्राणी पितामहाः ।
पन्नगाकः क्रमाद्वामे ग्रहप्रत्यधिदेवताः ॥

ॐ इदं व्विष्णुर्व्विचक्क्रमे त्त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो विष्णो ! इहागच्छेह तिष्ठ । विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि ॥ ४ ॥

ऐरावतगजारूढं सहस्राक्षं शचीपतिम् ।
वज्रहस्तं सुराधीशमिन्द्रमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ इन्द्र ऽआसां नेता बृहस्पतिर्द्दक्षिणा यज्ञः पुर ऽएतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्ग्रम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो इन्द्र ! इहागच्छेह तिष्ठ । इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ ५ ॥

प्रसन्नवदनां देवीं देवराजस्य वल्लभाम् ।
नानाऽलङ्कारसंयुक्तां शचीमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः । पूषासि घर्म्माय दीष्व ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः अयि देवि इन्द्राणि ! इहागच्छेह तिष्ठ । इन्द्राण्यै नमः इन्द्राणीमावाहयामि ॥ ६ ॥

आवाहयाम्यहं देवदेवेशं च प्रजापतिम् ।
अनेकव्रतकर्तारं सर्वेषां च पितामहम् ॥

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो व्विश्श्वा रूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्तु व्वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो प्रजापते ! इहागच्छेह तिष्ठ । प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि ॥ ७ ॥

अनन्ताद्यान् महाकायान् नानामणिविराजितान् ।
आवाहयाम्यहं सर्प्पान् फणासप्तकमण्डितान् ।।

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो भोः सर्पा ! इहागच्छत इह तिष्ठत । सर्प्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि ।। ८ ।।

हंसपृष्ठसमारूढं देवतागणपूजितम् ।
आवाहयाम्यहं देवं ब्रह्माणं कमलासनम् ।।

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुररताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः । स बुद्ध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् ! इहागच्छेह तिष्ठ । ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि ।। ९ ।।

ततो विनायकादिपञ्चलोकपालदेवता वास्तोष्पतिं क्षेत्रपालं चाऽऽवाहयेत् ।।

लम्बोदरं महाकायं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् ।
आवाहयाम्यहं देवं गणेशं सिद्धिदायकम् ।।

ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम । आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो गणपते ! इहागच्छेह तिष्ठ । गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि ।। १ ।।

पत्तने नगरे ग्रामे विपिने पर्वते गृहे ।
नानाजातिकुलेशानीं दुर्गामावाहयाम्यहम् ।।

ॐ अम्बे ऽअम्बिकेम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः अयि देवि दुर्गे ! इहागच्छेह तिष्ठ । दुर्गायै नमः दुर्गामावाहयामि ।। २ ।।

आवाहयाम्यहं वायुं भूतानां देहधारिणम् ।
सर्वाधारं महावेगं मृगवाहनमीश्वरम् ।।

ॐ व्वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि । नियुत्त्वान्त्सोमपीतये ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वायो ! इहागच्छेह तिष्ठ । वायवे नमः वायुमावाहयामि ।। ३ ।।

अनाकारं शब्दगुणं द्यावाभूम्यन्तरस्थितम् ।
आवाहयाम्यहं देवमाकाशं सर्वगं शुभम् ।।

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत व्वसां व्वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश ऽऽआदिशो व्विदिश ऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो आकाश ! इहागच्छेह तिष्ठ । आकाशाय नमः आकाशमावाहयामि ।। ४ ।।

देवतानां च भैषज्ये सुकुमारौ भिषग्वरौ ।
आवाहयाम्यहं देवावश्विनौ पुष्टिवर्द्धनौ ।।

ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः भो भोः अश्विनौ ! इहागच्छतामिह तिष्ठताम् । अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि ।। ५ ।।

वास्तोष्पतिं विदिक्कायं भूशय्याभिरतं प्रभुम् ।
आवाहयाम्यहं देवं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो ऽअनमीवो भवा नः । यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वास्तोष्पते ! इहागच्छेह तिष्ठ । वास्तोष्पतये नमः वास्तोष्पतिमावाहयामि ॥ ६ ॥

भूत-प्रेत-पिशाचाद्यैरावृतं शूलपाणिनम् ।
आवाहये क्षेत्रपालं कर्मण्यस्मिन्सुखाय नः ॥

ॐ नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्श्वानरात्पुरऽएतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं व्वैश्श्वानरङ्क्षैत्त्रजित्त्याय देवाः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो क्षेत्राधिपते ! इहागच्छेह तिष्ठ । क्षेत्राधिपतये नमः क्षेत्राधिपतिमावाहयामि ॥ ७ ॥

अथ मण्डलाद्बाह्ये दशदिक्पालानावाहयेत्—

इन्द्रं सुरपतिश्रेष्ठं वज्रहस्तं महाबलम् ।
आवाहये यज्ञसिद्ध्यै शतयज्ञाधिपं प्रभुम् ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठँ हवे हवे सुहवठँ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्क्रम्पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो इन्द्र ! इहागच्छेह तिष्ठ । इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि ॥ १ ॥

त्रिपादं सप्तहस्तं च द्विमूर्द्धानं द्विनासिकम् ।
षण्नेत्रं च चतुःश्रोत्रमग्निमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ त्वन्नो अग्ग्ने तव देव पायुभिर्म्मघोनो रक्ष तन्न्वश्च्च व्वन्द्य । त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषꣳ रक्षमाणस्तव व्व्रते ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो अग्ने ! इहागच्छेह तिष्ठ । अग्नये नमः अग्निमावाहयामि ॥ २ ॥

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम् ।
यज्ञसंरक्षणार्थाय यममावाहयाम्यहम् ॥

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्त्रे ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो यम ! इहागच्छेह तिष्ठ । यमाय नमः यममावाहयामि ॥ ३ ॥

सर्वप्रेताधिपं देवं निर्ऋतिं नीलविग्रहम् ।
आवाहये यज्ञसिद्ध्यै नरारूढं वरप्रदम् ॥

ॐ असुन्न्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्त्यामन्न्विहि तस्क्करस्य । अन्न्यमस्म्मदिच्छ सा त ऽइत्त्या नमो देवि निर्ऋते तुब्भ्यमस्तु ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो निर्ऋते ! इहागच्छेह तिष्ठ । निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि ॥ ४ ॥

शुद्धस्फटिकसङ्काशं जलेशं यादसां पतिम् ।
आवाहये प्रतीचीशं वरुणं सर्वकामदम् ॥

ॐ तत्त्वा यामि ब्ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्ब्भिः । अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशꣳ स मा न ऽआयुः प्रमोषीः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण ! इहागच्छेह तिष्ठ । वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि ॥ ५ ॥

मनोजवं महातेजं सर्वतश्चारिणं शुभम् ।
यज्ञसंरक्षणार्थाय वायुमावाहयाम्यहम् ॥

ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरद्ध्वरठं सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । व्वायो ऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो वायो ! इहागच्छेह तिष्ठ । वायवे नमः वायुमावाहयामि ॥ ६ ॥

आवाहयामि देवेशं धनदं यक्षपूजितम् ।
महाबलं दिव्यदेहं नरयानगतिं विभुम् ॥

ॐ व्वयठं सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्प्रजावन्तः सचेमहि ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो सोम ! इहागच्छेह तिष्ठ । सोमाय नमः सोममावाहयामि ॥ ७ ॥

सर्वाधिपं महादेवं भूतानां पतिमव्ययम् ।
आवाहये तमीशानं लोकानामभयप्रदम् ॥

ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्प्पतिं धियञ्जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् । पूषा नो यथा व्वेदसामसद्द्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भो ईशान ! इहागच्छेह तिष्ठ । ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि ॥ ८ ॥

पद्मयोनिं चतुर्मूर्तिं वेदगर्भं पितामहम् ।
आवाहयामि ब्रह्माणं यज्ञसंसिद्धिहेतवे ॥

ॐ अस्म्मे रुद्द्रा मेहना पर्व्वतासो व्वृत्त्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः सठंसते स्तुवते धायि पज्ज्र ऽइन्द्रज्ज्येष्ठा ऽअस्म्माँ२ ऽअवन्तु देवाः ॥

पूर्वेशानयोर्मध्ये ॐ भूर्भुवः स्वः भो ब्रह्मन् ! इहागच्छेह तिष्ठ । ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि ।। ९ ।।

अनन्तं सर्वनागानामधिपं विश्वरूपिणम् ।
जगतां शान्तिकर्तारं मण्डले स्थापयाम्यहम् ।।

ॐ स्योना प्पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म्म सप्प्रथाः ।। निर्ऋति-पश्चिमयोर्मध्ये ।। ॐ भूर्भुवः स्वः भो अनन्त ! इहागच्छेह तिष्ठ । अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि ।। १० ।।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ।।

ॐ मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्प्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्ट्टं य्यज्ञꣳ समिमन्दधातु । व्विश्श्वेदेवास ऽइह मादयन्तामों३ प्रतिष्ठ ।।

ॐ सूर्यादि-अनन्तान्तदेवताः सुप्रतिष्ठताः वरदाः भवन्तु ।। सूर्यादि-अनन्तान्तदेवताभ्यो नमः इति मन्त्रेण आसनाद्युपचारैः प्रत्येकमेकत्र वा काण्डानुसमयेन पदार्थानुसमयेन वा षोडशोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।।

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ।।११।।

ॐ ग्रहा ऽऊर्ज्जाहुतयो व्व्यन्तो व्विप्प्राय मतिम् । तेषां व्विशिप्प्रियाणां व्वोहमिषमूर्ज्जꣳ समग्ग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्ट्टङ्गृह्णाम्म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्ट्टतमम् ।। इति प्रार्थना ।।

अनया पूजया सूर्यादि-अनन्तान्तदेवताः प्रीयन्ताम् ।।

ततो गृहस्येशानदिग्भागे कलशस्थापनविधिना रुद्रकलशं संस्थाप्य कलशे वरुणं असंख्यातरुद्रांश्चाऽऽवाह्य पूजयेत् ।। तद्यथा ।।

ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्द्रा ऽअधि भूम्म्याम् । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ।। असङ्ख्यातरुद्रेभ्यो नमः असङ्ख्यातरुद्रानावाहयामि ।।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्ज्यस्य बृहस्पतिर्य्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्ट्टं य्यज्ञꣳ समिमन्दधातु । व्विश्श्वेदेवास ऽइह मादयन्तामों३ प्रतिष्ठ ।। इति मन्त्रेण प्रतिष्ठाप्य ।। असङ्ख्यातरुद्रेभ्यो नमः इति सम्पूज्य ।।

अथ पंचभूसंस्काराग्निस्थापन-कुशकण्डिकाकरणम् ।।

अस्मिन् गुरुमंडलार्चनाख्ये कर्मणि पंचभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं च करिष्ये । अथ पंचभू-संस्कारः ।। कुशैः परिसमुह्य, तान्कुशानैशान्यां परित्यज्य ।।१।। गोमयोदकाभ्यामुपलिप्य ।।२।। स्रुवेणोल्लिख्य ।।३।। अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मृदमुद्धृत्य ।।४।। जलेनाभ्युक्ष्य ।।५।।

ॐ अग्निन्दूतम्पुरोदधे हव्यवाहमुप ब्ब्रुवे । देवाँ२ ऽआसादयादिह ।। इत्यग्निं स्थापयेत् ।।

अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनम् ।। अग्नेरुत्तरतः प्रणीतासनद्वयम् ।। ब्रह्मासने ब्रह्मोपवेशनम् ।। यावत्कर्म समाप्यते तावत्त्वं ब्रह्मा भव, इति यजमानः ।। भवामीति ब्रह्मा वदेत् ।। ब्रह्मणाऽनुज्ञातः प्रणीताप्रणयनम् ।। तत्र क्रमः ।। प्रणीतापात्रं पुरतः कृत्वा वारिणा परिपूर्य कुशैराच्छाद्य प्रथमासने निधाय ब्रह्मणो मुखमवलोक्य द्वितीयासने निदध्यात् ।। ईशानादिपूर्वाग्रैः कुशैः परिस्तरणम् ।। तद्यथा ।। ततो बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय ।। आग्नेयादीशानान्तम्, उदगग्रैर्वा ।। ब्रह्मणोऽग्निपर्यन्तं प्रागग्रैः, नैर्ऋत्याद्वायव्यान्तम्, उदगग्रैर्वा ।। अग्नितः प्रणीतापर्यन्तं प्रागग्रैः, इतरथावृत्तिः ।। अथ पात्रासादनं पश्चादुत्तरतो वा स्यात् तद्यथा ।।

त्रीणि पवित्रे द्वे ॥ प्रोक्षणीपात्रम् ॥ आज्यस्थाली ॥ चरुस्थाली ॥ सम्मार्जनकुशाः पञ्च ॥ उपयमनकुशाः सप्त ॥ समिधस्तिस्रः ॥ स्रुवः ॥ आज्यम् ॥ तण्डुलाः ॥ पूर्णपात्रम् ॥ उपकल्पनीयानि द्रव्याणि निधाय (पवित्रच्छेदनानि) द्वयोरुपरि त्रीणि निधाय ॥ द्वौ मूलेन प्रदक्षिणीकृत्य सर्वान् युगपदनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां धृत्वा ॥ त्रिभिश्छिद्य ॥ द्वौ ग्राह्यौ त्रिस्त्याज्यः ॥ प्रोक्षणीपात्रे प्रणीतोदकमासिच्य (त्रिः पूर्णं) पवित्राभ्यामुत्पवनम् ॥ प्रोक्षण्याः सव्यहस्तकरणम् ॥ दक्षिणेनोद्दिङ्गनम् ॥ प्रणीतोदकेन प्रोक्षणीप्रोक्षणम् ॥ प्रोक्षण्युदकेन आज्यस्थाल्याः प्रोक्षणम् ॥ चरुस्थाल्याः प्रोक्षणम् ॥ संमार्जनकुशानां प्रोक्षणम् ॥ उपयमनकुशानां प्रोक्षणम् ॥ समिधां प्रोक्षणम् ॥ स्रुवस्य प्रोक्षणम् ॥ आज्यस्य प्रोक्षणम् ॥ तण्डुलानां प्रोक्षणम् ॥ पूर्णपात्रस्य प्रोक्षणम् ॥ उपकल्पनीयानां पदार्थानां प्रोक्षणम् ॥ असञ्चरे प्रोक्षणीर्निधाय ॥ आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः ॥ चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकासेकपूर्वकं तण्डुलप्रक्षेपः ॥ ब्रह्मणो दक्षिणत आज्याधिश्रयणम् ॥ चरोरधिश्रयणं स्वयमाज्यस्योत्तरतः ज्वलदुल्मुकेनोभयोः पर्यग्निकरणम् ॥ इतरथावृत्तिः ॥ उदकोपस्पर्श अर्धश्रिते चरौ अधोमुखस्य स्रुवस्य प्रतपनम् ॥ सम्मार्जनकुशैः स्रुवस्योर्ध्वमुखस्य सम्मार्जनम् ॥ अग्रैरन्तरतो मूलैर्बाह्यतः स्रुवं सम्मृज्य ॥ प्रणीतोदकेनाभ्युक्षणम् ॥ सम्मार्जनकुशानामग्नौ प्रक्षेपः ॥ पुनः प्रतपनं दक्षिणदेशे निधानम् ॥ आज्योद्वासनम् ॥ चरुं पूर्वेणानीयाऽग्नेरुत्तरतः स्थापयेत् ॥ चरोरुद्वासनम् ॥ अग्नेरुत्तरत एवाज्यस्य प्रदक्षिणीकृत्य आज्यस्योत्तरतश्चरुं स्थापयेत् ॥ आज्योत्पवनम् ॥ आज्यावेक्षणम् ॥ अपद्रव्यनिरसनम् ॥ पुनः प्रोक्षण्युत्पवनम् ॥ वामहस्ते उपयमनकुशानादाय ॥ उत्तिष्ठन् समिधोभ्यादाय घृताक्ताः समिधस्तिस्रः अग्नौ क्षिपेत् ॥ प्रोक्षण्युदकेन सपवित्रहस्तेन ईशानादि अग्नेः प्रदक्षिणं

पर्युक्षणम् ॥ इतरथावृत्तिः ॥ पवित्रयोः प्रणीतासु निधानम् ॥ दक्षिणं जान्वाच्य ॥ ब्रह्मणा कुशैरन्वारब्धः ॥ समिद्धतमेऽग्नौ स्रुवेणाज्यहोमः ॥ अग्नेरुत्तरभागे ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम ॥ अग्नेर्दक्षिणभागे ॥ ॐ इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय न मम ॥ समिद्धतमे ॥ ॐ अग्नये स्वाहा । इदमग्नये न मम ॥ ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम ॥

इत्याज्यभागौ हुत्वा । अनन्वारब्धः प्रधानाहुतीर्जुहुयात् । प्राणादिपञ्चमन्त्रैः समिच्चर्वाज्यानि प्रतिद्रव्यं सकृत्सकृत् । ॐ प्राणाय स्वाहा । इदं प्राणाय न मम ॥ ॐ अपानाय स्वाहा । इदमपानाय न मम ॥ ॐ व्यानाय स्वाहा । इदं व्यानाय न मम ॥ ॐ उदानाय स्वाहा । इदमुदानाय न मम ॥ ॐ समानाय स्वाहा । इदं समानाय न मम ॥

ततः पुरुषसूक्तस्य षोडशर्चैः प्रत्यृचं क्रमेण द्रव्यत्रयाणि जुहुयात् ।

हरिः ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिठं सर्व्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १ ॥

पुरुष ऽएवेदठं सर्व्वं य्यद्भूतं य्यंच्च भाव्व्यम् ।
उतामृत त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य व्विश्श्वा भूतानि त्त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ३ ॥

त्रिपाद्दूर्ध्वं ऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो व्विष्ष्वङ् व्व्यक्क्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ४ ॥

ततो व्विराडजायत व्विराजो ऽअधि पूरुषः ।
स जातो ऽअत्यरिच्च्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्क्रे व्वायव्व्यानारण्या ग्राम्म्याश्च्च ये ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाम न मम ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्म्माद्यजुस्तम्मादजायत ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ७ ॥

तस्म्मादश्श्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्जाता अजावयः ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ८ ॥

तं य्यज्ञं बर्हिषि प्प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्ग्रतः ।
तेन देवा ऽअयजन्त साद्ध्या ऽऋषयश्श्च ये ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ९ ॥

यत्पुरुषं व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्प्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा ऽउच्च्येते ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १० ॥

ब्ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्न्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्द्वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्द्रो ऽअजायत ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्श्चक्षोः सूर्य्यो ऽअजायत ।
श्श्रोत्राद्वायुश्श्च प्प्राणश्श्च मुखादग्निरजायत ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १२ ॥

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्याम्भूमिर्द्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ऽअकल्पयन् ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्न्वत ।
व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ्ग्रीष्म्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञन्तन्वाना ऽअबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥
स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम ॥१६॥

अथ विरजामन्त्रैः प्रतिमन्त्रमेतैरेव द्रव्यैः क्रमेण प्रतिद्रव्यं सकृत्सकृदेकोनविंशदाहुतीर्जुहुयात् । तद्यथा । ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं प्राणादिभ्यो न मम । ॐ वाङ्मनश्चक्षुश्श्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिः सङ्कल्पा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं वागादिभ्यो न मम । ॐ त्वक्चममांसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं त्वगादिभ्यो न मम । ॐ शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजङ्घाशिश्नोपस्थपायवो मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं शिर आदिभ्यो न मम । ॐ उत्तिष्ठ पुरुष हरितपिंगललोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं पुरुषाय न मम । ॐ पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशा मे शुध्यन्तां

ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं पृथिव्यादिभ्यो न मम । ॐ शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं शब्दादिभ्यो न मम । ॐ मनोवाक्कायकर्माणि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं मन आदिभ्यो न मम । ॐ अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदमव्यक्तादिभ्यो न मम । ॐ आत्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदमात्मने न मम । ॐ अन्तरात्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदमन्तरात्मने न मम । ॐ परमात्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदं परमात्मने न मम । ॐ क्षुधे स्वाहा । इदं क्षुधे न मम । ॐ क्षुत्पिपासायै स्वाहा । इदं क्षुत्पिपासायै न मम । ॐ विविघ्न्यै स्वाहा । इदं विविघ्न्यै न मम । ॐ ऋग्विधानाय स्वाहा । इदं ऋग्विधानाय न मम । ॐ कर्षोत्काय स्वाहा । इदं कर्षोत्काय न मम । ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धि च सर्वान्निर्णुद मे पाप्मानꣳ स्वाहा । इदमग्नये न मम । ॐ अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानंदमयमात्मा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳ स्वाहा । इदमन्नमयादिभ्यो न मम ।

ततः सूर्यादिग्रहाणां अधिदेवता-प्रत्यधिदेवतागणपत्यादि पञ्चलोकपाल--वास्तोष्पति-क्षेत्रपालदेवतानां इन्द्रादिदशदिक्पालदेवतानां च प्रत्येकं समित्तिलचर्वाज्यद्रव्यैः अष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा जुहुयात् ॥

ॐ गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा
प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम ।
आहमजानि गर्ब्भधमा त्त्वमजासि गर्ब्भधम् स्वाहा ॥ १ ॥

ॐ अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्श्वकः सुभद्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् स्वाहा ।। २ ।।

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् स्वाहा ।।१।।

ॐ इमं देवा ऽअसपत्क्नठँ सुबद्ध्वम्महते क्षत्राय महते
ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ।
इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै व्विश ऽएष वोमी राजा
सोमो ऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा स्वाहा ।। २ ।।

ॐ अग्निम्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्व्या ऽअयम् ।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति स्वाहा ।। ३ ।।

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सठँसृजेथामयञ्च ।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन्विश्श्वे देवा यजमानश्च सीदत
स्वाहा ।। ४ ।।

ॐ बृहस्पते ऽअतियदर्य्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणन्धेहि चित्रम्
स्वाहा ।। ५ ।।

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्त्रम्पयः
सोमम्प्रजापतिः । ऋतेन सत्त्यमिन्द्रियं व्विपानठँ शुक्क्रमन्धस
ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतम्मधु स्वाहा ।। ६ ।।

ॐ शन्नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये ।
शं य्योरभि स्रवन्तु नः स्वाहा ।। ७ ।।
ॐ कया नश्चित्र ऽआभुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया व्वृता स्वाहा ।। ८ ।।
ॐ केतुङ्कृण्वन्न केतवे पेशो मर्य्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः स्वाहा ।। ९ ।।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् स्वाहा ॥ १० ॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण स्वाहा ॥ ११ ॥

ॐ यदक्क्रन्दः प्रथमं जायमान ऽउद्यन्त्समुद्द्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू ऽउपस्तुत्यं महि जातन्ते
ऽअर्व्वन् स्वाहा ॥१२॥

ॐ व्विष्णो रराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रेस्त्थो व्विष्णोः स्यूरसि
व्विष्णोर्द्ध्रुवोसि । व्वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा स्वाहा ॥१३॥

ॐ आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्च्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्यो
ऽतिव्व्याधी महारथो जायतान्दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य
व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो व्वर्षतु फलवत्यो न
ऽओषधयः पच्च्यन्तां योगक्षेमो नः कल्प्पताम् स्वाहा ॥ १४ ॥

ॐ सजोषा ऽइन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमम्पिब व्वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँ२ रष मृधो नुद स्वाथाभयङ्कृणुहि व्विश्वतो
नः स्वाहा ॥ १५ ॥

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।
स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे स्वाहा ॥ १६ ॥

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि ।
समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः स्वाहा ॥ १७ ॥

ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय स्वाहा ॥ १८ ॥

ॐ अग्निन्दूतं पुरोदधे हव्व्यवाहमुपब्ब्रुवे ।
देवाँ२ ऽआसादयादिह स्वाहा ॥ १९ ॥

ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽऊर्ज्जे दधातन ।
महेरणाय चक्षसे स्वाहा ॥ २० ॥

ॐ स्योना प्पृथिवी नो भवान्नृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म्म सप्प्रथाः स्वाहा ॥ २१ ॥

ॐ इदं व्विष्णुर्विचक्क्रमे त्त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ २२ ॥

ॐ इन्द्र ऽआसान्नेता बृहस्पतिर्द्दक्षिणा यज्ञः पुर ऽएतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जन्तीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्ग्रम्
स्वाहा ॥ २३ ॥

ॐ अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः ।
पूषासि घर्म्माय दीष्व स्वाहा ॥ २४ ॥

ॐ प्प्रजापते न त्वदेतान्न्यन्न्यो विश्श्वा रूपाणि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्तु व्वयꣳ स्याम पतयो रयीणाꣳ
स्वाहा ॥ २५ ॥

ॐ नमोऽस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः स्वाहा ॥२६॥

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेन ऽआवः ।
सबुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः
स्वाहा ॥ २७ ॥

ॐ गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे
निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम । आहमजानि
गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् स्वाहा ॥ २८ ॥

ॐ अम्बे ऽअम्बिके ऽम्बालिके न मा नयति कश्श्चन ।
ससस्त्यश्श्वकः सुभद्द्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् स्वाहा ॥ २९ ॥

ॐ व्वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरागहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये स्वाहा ॥ ३० ॥

ॐ घृतङ् घृतपावानः पिबत व्वसां व्वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य
हविरसि स्वाहा । दिशः प्रदिश ऽआदिशो व्विदिश ऽउद्दिशो
दिग्भ्यः स्वाहा ॥ ३१ ॥

ॐ या वाङ्कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ।
तया यज्ञम्मिमिक्षतम् ॥ ३२ ॥

ॐ वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्स्वावेशो ऽअनमीवो भवानः ।
यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे
स्वाहा ॥ ३३ ॥

ॐ नहि स्पशमविदन्नन्यमस्म्माद्वैश्वानरात्पुर ऽएतारमग्ग्नेः ।
एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं व्वैश्वानरङ् क्षैत्रजित्याय देवाः
स्वाहा ॥ ३४ ॥

ॐ त्वन्नो ऽअग्ग्ने तव देव पायुभिर्म्मघोनो रक्ष तन्वश्श्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्य निमेषठं रक्षमाणस्तव
व्व्रते स्वाहा ॥ ३५ ॥

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा ।
स्वाहा घर्म्माय स्वाहा घर्म्मः पित्रे स्वाहा ॥ ३६ ॥

ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्त्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्म्मदिच्छ सात ऽइत्त्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु
स्वाहा ॥ ३७ ॥

ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो व्वरुणेह बोद्ध्युरुशठं स मा न ऽआयुः प्प्रमोषीः
स्वाहा ॥ ३८ ॥

ॐ आनो नियुद्भिः शतिनीभिरद्ध्वरठं सहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ।
व्वायोऽअस्म्मिन्त्सवने मादयस्व यूयम्पात स्वस्तिभिः सदा नः
स्वाहा ॥ ३९ ॥

ॐ व्वयᳬठ सोम व्व्रते तव मनस्तनूषु विब्भ्रतः ।
प्प्रजावन्तः सचेमहि स्वाहा ॥ ४० ॥

ॐ तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्न्वमवसे हूमहे व्वयम् ।
पूषा नो यथा व्वेद सामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये
स्वाहा ॥ ४१ ॥

ॐ अस्म्मे रुद्द्रा मेहना पर्व्वतासो व्वृत्त्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शᳬसते स्तुवते धायि पज्र ऽइन्द्र ज्येष्ठा ऽअस्म्माँ२ ऽअवन्तु
देवाः स्वाहा ॥ ४२ ॥

ॐ स्योना प्पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छानः शर्म्म सप्प्रथाः स्वाहा ॥ ४३ ॥

आज्याहुतिं जुहुयादनेन मन्त्रेण । ॐ यदिष्टं यच्च पूर्तं यच्चापद्यनापदि । प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोऽहं देवकिल्विषात्स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ ॐ इषे त्वोर्ज्जेत्वा व्वायवस्थ देवो वः सविता प्प्रार्प्पयतु श्श्रेष्ठतमाय कर्म्मण ऽआप्प्यायद्ध्वमग्घ्न्या ऽइन्द्राय भागम्प्रजावतीरनमीवा ऽअयक्ष्मा मावस्तेन ऽईशतमाघशᳬ सोद्ध्रुवा ऽअस्मिन्गोपतौ स्यातवह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि । ॐ अग्ग्ने ऽआयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सिबर्हिषि । ॐ शन्नो देवोरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ ततश्चरोरुत्तरार्धादसंसृष्टामाहुतिभिर्जुहोति स्विष्टकृतम् । स्रुवेणैव ॥ ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते न मम । इति हुतशेषाऽऽज्यस्य प्रोक्षणीपात्रे प्रक्षेपः । आज्येन प्रायश्चित्तहोमः । ॐ भूः स्वाहा । इदमग्नये न मम । ॐ भुवः स्वाहा । इदं वायवे न मम । ॐ स्वः स्वाहा । इदं सूर्याय न मम । ॐ त्वन्नो ऽअग्ग्ने व्वरुणस्य व्विद्वान्देवस्य हेडो ऽअवया-

सिसीष्ठाः । यजिष्ठो व्वह्नितमः शोशुचानो व्विश्श्वा द्वेषाꣳसि प्प्रमुमुग्ध्यस्म्मत्स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ॐ स त्वन्नो ऽअग्ने वमोभवोती नेदिष्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो व्वरुणꣳ रराणो व्वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि स्वाहा ।। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम । ॐ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्ति पाश्श्च सत्यमित्वमया ऽअसि । अयानो यज्ञं व्वहास्ययानो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ।। इदमग्नये अयसे न मम ।। ॐ ये ते शतं व्वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्न्नो ऽअद्य सवितोत व्विष्णुर्व्विश्श्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्क्काः स्वाहा ।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम ।। ॐ उदुत्तमं व्वरुण पाशमस्म्मदवाधमं व्विमध्यमꣳ श्श्रथाय । अथा व्वयमादित्य व्व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम स्वाहा ।। इदं वरुणायादित्यायादितये न मम ।। ॐ प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये न मम ।। इति नवाहुतयः ।।

ततः दिक्पालेभ्य एकतन्त्रेणैकमेव बलिं दद्यात् ।। ॐ प्राच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा प्प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहोर्द्ध्वायै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा ।। इन्द्रादि-दशदिक्पालेभ्यो नमः ।। इति सम्पूज्य (हस्ते जलं गृहीत्वा) इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्य एतान् सदीपदधिमाषभक्तबलीन् समर्पयामि ।। प्रार्थना ।। भो भो इन्द्रादिदशदिक्पालाः साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्तारः क्षेमकर्तारः शान्तिकर्तारः पुष्टिकर्तारः तुष्टिकर्तारः वरदा भवत ।। (ततो हस्ते जलं गृहीत्वा) अनेन बलिदानेन इन्द्रादिदशदिक्पालाः प्रीयन्ताम् ।। १ ।। सर्वेभ्यो

ग्रहेभ्यः एकतन्त्रणैकमेव बलिं दद्यात्। ॐ ग्रहा ऽऊर्ज्जाहुतयो व्व्यन्तो व्विप्प्राय मतिम्। तेषां व्विशिप्प्रियाणां व्वोहमिषमूर्ज्जꣳ समग्ग्रभमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्ट्टतमम् ।। ग्रहेभ्यो नमः इति। सम्पूज्य (हस्ते जलं गृहीत्वा) सूर्यादिनवग्रहेभ्यः साङ्गेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-गणपत्यादिपञ्चलोकपाल-वास्तोष्पतिसहितेभ्यः एतं स-दीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि ।। (प्रार्थना) भो भो सूर्यादिग्रहाः ! साङ्गाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-गणपत्यादिपञ्चलोकपाल-वास्तोष्पतिसहिताः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः वरदा भवत (हस्ते जलं गृहीत्वा) ।। अनेन बलिदानेन सूर्यादिग्रहाः प्रीयन्ताम्।

सङ्कल्पः ।। अस्मिन् गुरुमण्डलार्चनकर्मणि इमानि हवनीयद्रव्याणि या या यक्ष्यमाणदेवतास्ताभ्यस्ताभ्यो मया परित्यक्तं न मम ।। यथा दैवतानि सन्तु ।।

इति कुशकण्डिकाप्रकरणम्।

—:o:—

* अथ क्षेत्रपालबलिदानम् *

एकस्मिन् वंशादिपात्रे कुशानास्तीर्य तदुपरि मनुष्याहारचतुर्गुणं द्विगुणं वा माषदध्योदनं जलपात्रं च निधाय चतुर्मुखं दीपं प्रज्वाल्य हरिद्राकुङ्कुमादिपताकायुतं कृत्वा ।। ॐ नहि स्पशमविदन्नन्यमस्म्माद्वैश्श्वानरात्पुरऽएतारमग्ग्नेः। एमेनमवृधन्नमृताऽअमर्त्त्यं व्वैश्श्वानरं क्षैत्त्रजित्याय देवाः ।। क्षेत्रपालाय नमः, इति पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैर्वा सम्पूज्य प्रार्थयेत्। नमो वै क्षेत्रपालस्त्वं भूतप्रेतगणैः सह। पूजाबलिं गृहाणेमं सौम्यो भवतु सर्वदा ।। १ ।। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ।।

आयुः स्वास्थ्यञ्च मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा ।। २ ।। ततो बलिदानम्।।(हस्ते जलं गृहीत्वा) ।। क्षेत्रपालाय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय मारोगण-भैरव-राक्षस-कूष्माण्ड-वेताल-भूत-प्रेत-पिशाच-डाकिनी-पिशाचिनीगणसहिताय एतं स-दीप-दधि-माष-भक्तबलिं समर्पयामि ।। (प्रार्थना) भो क्षेत्रपाल ! क्षेत्रं रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य आयुःकर्ता क्षेमकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता वरदो भव ।। (हस्ते जलं गृहीत्वा) अनेन बलिदानेन क्षेत्रपालः प्रीयताम् ।। यजमानस्य मस्तकोपरि सकृद्भ्रामयित्वा शूद्रेण बलिं गृहीत्वा चतुष्पथे निक्षिपेत् ।। ततो यजमानस्तस्य पृष्ठतो द्वारपर्यन्तं गत्वा जलं क्षिपेत् हिंकारेणेति मन्त्रेण ।। ॐ हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहावक्क्रन्दाय स्वाहा प्प्रोथते स्वाहा प्प्रप्प्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा ग्घ्राताय स्वाहा निविष्ट्टाय स्वाहोपविष्ट्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा व्वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्ग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्प्रबुद्धाय स्वाहा व्विजृम्भमाणाय स्वाहा व्विच्चृत्ताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्त्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्प्रायणाय स्वाहा ।। यजमानः पाणिपादाः प्रक्षाल्याऽऽचम्य ।। ततः नारिकेलफलं रक्तवस्त्रवेष्टितं द्वादशषट्चतुःस्रुवेण गृहीतमाज्यं स्रुच्यां कृत्वा तस्योपरि नारिकेलफलं संस्थाप्य ॐ पूर्णाहुत्यै नमः इति षोडशोपचारैः सम्पूज्य, पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तत्र मन्त्रः ।। पूर्ण्णा दर्व्वि परापत सुपूर्ण्णा पुनरापत । व्वस्नेव व्विक्क्रीणावहा ऽइषमूर्ज्जꣳ शतक्क्रतो स्वाहा ।। १५ ।। इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नये अद्भ्यश्च न मम ।। ततोऽग्नि प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमदेशे प्राङ्मुख उपविश्य ।। ततः स्रुवेण भस्मानीय अनामिकया ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः, इति ललाटे ।। कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम् ।। यद्देवेषु त्र्यायुषम्,

इति दक्षिणवाहुमूले ।। तन्नो ऽअस्तु त्र्यायुषमिति हृदि ।। संस्रव-प्राशनम् ।। आचमनम् ।। पवित्राभ्यां मार्जनम् ।। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः ।।

※ अथ गुरुपूजा ※

कर्त्ता कृतनित्यक्रियः कृतोपवासः कृतमाङ्गलिकस्नानः स्वलङ्कृतः सौभाग्यकुङ्कुमेन कृततिलको बद्धशिखः कम्बलादौ प्रागग्रे स्वासने उपविश्य रक्षादीपं प्रज्वलय्य पवित्रपाणिः स्मार्त-विधिना द्विराचम्य प्राणानायम्य पूजनसामग्रीमत्मानं च संप्रोक्ष्य पाद्यपात्रं निधाय तत्र गन्ध-पुष्प-अक्षत-श्यामाक-दूर्वा-विष्णुक्रान्ता-तुलसीर्दत्वा तदुत्तरतोऽर्घ्यपात्रं निधाय तत्र गन्ध-पुष्प-यव-कुश-तिल-गौरसर्षप-दूर्वा-तुलसीः प्रक्षिप्य तदुत्तरत आचमनीयपात्रे एला-लवङ्ग-कर्पूर-कङ्कोल-जातीफल-उशीराणि प्रक्षिप्य पात्रत्रयेऽपि जलमापूर्य दधि-मधु-सर्पींषि मधुपर्कपात्र दत्वा गायत्र्या पाद्यद्रव्याणि प्रणवेनार्घ्यम्, व्याहृतिभिराचमनीयम् गायत्र्या मधुपर्कमभिमन्त्र्य गन्ध-पुष्प-वस्त्र-आभरणादि पूजाद्रव्याणि गायत्र्याऽभिमृशेत् ।

ततो नवकोष्ठां भूमिं सम्पाद्य पूर्वादितो मध्ये च दुग्ध-दधि-घृत-मधु-शर्करेति पञ्चामृत-पात्राणि निधाय विदिक्षु सुगन्धि-तैलामलकचूर्ण-सुगन्धितोदकानि विन्यस्य स्थापनक्रमेण नवसु पात्रेषु सद्रव्येषु नवदेवताः पूजयेत्—

१. ॐ विद्यायै नमः । २. ॐ अविद्यायै नमः । ३. प्रकृत्यै नमः । ४. ॐ मायायै नमः । ५. ॐ तेजस्विन्यै नमः । ६. ॐ प्रबोधिन्यै नमः । ७. ॐ सत्याय नमः । ८. ॐ रजसे नमः । ९. ॐ तमसे नमः । इति सम्पूज्य गायत्र्याऽभिमृशेत् । स्वशान्ति-पाठं पठेत् । तद्यथा—

ॐ आनो भद्द्रा: क्क्रतवो यन्तु व्विश्श्वतोऽदब्धासो ऽअपरीतास ऽउद्भिद: । देवा नो यथा सदमिद् वृधे ऽअसन्नप्प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।। १ ।।

देवानाम्भद्द्रा सुमति ऽऋजूयतान्देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा व्वयन्देवा न ऽआयु: प्रतिरन्तु जीवसे ।। २ ।।

तमीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पतिन्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम् ।
पूषा नो यथा व्वेदसा मसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्ध: स्वस्तये ।।३।।

स्वस्ति नऽ इन्द्रो व्वृद्धश्श्रवा: स्वस्ति न: पूषा व्विश्श्ववेदा: ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्ट्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।४।।

द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्ति: पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति: । व्वनस्पतय: शान्तिर्व्विश्श्वे देवा: शान्तिर्ब्ब्रह्म शान्ति: सर्वठं शान्ति: शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि ।।५।।

गणानान्त्वा गणपतिठं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिठं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिठं हवामहे व्वसो मम । आऽहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् ।। ६ ।।

अम्बे ऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
स सस्त्यश्वक: सुभद्द्रिकाङ्काम्पीलवासिनीम् ।।
ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नम: । ॐ उमामहेश्वराभ्यां नम: ।
ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नम: । ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नम: ।
ॐ मातृपितृचरणकमलेभ्यो नम: । ॐ इष्टदेवताभ्यो नम: ।
ॐ कुलदेवताभ्यो नम: । ॐ ग्रामदेवताभ्यो नम: ।
ॐ स्थानदेवताभ्यो नम: । ॐ वास्तुदेवताभ्यो नम: ।
ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नम: । ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नम: ।

ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

अभीप्सितार्थसिध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः ॥

तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्ति नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ।।
विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम् ।।

ततः प्रधानसंकल्पं कुर्यात् । स्वदक्षिणहस्ते अर्घ्यपात्रे कुशत्रयकुसुमयवफलद्रव्यजलादीन्यादाय । ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे सारस्वतप्रदेशे (अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे महाश्मशाने आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे) विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ ॐ तत्सदद्य महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेसु ग्रहेषु यथायथास्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणविशेषणविशिष्टायाममुकगोत्रः अमुकप्रवरान्वितोऽमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) समस्तभय-व्याधि-जरा-पीडा-मृत्यु-परिहारद्वारा आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम्, आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयोपशान्तिपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्षादिफलप्राप्त्यर्थं सर्वलोककल्याणार्थं च श्रीव्यासपूजां करिष्यामि । तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणपतिस्मरणमात्रं च करिष्ये । इति गणेशं सम्पूज्य—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।

पुण्डरीकाक्षः पुनातु । इति मन्त्रेण पूजनसामग्रीं सम्प्रोक्ष्य ।

ततः—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

ॐ परमसुखासनाय नमः । इत्यासनं सम्पूज्य—

ॐ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति भैरवाज्ञां गृहीत्वा—

ॐ ये भूतानामधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि ॥

इति छोटिकया दिग्बन्धनं कृत्वा 'ॐ भैरवाय नमः' इति वामपादेन भूमिं त्रिः सन्ताड्य—

ॐ ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने ।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डे चापराजिते ॥

इति शिखां बद्ध्वा । स्ववामभागे पूजाकलशं संस्थाप्य तत्र

ॐ इमम्मे व्वरुण श्श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥

इति मन्त्रेण वरुणं सम्पूज्य गायत्र्या दशवारमभिमन्त्र्य—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥

सर्वे समुद्राः सरितः तीर्थानि जलदाः नदाः ।
आयान्तु देवपूजार्थे दुरितक्षयकारकाः ॥

इति तीर्थान्यावाह्य—

ॐ कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले त्वस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥

कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।
अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशन्तु समाश्रिताः ।।

* अथ पीठपूजा *

गन्धपुष्पाक्षतैः पीठोपरि मध्ये—

ॐ आं आधारशक्त्यै नमः । ॐ कूं कूर्माय नमः । ॐ ॐ अनन्ताय नमः । ॐ पं पृथिव्यै नमः । ॐ क्षीं क्षीरसमुद्राय नमः । ॐ श्वें श्वेतद्वीपाय नमः । ॐ मं महिमण्डलाय नमः । ॐ कं कल्पवृक्षाय नमः । ॐ रं रत्नवेदिकायै नमः । ॐ रं रत्नसिंहासनाय नमः । ॐ सं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः ।

पीठदक्षिणे—ॐ दुर्गायै नमः । वामे—ॐ विघ्नेशाय नमः । अग्रे—ॐ गरुडाय नमः । ईशान्याम्—ॐ क्षेत्रपालाय नमः । आग्नेये—ॐ गणेशाय नमः । नैर्ऋत्ये—ॐ सरस्वत्यै नमः । वायव्ये—ॐ लक्ष्म्यै नमः । ततः—आवाहितपीठदेवताभ्यो नमः । इति गन्धाक्षतपुष्पाणि सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—

'सत्यज्ञानमनन्तरूपं परं धामैव सकलं पीठम् ।' इति ।।

ध्यानम्—श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवम्
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान् द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम्
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ।।

अथावरणपूजा—

(१) बिन्दौ—ॐ वेदव्यासाय नमः व्यासं पूजयामि । पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।।

इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

(२) त्रिकोणे—ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणं पू०[1] १ । ॐ रुद्राय नमः रुद्रं पू० २ । ॐ कृष्णाय नमः कृष्णं पू० ३ ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ॥

(३) षट्कोणे—ॐ [2]वासुदेवाय नमः वासुदेवं पू० १ । संकर्षणाय नमः सङ्कर्षणं पू० २ । प्रद्युम्नाय० प्रद्युम्नं पू० ३ । अनिरुद्धाय० अनिरुद्धं पू० ४ । वैशंपायनाय० वैशंपायनं पू० ५ । सुमन्तवे० सुमन्तुं पू० ६ ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम् ॥

(४) अष्टदले—ॐ जैमिनये० जैमिनिं० १ । पैलाय० पैलं० २ । गौडपादाचार्याय० गौडपादाचार्यं० ३ । गोविन्दाचार्याय० गोविन्दाचार्यं० ४ । शंकराचार्याय० शंकराचार्यं० ५ । नृसिंहाचार्याय० नृसिंहाचार्यं० ६ । महेश्वराचार्याय० महेश्वराचार्यं० ७ । भास्कराचार्याय० भास्कराचार्यं० ८ ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम् ।

(५) दशदले—ॐ महेन्द्राचार्याय० महेन्द्राचार्यं० १ । माधवाचार्याय० माधवाचार्यं० २ । जिष्ठाचार्याय० जिष्ठाचार्यं० ३ । विश्वरूपाचार्याय० विश्वरूपाचार्यं० ४ । पद्मपादाचार्याय० पद्मपादाचार्यं० ५ । हस्तामलकाचार्याय० हस्तामलकचार्यं० ६ । त्रोटकाचार्याय० त्रोटकाचार्यं० ७ । श्रीशुकाय० श्रीशुकं० ८ । वसिष्ठाय० वसिष्ठं० ९ । अरुन्धत्यै० अरुन्धतीं० १० ।

---

[1] पू० का अर्थ है 'पूजयामि' । [2] सब नामोंसे पूर्व ॐ बोलें ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम् ॥

(६) द्वादशदले—ॐ सनकाय नमः सनकमावाहयामि स्थापयामि १ । सनन्दनाय नमः सनन्दनमावाहयामि स्थापयामि २ । सनातनाय नमः सनातनमावाहयामि स्थापयामि ३ । सनत्कुमाराय नमः सनत्कुमारमावाहयामि स्थापयामि ४ । कपिलाय नमः कपिलं० ५ । ऋषभदेवाय नमः ऋषभदेवं० ६ । दत्तात्रेयाय नमः दत्तात्रेयं० ७ । नारदाय नमः नारदं० ८ । संवर्त्ताय नमः संवर्त्तं० ९ । श्वेतकेतवे नमः श्वेतकेतुं० १० । आसुरये नमः आसुरिं० ११ । पंचशिखाय नमः पंचशिखमावाहयामि स्थापयामि १२ ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम् ॥

(७) चतुर्दशदले—दुर्वाससे नमः दुर्वाससं० १ । जडभरताय नमः जडभरतं० २ । रैवताय नमः रैवतं० ३ । वामदेवाय नमः वामदेवं० ४ । द्रविडाचार्याय नमः द्रविडाचार्यं० ५ । गोविन्दभगवत्पूज्यपादाचार्याय नमः गोविन्दभगवत्पूज्यपादाचार्यं० ६ । गौडपादाचार्याय नमः गौडपादाचार्यं० ७ । विवरणाचार्याय नमः विवरणाचार्यं० ८ । समस्तब्रह्मविद्याप्रवर्त्तकाचार्येभ्यो नमः समस्तब्रह्मविद्याप्रवर्त्तकाचार्यान्० ९ । गुरवे नमः गुरुम्० १० । परमगुरवे नमः परमगुरुम्० ११ । परमेष्ठिगुरवे नमः परमेष्ठिगुरुम्० १२ । परात्परगुरवे नमः परात्परगुरुम्० १३ । समस्तब्रह्मविद्यासम्प्रदायिभ्यो नमः समस्तब्रह्मविद्यासम्प्रदायिनान् आवाहयामि स्थापयामि १४ ।

ॐ दयाब्धे त्राहि संसारसर्पान्मां शरणागतम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम् ॥

(८) षोडशदले—आत्मने नमः आत्मानम्० १ । अन्तरात्मने नमः अन्तरात्मानं० २ । परमात्मने नमः परमात्मानं० ३ । सर्वात्मने नमः सर्वात्मानं० ४ । परब्रह्मणे नमः परब्रह्मणं० ५ । दिव्यौघगुरवे नमः दिव्यौघगुरुम्० ६ । परमप्रकाशानन्दनाथाय नमः परमप्रकाशानन्दनाथं० ७ । परमेशानन्दनाथाय नमः परमेशानन्दनाथं० ८ । परशिवानन्दनाथाय नमः परशिवानन्दनाथं० ९ । कामेश्वरानन्दनाथाय नमः कामेश्वरानन्दनाथं० १० । मोक्षानन्दनाथाय नमः मोक्षनन्दनाथं० ११ । कामानन्दनाथाय नमः कामानन्दनाथं० १२ । अमृतानन्दनाथाय नमः अमृतानन्दनाथं० १३ । सिद्धौघगुरुभ्यो नमः सिद्धौघगुरून्० १४ । ईशानानन्दनाथाय नमः ईशानानन्दनाथं० १५ । तत्पुरुषानन्दनाथाय नमः तत्पुरुषानन्दनाथं० १६ ।

अष्टादशदले—अघोरानन्दनाथाय नमः अघोरानन्दनाथं० १ । वामदेवानन्दनाथाय नमः वामदेवानन्दनाथं० २ । सद्योजातानन्दनाथाय नमः सद्योजातानन्दनाथं० ३ । मानवौघगुरवे नमः मानवौघगुरुम्० ४ । पञ्चोत्तरानन्दनाथाय नमः पञ्चोत्तरानन्दनाथं० ५ । परमानन्दनाथाय नमः परमानन्दनाथं० ६ । सर्वज्ञानानन्दनाथाय नमः सर्वज्ञानानन्दनाथं० ७ । सर्वानन्दनाथाय नमः सर्वानन्दनाथं० ८ । सिद्धानन्दनाथाय नमः सिद्धानन्दनाथं० ९ । गोविन्दानन्दनाथाय नमः गोविन्दानन्दनाथं० १० । शङ्करानन्दनाथाय नमः शङ्करानन्दनाथ० ११ । उड्डीशानन्दनाथाय नमः उड्डीशानन्दनाथं० १२ । प्रकाशानन्दनाथाय नमः प्रकाशानन्दनाथं० १३ । विमर्शानन्दनाथाय नमः विमर्शा-

नन्दनाथं० १४ । आनन्दानन्दनाथाय नमः आनन्दानन्दनाथं० १५ । षष्ठीशानन्दनाथाय नमः षष्ठीशानन्दनाथं० १६ । ज्ञानानन्दनाथाय नमः ज्ञानानन्दनाथं० १७ । सत्यानन्दनाथाय नमः सत्यानन्दनाथं० १८ ।

विंशतिदले—पूर्णानन्दनाथाय नमः पूर्णानन्दनाथं० १ । मित्रेशानन्दनाथाय नमः मित्रेशानन्दनाथं० २ । स्वभावानन्दनाथाय नमः स्वभावानन्दनाथं० ३ । प्रतिमानन्दनाथाय नमः प्रतिमानन्दनाथं० ४ । सुभगानन्दनाथाय नमः सुभगानन्दनाथं० ५ । कौलेश्वरानन्दनाथाय नमः कौलेश्वरानन्दनाथं० ६ । कुलेश्वरानन्दनाथाय नमः कुलेश्वरानन्दनाथं० ७ । भोजानन्दनाथाय नमः भोजानन्दनाथं० ८ । विश्वानन्दनाथाय नमः विश्वानन्दनाथं० ९ । विमलानन्दनाथाय नमः विमलानन्दनाथं० १० । मदनानन्दनाथाय नमः मदनानन्दनाथं० ११ । भुवनानन्दनाथाय नमः भुवनानन्दनाथं० १२ । लीलानन्दनाथाय नमः लीलानन्दनाथं० १३ । स्वात्मानन्दनाथाय नमः स्वात्मानन्दनाथं० १४ । प्रियानन्दनाथाय नमः प्रियानन्दनाथं० १५ । अस्मद्गुरुभ्यो नमः अस्मद्गुरून्० १६ । एवमन्यकर्णिकायामपि 'अस्मद्गुरुभ्यो नमः' इत्युक्त्वा आवाहनं स्थापनं च कुर्यात् ।

ततः भूपुरे—पूर्वे इन्द्राय नमः इन्द्रमा० । आग्नेये० अग्निमा० । दक्षिणे यमाय नमः यममा० । नैर्ऋत्ये निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमा० । पश्चिमे वरुणाय नमः वरुणमा० । वायव्ये वायवे नमः वायुमा० । उत्तरे सोमाय नमः सोममा० । ऐशान्यां ईशानाय नमः ईशानमा० । ईशानपूर्वयोर्मध्ये—ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमा० । निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये अनन्ताय नमः अनन्तमा० ।

ततः—ॐ व्विश्वतश्चक्षुरुत व्विश्श्वतो मुखो व्विश्श्वतो बाहुरुत व्विश्श्वतस्प्पात् । सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी

जनयन्देव ऽएकः ।

इति मन्त्रेण प्रधानदेवस्य पाद-नाभि-वक्षःस्थलादि स्पृशेत् । प्रत्यालम्भनं मन्त्रावृत्तिः ।

ध्यानम्—ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

ॐ बृहस्पते सवितर्बोधयैनꣳ सꣳशितञ्चित्सन्तराꣳ सꣳशिशाधि । व्वर्द्धयैनम्महते सौभगाय व्विश्श्व ऽएनमनु मदन्तु देवाः ॥

आवाहनम्—संसारवृक्षमारूढं पतितं नरकार्णवम् ।
येन तूद्धवरितं तूर्णं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ बृहस्प्पते परिदीया रथेन रक्षोहा मित्त्राँ२ ऽअपब्बाधमानः । प्प्रभञ्जन्त्सेनाः प्प्रमृणो युधा जयन्नस्म्माकमेद्ध्यविता रथानाम् ॥

आसनम्—त्वमेव शरणं देव नान्यथा शरणं मम ।
अतः कारुण्यभावेन रक्ष मां शरणागतम् ॥

ॐ बृहस्प्पते ऽअति यदर्य्यो ऽअर्हा द्द्युमद्द्विभाति क्क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऽऋत प्रजात तदस्मासुद्द्रविणं धेहि चित्त्रम् । उपयाम गृहीतोसि बृहस्प्पतये त्वैषते योनिर्ब्बृहस्प्पतये त्वा ॥

पाद्यम्—त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव व्विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ! ॥

ॐ बृहस्प्पते व्वाजञ्जय बृहस्प्पतये व्वाचं व्वदत बृहस्प्पतिं व्वाजञ्जापयत । इन्द्र व्वाजञ्जयेन्द्राय व्वाचं व्वदतेन्द्रं व्वाजञ्जापयत ॥

अर्घ्यम्—आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ।

ॐ आकूत्यै प्प्रयुजेग्ग्नयें स्वाहा मेधायै मनसेग्ग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेग्ग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्ष्णंग्ग्नये स्वाहा। आपो देवीर्हता व्विश्श्वशम्भुवो द्द्यावापृथिवी : ऽउरो ऽअन्तरिक्ष। बृहस्प्पतये हृविषा व्विधेम स्वाहा ॥

आचमनीयम्—अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ॐ स प्प्रथमो बृहंस्प्पतिश्चिच्चकित्त्वाँस्तस्म्मा ऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा। तृम्पन्तु होत्त्रा मद्ध्वो याः स्विष्ट्टा याः सुप्प्रीताः सुहुता यत्स्वाहा याऽग्ग्नीत् ॥

स्नानीयम्—ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्क्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

ॐ देवस्याहॅं सवितुः सवे सत्त्यप्प्रसवसो बृहस्प्पतेर्व्वाजजितो व्वाजञ्जेषम्। व्वाजिनो व्वाज जितोद्ध्वनस्क्कभ्भ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठाङ्गच्छत ॥

पुनराचमनीयम्—न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
गङ्गा–सरस्वती–रेवा–पयोष्णी–नर्मदा जलैः।
स्नापितोऽसि मया देव ! तथा शान्ति कुरुष्व मे॥

ॐ अग्ग्नये त्त्वा मह्यं व्वरुणो ददातु सोमृतत्त्वमशीयायुर्द्दात्त्र ऽएधि मयो मह्यम्प्रतिग्ग्रहीत्त्रे रुद्द्राय त्त्वा मह्यं व्वरुणो ददातु सोमृतत्त्वमशीयप्प्राणो दात्त्र ऽएधि व्वयो मह्यम्प्रतिग्ग्रहीत्त्रे बृहस्प्पतये त्त्वा मह्यं व्वरुणो ददातु सोमृतत्त्वमशीय त्त्वग्ग्द्रात्त्र ऽएधि मयो मह्यम्प्रतिग्ग्रहीत्त्रे यमाय त्त्वा मह्यं व्वरुणो ददातु सोमृतत्त्वमशीय हयो दात्त्र ऽएधि व्वयो मह्यम्प्रतिग्ग्रहीत्त्रे ॥

पञ्चामृतम्—पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयो दधि घृतं मधु ।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ एषा वः सा सत्त्या संव्वागभूद्द्यया बृहस्प्पतिं व्वाजमजीजपताजीजपत बृहस्प्पतिं व्वाजं व्वनस्प्पतयो व्विमुच्च्यद्ध्वम् । एषा वः सा सत्त्या संव्वागभूद्द्ययेन्द्रं व्वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं व्वाजं व्वनस्प्पतयो व्विमुच्च्यद्ध्वम् ॥
पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

शुद्धोदकस्नानम्—यत्तेजसा जगद्व्याप्तं यतो जातमिदं जगत् ।
तस्मै ते जगदाधार स्नानार्थं तोयमर्पये ॥

ॐ सोमꣳ राजानमवसेग्ग्निमन्न्वारभामहे । आदित्त्यान्न्विष्ण्णुꣳ सूर्य्यम्ब्रह्माणञ्च बृहस्प्पतिꣳ स्वाहा ॥
शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

ततो गन्धाक्षतैः सम्पूज्य धारापात्रे अभिषेकार्थं गन्ध-पुष्प-सुगन्धद्रव्य-दुग्धादि निक्षिप्य ईश्वरोपरि पुरुषसूक्तेन महाभिषेकं कुर्यात् । ततः—

वस्त्रम्—शीतवातोष्णसन्त्राणं लज्जाया रक्षणं परम् ।
देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ॐ अर्य्यमणम्बृहस्प्पतिमिन्द्रन्दानाय चोदय ।
व्वाचं व्विष्ण्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारञ्च व्वाजिनꣳ स्वाहा ॥
वस्त्रं समर्पयामि ।

वस्त्रान्ते आचमनीयं जलम्—

ॐ प्र नो यच्छत्त्वर्य्यमा प्प्र पूषा प्प्र बृहस्प्पतिः ।
प्र वाग्ग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥

उपवस्त्रम्—सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ स्वस्ति न ऽइन्द्रो व्वृद्धश्श्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्श्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्प्पतिर्द्दधातु ॥

उपवस्त्रं समर्पयामि ।

उपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलम्—

ॐ अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्प्पते ऽअभिशस्तेरमुञ्चः । प्रत्यौहतामश्श्विना मृत्युमस्म्माद्देवानामग्ग्ने भिषजा शचीभिः ॥

यज्ञोपवीतम्—यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्प्रसवेश्श्विनोर्ब्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्य्यन्त्रिये दधामि बृहस्प्पतेष्ट्वा साम्म्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि ॥ यज्ञोपवीतान्ते जलं समर्पयामि ।

गन्धम्—नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे ।
यस्य वागमृतं हन्ति द्विषं संसारसंज्ञकम् ॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ त्वां गन्धर्वा ऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वाम्बृहस्पतिः ।
त्वामोषधे सोमो राजा व्विद्वान्न्यक्ष्मादमुच्च्यत ॥

(कनिष्ठामूलगताङ्गुष्ठयोगेन गन्धमुद्रां प्रदर्श्य अनामिकया) गन्धानुलेपनं समर्पयामि ।

अक्षतान्—अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ! ॥

ॐ अक्षन्नमी मदन्त ह्यव प्प्रिया ऽअधूषत । अस्तोषत स्वभानवो व्विप्प्रानविष्ठ्या मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥
अक्षतान् समर्पयामि ।

मालाम्—माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ! ।
मयाऽऽहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥
(तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन) पुष्पमालां समर्पयामि ।

ॐ ओषधीः प्प्रतिमोदद्ध्वं पुष्ष्पवतीः प्प्रसूवरीः ।
अश्वा ऽइव सजित्त्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥

पुष्पम्—पुष्पं मनोहरं रम्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या पुष्पमेतत्प्रगृह्यताम् ॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्श्च पत्क्न्यावहोरात्त्रे पाश्श्र्वे नक्षत्त्राणि रूपमश्श्विनौ व्व्यात्तम् । इष्ष्णन्निषाणामुम्म ऽइषाण सर्व्वलोकम्म ऽइषाण ॥

भूषणम्—विश्वाभरणभूताय विश्वशोभैकयोनये ।
मया विग्रहभूषार्थं भूषणानि समर्पये ॥

ॐ दृशानो रुक्क्म ऽउर्व्व्या व्व्यद्द्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो ऽअभवद्वयोभिर्यदेनन्द्द्यौरजनयत्सुरेताः ॥

तुलसीपत्राणि—तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥

ॐ यत्पुरुषं व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा ऽउच्च्येते ॥

१ ॐ केशवाय नमः । २ ॐ नारायणाय नमः । ३ ॐ गोविन्दाय नमः । ४ ॐ विष्णवे नमः । ५ ॐ मधुसूदनाय नमः । ६ ॐ त्रिविक्रमाय नमः । ७ ॐ वामनाय नमः । ८ ॐ श्रीधराय नमः । ९ ॐ हृषीकेशाय नमः । १० ॐ पद्मनाभाय नमः । ११ ॐ दामोदराय नमः । १२ ॐ सङ्कर्षणाय नमः । १३ ॐ वासुदेवाय नमः । १४ ॐ अनिरुद्धाय नमः । १५ ॐ पुरुषोत्तमाय नमः । १६ ॐ अधोक्षजाय नमः । १७ ॐ नरसिंहाय नमः ।

१८ ॐ अच्युताय नमः। १९ ॐ जनार्दनाय नमः। २० ॐ उपेन्द्राय नमः। २१ ॐ हरये नमः। २२ ॐ कृष्णाय नमः। २३ ॐ प्रणवाय नमः। २४ ॐ माधवाय नमः।

दूर्वा—दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मङ्गलप्रदान्।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण परमेश्वर ॥

ॐ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥

अबीरगुलालकद्रव्याणि—नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम्।
अबीरनामकं चूर्णं गन्धं चारु प्रगृह्यताम् ॥

ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्याया हेतिम्परिबाधमानः। हस्तग्घ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्द्वान्पुमान्पुमाꣳसम्परिपातु व्विश्वतः ॥

धूपम्—वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वभूतानां धूपो घ्राणाय तेऽर्प्यते ॥

ॐ व्वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्द्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदादित्त्या स्त्वा धूपयन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्श्वे त्वा देवा व्वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्ट्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु व्वरुणस्त्वा धूपयतु व्विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥

(तर्जनीमूलयोरङ्गुष्ठयोगेन धूपमुद्रां प्रदर्श्य) धूपमाघ्रापयामि।

दीपम्—सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ अग्निर्ज्ज्योतिर्ज्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्य्यो ज्ज्योतिज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्व्वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्य्यो

वर्च्चो ज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा । ज्ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा ॥

(मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन दीपमुद्रां प्रदर्श्य) दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ॥

नैवेद्यम्—(देवस्याग्रे चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा तन्मध्ये नैवेद्यपात्रं जलपात्रं च संस्थाप्य)—

नैवेद्यं स्वादुसंयुक्तं नानाभक्ष्यसमन्वितम् ।
निवेदयामि भक्त्येदं जुषाण परमेश्वर ॥

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्म्मिणः । प्र प्प्रदातारन्तारिष ऽऊर्जन्नो धेहि द्द्विपदे चतुष्प्पदे ॥

नैवेद्यं निवेदयामि । (अनामामूलयोरङ्गुष्ठयोगेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य ग्रासमुद्राः प्रदर्शयेत्— अङ्गुष्ठप्रदेशिनीमध्यमाभिः)—ॐ प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥ (अङ्गुष्ठमध्यमानामिकाभिः)—ॐ अपानाय स्वाहा ॥ २ ॥ (अङ्गुष्ठानामिकाकनिष्ठाभिः)—ॐ व्यानाय स्वाहा ॥ ३ ॥ (कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैः)—ॐ समानाय स्वाहा ॥ ४ ॥ (साङ्गुष्ठाभिः सर्वाभिः)—ॐ उदानाय स्वाहा । (इति प्रदर्श्य) मध्ये पानीयं समर्पयामि । उत्तरापोशनं समर्पयामि ।

पानार्थं सलिलं देव ! कर्पूरादिसुवासितम् ।
सर्वतृप्तिकरं स्वच्छमर्पयामि नमोऽस्तु ते ॥

ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआश्विनाः श्येताः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्द्राय पशुपतये कर्ण्णाया मा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्न्याः ॥

हस्तप्रक्षालनार्थे मुखप्रक्षालनार्थे च जलं समर्पयामि ।

करोद्वर्तनार्थे चन्दनम्—चन्दनं मलयोद्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम् ।
करोद्वर्तनकं देव ! गृहाण परमेश्वर !

ॐ अꣳशुना ते ऽअꣳशुः पृच्च्यताम्परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्च्युतः ॥

ऋतुफलानि—इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

ॐ याः फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्ष्पा याश्च्च पुष्ष्पिणीः। बृहस्प्पति प्प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳ हसः ॥

सुगन्धितद्रव्यम्—श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ त्र्यम्बकं य्यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं य्यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥

छत्रम्—ॐ क्रव्व्यादमग्निं प्प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्प्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्व्यं व्वहतु प्प्रजानन् ॥

चामरम्—ॐ इमा रुद्द्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्द्वीराय प्प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्प्पदे व्विश्श्वंम्पुष्टङ्ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम् ॥

व्यजनम्—ॐ व्वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥

चरणपादुकाम्—ॐ त्रीणि पदा व्विचक्क्रमे व्विष्णुर्ग्गोपा ऽअदाब्भ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन् ॥

आदर्शम्—ॐ रूपेण वो रूपमब्भ्यागान्तुथो वो व्विश्श्ववेदा व्विभजतु। ऋतस्य पथा प्प्रेत चन्द्र दक्षिणा व्विस्वः पश्यव्व्यन्तरिक्षं य्यतस्व सदस्यैः ॥

ताम्बूलम्—पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

ॐ या ऽओषधीः पूर्व्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगम्पुरा । मनैनुबब्भ्रूणामहꣳ शतन्धामानि सप्त च ॥

दक्षिणाः—हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

ॐ हिरण्यगर्ब्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ॥ स दाधार पृथिवीन्द्यामुतेमाङ्कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥

कर्पूरार्त्तिकम्—कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरञ्च प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥

ॐ आरात्त्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्प्रायि धामभिः । दिवः सदाꣳसि बृहती व्वितिष्ठस ऽआत्त्वेषं व्वर्त्तते तमः ॥

मन्त्रपुष्पाञ्जलिम्—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्प्रथमान्न्यासन् ।
तेह नाकम्महिमानः सचन्त यत्त्र पूर्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य सायिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु ॥
कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ।

ॐ स्वस्ति । साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमस्सर्वायुष आन्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति । (तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो) मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे । आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासदः ॥ पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

व्विश्वतश्च्चक्षुरुत व्विश्श्वतो मुखो व्विश्श्वतो बाहुरुत व्विश्श्वतस्प्पात् । सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्त्रैर्द्द्यावाभूमी जनयन्देव ऽएकः ॥

प्रार्थना—शंकरं शंकराचार्यं स्वामिश्रीशंकराश्रमम् ।
सद्गुरुं सद्गुणागारं वन्दे सद्गुणलब्धये ॥ १ ॥
निःश्रेयसाभ्युदयहेतव एव नित्यं यस्येन्द्रियायतनमस्ति विचेष्टमानम् ।
योगीश्वरं यतिमणिंखलुसन्दधानंश्रीशंकराश्रमगुरुं शिरसा नमामि॥२॥
जयतु धर्मसनातनमंडनः जयतु पापशिलोच्चयखण्डनः ।
मनुजमानसमोदविधायकः जयतु वै यतिमण्डलनायकः ॥३॥
भावाधीनः खल्वयं मे प्रयासः शास्त्रस्त्यक्तो मेधया वञ्चितोऽस्मि ।
आचार्याणां पादपद्मानुरागी श्रद्धामुग्धो नोपहास्यः सुधीभिः ॥४॥

श्रीगुरुदेव-स्तोत्रम्

श्रीगुरुदेवं नौमि तमेवं गतमदमानं रहितविकारम् ।
नित्यं ज्ञेयं नित्यं ध्येयं नित्यं गेयं ज्ञानाधारम् ॥ १ ॥
श्रीगुरुदेवं०

ब्रह्मनिधानं शीलविधानं धृतगुणमानं परमोदारम् ।
निग्रहनिष्ठं बुद्धिवरिष्ठं भावजविष्ठं सहितविचारम् ॥ २ ॥
श्रीगुरुदेवं०

अशरणशरणं संशयहरणं लोकाभरणं जगदाधारम् ।
मङ्गलकरणं मङ्गलचरणं मङ्गलभरणं मङ्गलसारम् ॥ ३ ॥
श्रीगुरुदेवं०

अघदलकदनं कुसुमितवदनं शोभासदनं निरहङ्कारम् ।
ज्ञानासक्तं ध्यानारक्तं सर्वविरक्तं शुद्धाचारम् ॥ ४ ॥
श्रीगुरुदेवं०

अतिमृदुहासं वाणिविलासं दिनमणिभासं बहुहितकारम् ।
विनयावनतो परमविनीतो नौमि सदाऽहं गुरुपदचारम् ॥ ५ ॥
श्रीगुरुदेवं०

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

अपार-संसार-समुद्रमध्ये निमज्जतो मे शरणं किमस्ति ?
गुरो ! कृपालो ! कृपया वदैतत् विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका ॥

क्षमा-प्रार्थना—मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण-पदे-पदे ॥
ॐ त्रीणि पदा व्विचक्क्रमे व्विष्णुर्गोपा ऽअदाभ्यः । अतो धर्म्माणि धारयन् ॥

प्रणामः—ॐ नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

ॐ इदं व्विष्णुर्विचक्क्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाᳪसुरे स्वाहा ॥

स्तुतिः—ॐ गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
त्वमेव शरणं देव नान्यथा शरणं मम ।
अतः कारुण्यभावेन रक्ष मां शरणागतम् ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम् ।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥
न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
विष्णवे नमः । विष्णवे नमः । विष्णवे नमः ॥

विसर्जनम्—यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् ।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

आशीर्वादः—श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥
मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥

अथ ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम् ।

कृतस्य गुरुमण्डलार्चनहोमकर्मणोऽङ्गतया विहितमिदं पूर्णपात्रं सदक्षिणं ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥ ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी त्वा प्रतिगृह्णातु ॥ अग्नेः पश्चात् प्रणीताविमोकः ॥ ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥ उपयमनकुशैर्मार्जयेत् । उपयमनकुशानामग्नौ प्रक्षेपः । ब्रह्मग्रन्थिविमोकः ॥

तन्मन्त्रा:—ॐ पय: पृथिव्व्याम्पय ऽओषधीषु पयो दिव्व्यन्तरिक्षे पयोधा: । पयस्वती: प्प्रदिश: सन्तु मह्यम् ॥ १ ॥ ॐ पञ्च नद्य: सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतस: । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ २ ॥ ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्न्यसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद ॥ ३ ॥ ॐ पुनन्तु मा देवजना: पुनन्तु मनसा धिय: । पुनन्तु व्विश्श्वा भूतानि जातवेद: पुनीहि मा ॥ ४ ॥ ॐ देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेश्श्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णो हस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचोयन्त्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्प्पतेष्ट्टवा साम्म्राज्येनाभिषिञ्चाम्म्यसौ ॥ ५ ॥ देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेश्श्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्ष्णो हस्ताब्भ्याम् । सरस्वत्यै व्वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्ने: साम्राज्ज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ६ ॥ देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेश्श्विनोर्ब्बाहुब्भ्याम्पूष्णो हस्ताब्भ्याम् । अश्श्विनोर्भैषज्ज्येन तेजसे ब्ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन व्वीर्यायान्नाद्यायाभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्श्रियै यशसेभिषिञ्चामि ॥ ७ ॥ ॐ विश्श्वानि देव सवितर्द्दुरितानि परासुव । यद्भद्द्रन्तन्न ऽआसुव ॥ ८ ॥ धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्ब्रह्मा देवो बृहस्प्पति: । सचेतसो व्विश्श्वेदेवा यज्ञम्प्रावन्तु न: शुभे ॥ ९ ॥ त्वं य्यविष्ठ्ठ दाशुषो नॄँ: पाहि श्शृणुधी गिर: । रक्षा तोकमुतत्त्मना ॥ १० ॥ अन्नपतेन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्ष्मिण: । प्रप्प्रदातारन्तारिष ऽऊर्ज्जन्नो धेहि द्द्विपदे चतुष्ष्पदे ॥ ११ ॥ द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्ति: पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्ति: । व्वनस्प्पतय: शान्तिर्व्विश्श्वे देवा: शान्तिर्ब्ब्रह्म शान्ति: सर्व्वꣳ शान्ति: शान्तिरेव शान्ति: सा मा शान्तिरेधि ॥ १२ ॥ यतो यत: समीहसे ततो नो ऽअभय-

ङ्कुरु । शन्नः कुरु प्प्रजाभ्यो भयन्नः पशुब्भ्यः ॥ १३ ॥ अमृताभिषेकोऽस्तु ॥

* अथाऽऽवाहितदेवतानां विसर्जनम् *

ततो देवताग्निं सातुनयं विसृज्य ॥ ॐ उत्तिष्ठ ब्ब्रह्मणस्प्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव ऽइन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामार्थसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ आवाहितदेवताः स्वस्थाने गच्छत ॥ १ ॥ ॐ यज्ञ यज्ञङ्गच्छ यज्ञपतिङ्गच्छ स्वां योनिङ्गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञो यज्ञपते सह सूक्क्तवाकः सर्व्ववीरस्तञ्जुषस्व स्वाहा ॥ गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ ! स्वस्थाने परमेश्वर ! । यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन ! ॥ यज्ञनारायण स्वस्थाने गच्छ ॥ २ ॥ ॐ चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै यज्ञात्मने नमः ॥ मया यत्कृतं यथाकालं यथादेशं यथाशक्ति गुरुमण्डलार्चनाख्यं कर्म तेन श्रीपापापहा महाविष्णुः प्रीयताम् ॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ सकुशजलं भूमौ क्षिपेत् करौ सम्पुटीकृत्य ॥ मया यत्कृतं गुरुमण्डलार्चनाख्यं कर्म तत् कालहीनं श्रद्धाहीनं भवतां ब्राह्मणानां वचनात् श्रीसूर्याद्यावाहितदेवताप्रसादात् सर्वविधेः परिपूर्णमस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ अस्तु परिपूर्णम् इति ब्राह्मणाः वदेयुः ॥

*** क्षमा-प्रार्थना *** जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं शान्तिकर्मणि । सर्वं भवतु मेऽच्छिद्रं ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥ प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात् पवमानं महीयते ॥ धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं

शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥ मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः । शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥

इति श्रीकाशीस्थ-सुप्रसिद्ध-श्रौतस्मार्तकाण्डि-पण्डितप्रवरभीमसेन-चतुर्वेदात्मजेन श्रीसीतारामचतुर्वेदेन सम्पादितेयं श्रीगुरुमण्डलार्चनपद्धतिः सम्पूर्णा ॥

॥ षोडशमातृकाचक्रम् ॥

पूर्वे

आत्मनः कुलदेवताः १७	लोक मातरः १३	देवसेना ९	मेधा ५
तुष्टिः १६	मातरः १२	जया ८	शची ४
पुष्टिः १५	स्वाहा ११	विजया ७	पद्मा ३
धृतिः १४	स्वधा १०	सावित्री ६	गौरी २ गणेश १

॥ सप्तघृतमातृकाचक्रम् ॥

॥ श्रीः ॥

०
००
०००
००००
०००००
००००००
०००००००

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा स्वाहा प्रज्ञा सरस्वती ।
माङ्गल्येषु प्रपूज्यन्ते सप्तैता घृतमातरः ॥१॥

नवग्रह-चक्रम्

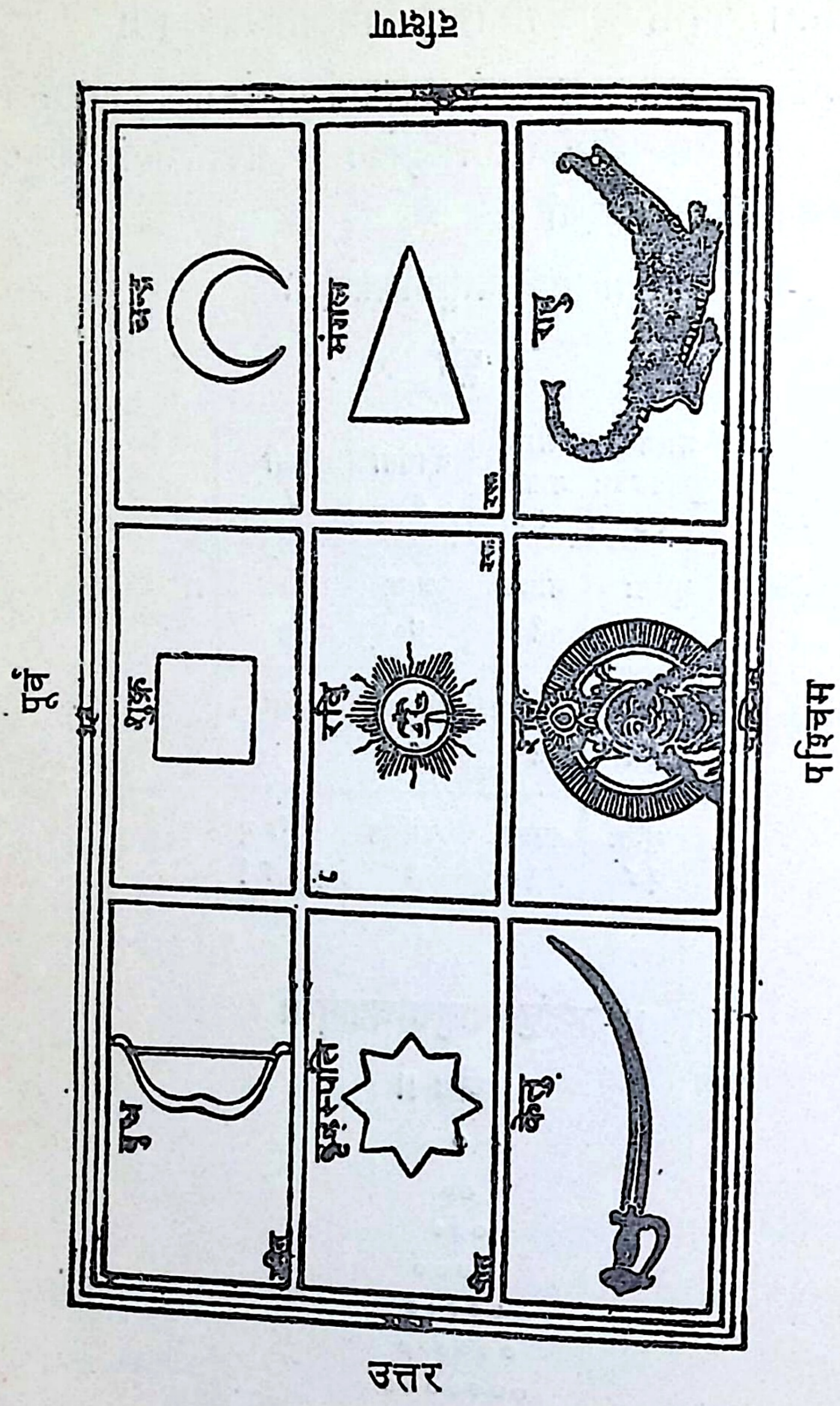
दक्षिण
पूर्व
पश्चिम
उत्तर
बुध
पीत
शुक्र
चन्द्र
बृहस्पति
पीत
रवि
रक्त
मंगल
रक्त
केतु
शनि
राहु

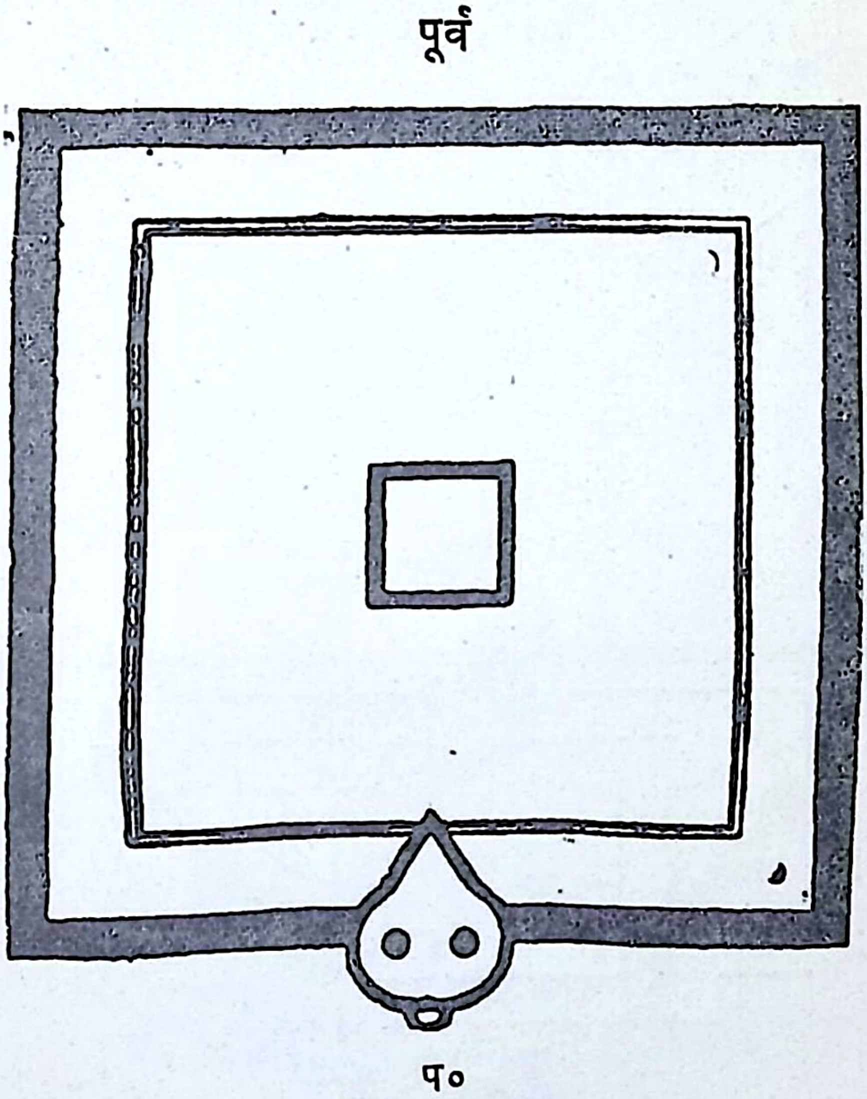

कुण्डस्वरूपम्

योनि १२ अङ्गुल ऊँची १२ अङ्गुल लम्बी ८ अङ्गुल चौड़ी रक्तवर्ण

सफेद ऊपरकी सीढ़ी	४ अंगुल चौड़ी व ४ अंगुल ऊँची	१
लाल उसके नीचेकी	३ अंगुल चौड़ी व ३ अंगुल ऊँची	२
काली उसके नीचेकी	२ अंगुल चौड़ी व २ अंगुल ऊँची	३

सर्वतोभद्र-चक्रम्

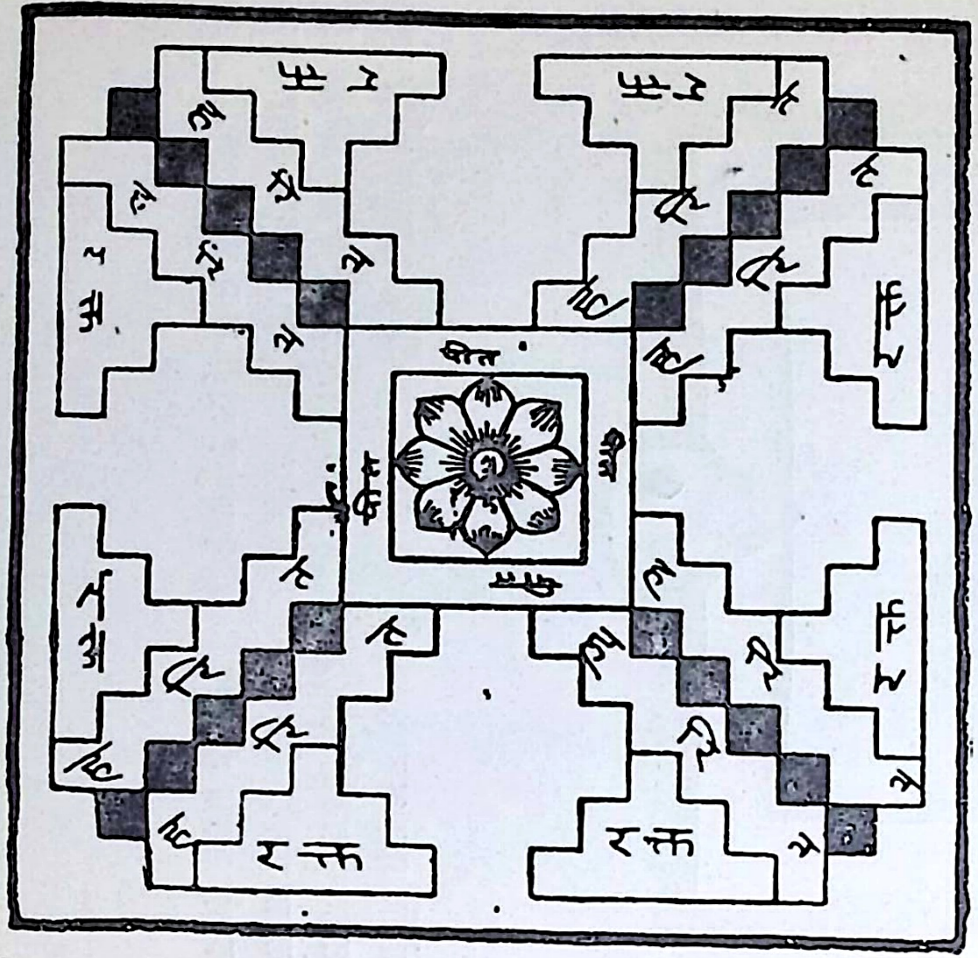

चतुःषष्टियोगिनी-चक्रम्

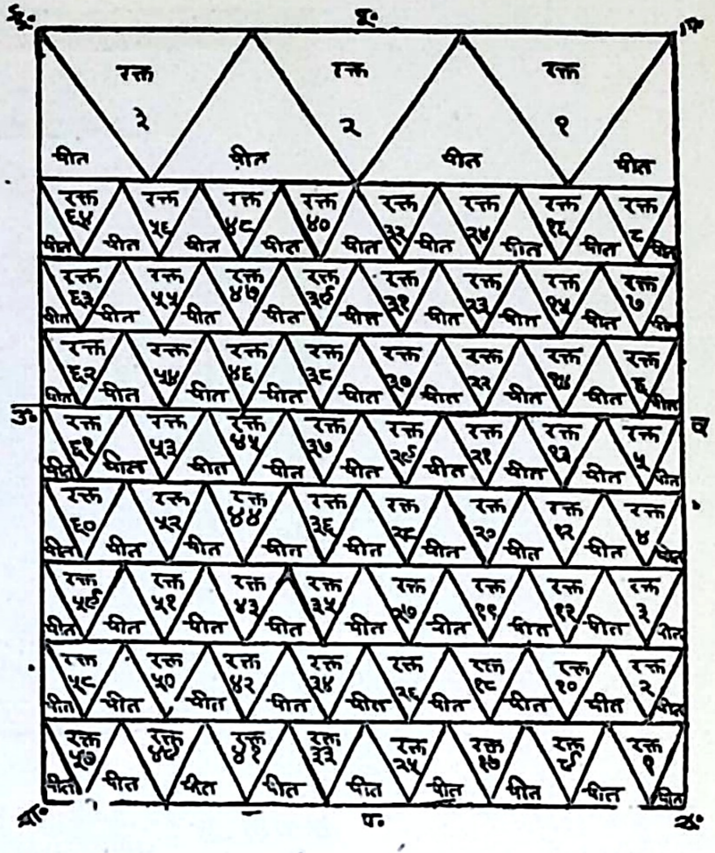
ई.
पू.
आ.
उ.
द.
वा.
प.
नै.
रक्त ३
रक्त २
रक्त १
पीत
रक्त ६४
रक्त ५६
रक्त ४८
रक्त ४०
रक्त ३२
रक्त २४
रक्त १६
रक्त ८
रक्त ६३
रक्त ५५
रक्त ४७
रक्त ३९
रक्त ३१
रक्त २३
रक्त १५
रक्त ७
रक्त ६२
रक्त ५४
रक्त ४६
रक्त ३८
रक्त ३०
रक्त २२
रक्त १४
रक्त ६
रक्त ६१
रक्त ५३
रक्त ४५
रक्त ३७
रक्त २९
रक्त २१
रक्त १३
रक्त ५
रक्त ६०
रक्त ५२
रक्त ४४
रक्त ३६
रक्त २८
रक्त २०
रक्त १२
रक्त ४
रक्त ५९
रक्त ५१
रक्त ४३
रक्त ३५
रक्त २७
रक्त १९
रक्त ११
रक्त ३
रक्त ५८
रक्त ५०
रक्त ४२
रक्त ३४
रक्त २६
रक्त १८
रक्त १०
रक्त २
रक्त ५७
रक्त ४९
रक्त ४१
रक्त ३३
रक्त २५
रक्त १७
रक्त ९
रक्त १

क्षेत्रपाल–चक्रम्

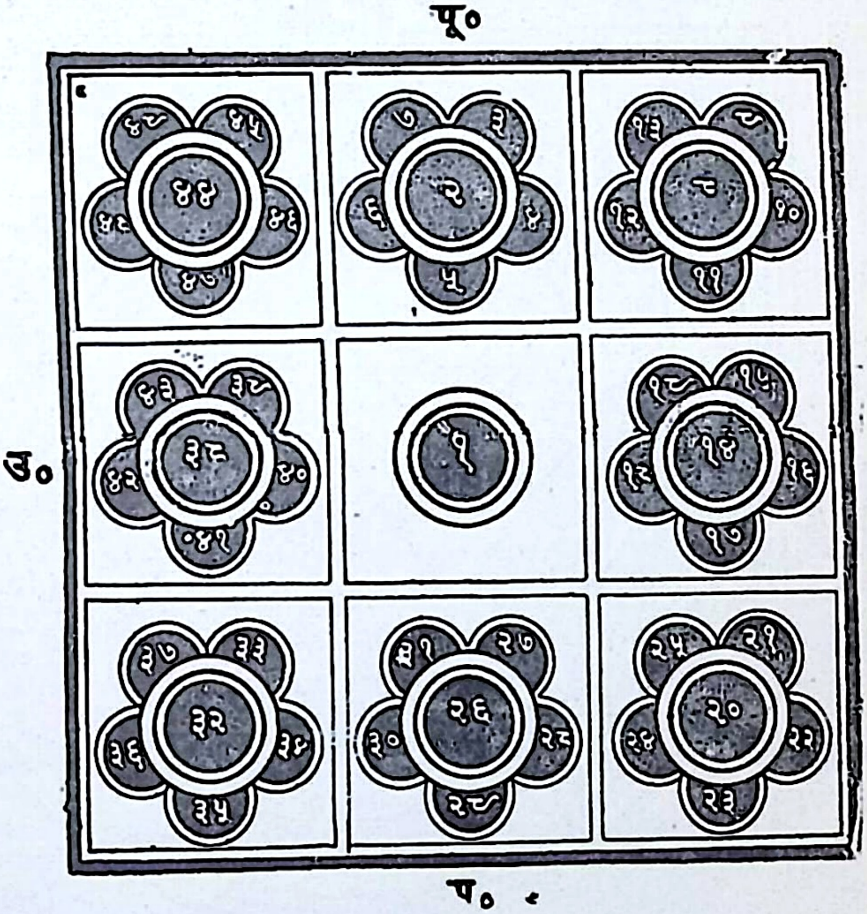
पू०
उ०
प०

श्री–यन्त्रम्

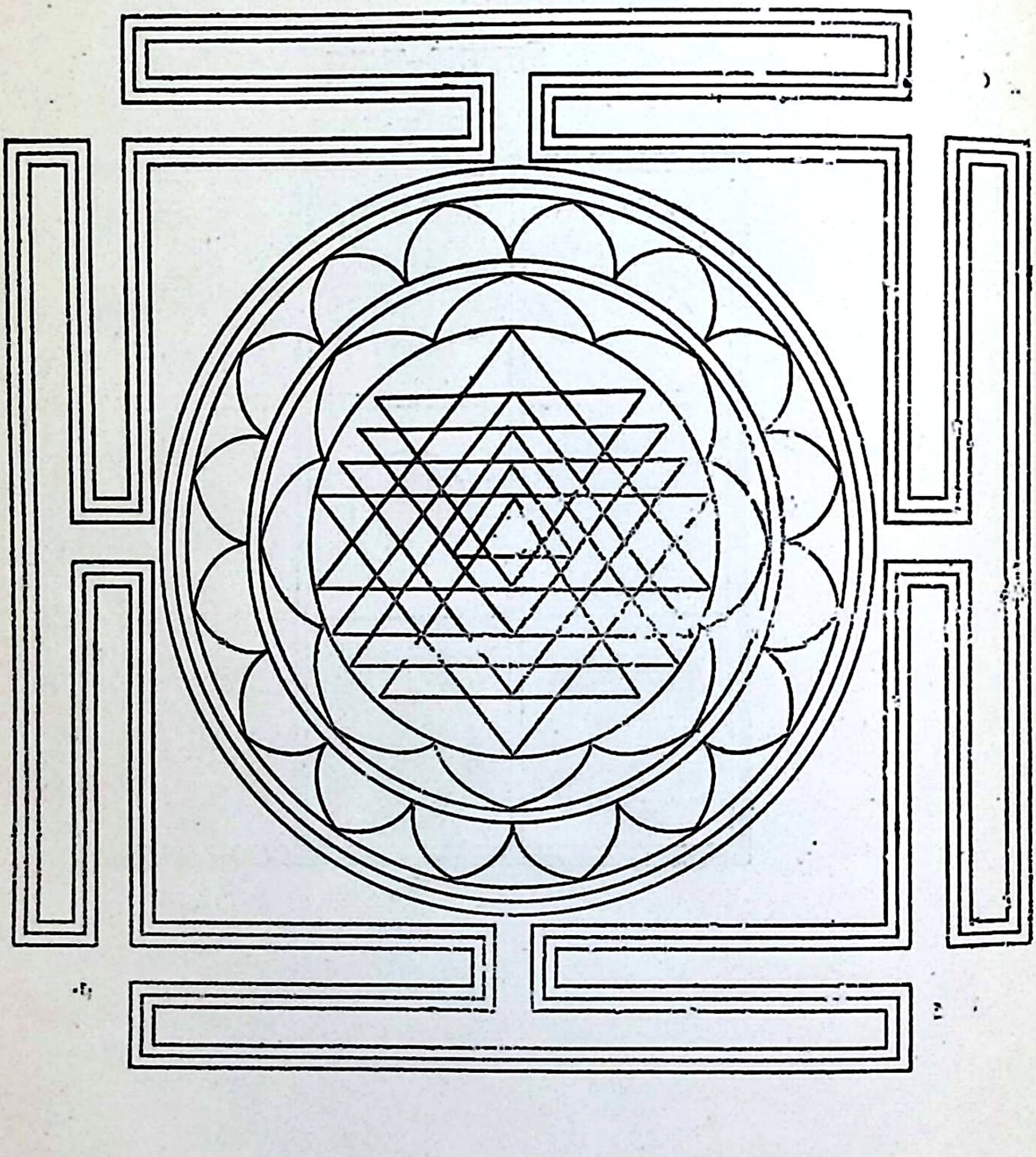

आवरण–यन्त्रम्

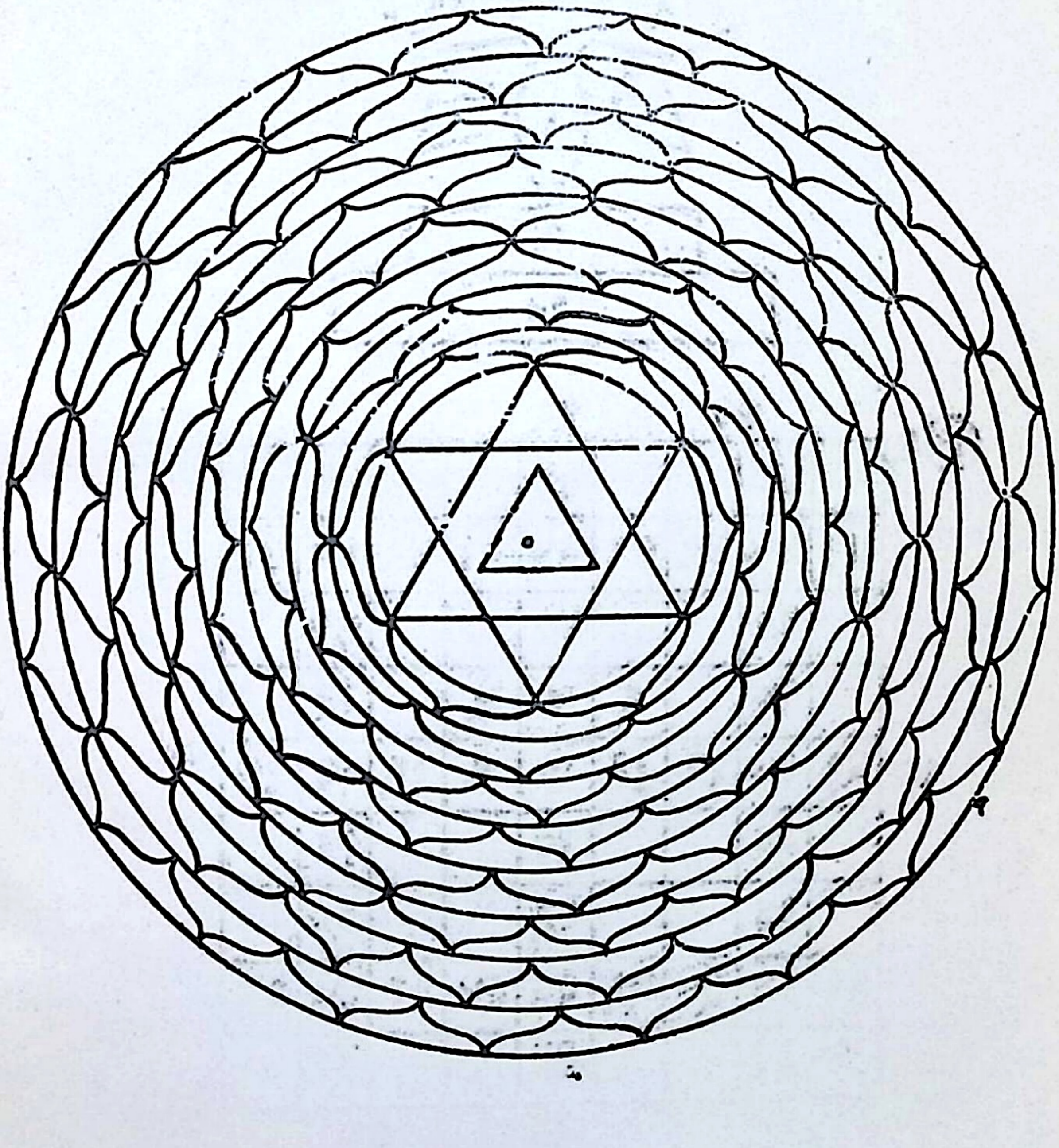

गुरुमंडल-यंत्रम्

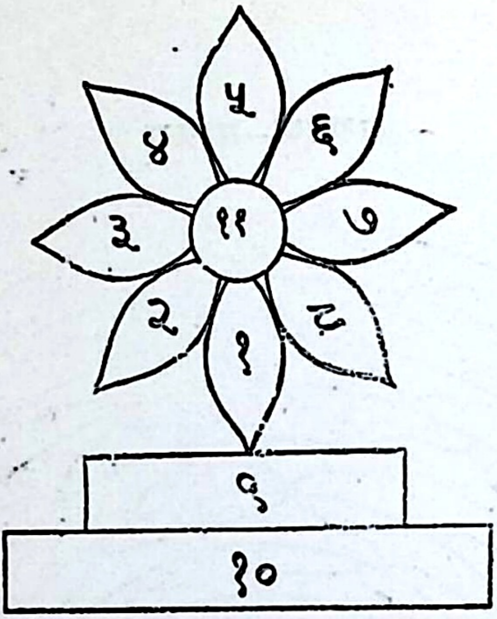

६० ५२

ⓢ५९ ४ · १ ⓢ५३

	४८			३८			४३	
५१	४७	४९	४१	३७	३९	४६	४२	४४
	५०			४०			४५	
	१८		६	८	५		१३	
२१	१७	१९	११	७	९	१६	१२	१४
	२०			१०			१५	
	३३			२३			२८	
३६	३२	३४	२६	२२	२४	३१	२७	२९
	३५			२५			३०	

५८ · ५४

(57) ३ · २ (55)

५६ ६१

॥ गुरु-पूजनसे पूर्व-कर्मकी विधि ॥

आषाढ शुक्ला पूर्णिमाको शुभ मुहूर्त्तमें वेदीके बोच कुंकुमसे षट्कोण या स्वस्तिक बनाकर उसपर केले या पलाशका पत्ता बिछा दे और उसके पश्चिममें गुरुजी (श्रीस्वामीजी महाराज)-को पूर्वाभिमुख बैठाकर ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ पुंडरीकाक्षः पुनातु ३ ॥ कहकर उनपर जल छिड़के और नाई-द्वारा उनका क्षौर करावे। क्षौर हो चुकनेपर उनके मुण्डित शिरपर ॐ बनाकर—द्यौः शान्तिरन्तरिक्षठं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वठं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ यह मन्त्र पढ़कर उनके सिरपर गंगाजल छिड़के। इसके पश्चात् वेदीके ईशान कोणमें पूर्वाभिमुख बैठाकर गुरुजीको (श्रीस्वामीजीको) स्नान करावे और नवीन कौपीन, अंगवस्त्र, उपरना और स्कंधवस्त्र पहनावे। इसके पश्चात् उन्हें पूजनके मंच-पर रक्खे हुए पूजित पीठपर बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करे।

—:०:—

वेदीक्रम

आग्नेय्यां मातृकावेदी, वास्तुवेदी च नैर्ऋते ।
वायव्यां क्षेत्रपालस्य ईशान्यां तु नवग्रहाः ॥

[आग्नेय (पूर्व-दक्षिण कोनेमें) मातृका वेदी, नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम कोनेमें) वास्तुवेदी, वायव्य (पश्चिम-उत्तर कोनेमें) क्षेत्रपाल और ईशान (उत्तर-पूर्व कोनेमें) नवग्रहकी स्थापना करनी चाहिए।]

[कुण्डरत्नावली-कुण्डकल्पद्रुमयोष्टीकायाम्]

पूजन-सामग्री

दीपक
जलपात्र,आचमनी
गन्ध (चन्दन),कुंकुम (रोली)
मंगल-सूत्र (नारा, कलावा)
पुष्प, माला, धूप
अर्घ्य (गंध, जल, पुष्प, अक्षत)
श्वेत तिल (शालग्रामके लिये)
अक्षत,नैवेद्य
पान, सुपारी, इलायची, लौंग, कपूर
दूध, दही, घी, मधु, शक्कर
पंचामृत
गंगाजल
वस्त्र (धोती दुपट्टा)
उपवस्त्र (अँगोछा)
यज्ञोपवीत
दूर्वा (अग्रभाग केवल)
शमीपत्र (जाँटकी पत्ती)
सिन्दूर, हल्दी, काजल,अबीर-गुलाल
ऋतुफल
शंकु (कीलें) ४
पायस (खीर) बलिके लिये
कलश (७),नारियल (६),बिल्व (१)

बिल्व-पत्र (उलटकर चढ़ाना चाहिए)
सप्तधान्य(तिल जौ,उड़द चावल,गेहूँ,चना,मूँग)
सर्वौषधि
पंच-पल्लव (आम, वट, पीपल, गूलर, पलाश)
सप्तमृत्तिका (घुड़साल, हथसार, बाँबी, नदी, राजद्वार, गोशाला और चौराहेकी या केवल गोशालाकी मिट्टी)
सुपारी २५१ (बिना कटी)
पंचरत्न (मोती, मूँगा, सोना, चाँदी, ताँबा)
वस्त्र (वरुणके लिये श्वेत, देवीके लिये लाल।
पूर्ण पात्र (७) पीली सरसों, कुशा (दो प्रादेश, बालिश्त लंबी), पवित्री (दो कुश-पत्रोंकी पवित्री दाहने और तीन कुशपत्रोंकी पवित्री बाएँ हाथकी अनामिकाकी जड़में पहननेके लिये), तुलसीदल, शंख, घंटा
दधि-उड़द (बलिके लिये)
आटेके तेलके दीपक ५
मधुपर्क [घी, मधु (अधिक), दधि, जल (कम), शर्करा]
सुगन्धित तेल इत्र
शीशा
कंघा,चँवर,चन्दन,फलमाला
हवन-सामग्री
प्रोक्षणी प्रणीता, स्रुक् (स्रुवा) तथा स्रुची, स्फ्यः (वज्र)
ब्राह्मणोंके वरणके लिये धोती, अँगोछा, लोटा, आसन

परिशिष्ट

श्री १००८ स्वामी शंकराश्रमजी महाराजके पूर्वज देवरिया जनपदके करपरसिया ग्रामके निवासी सरयूपारी ब्राह्मण नागचौरी पाण्डेय थे और इसीलिये उनके परिवारवाले नागचौरी परसिया कहलाते हैं। परसियासे चलकर यह परिवार भिश्की, अतरौरा, गुलालपुर होता हुआ श्रीपट्टी आ बसा। प्राप्त वंशतालिकाके अनुसार श्रीमनोहरलालके पुत्र श्रीजोखूराम, उनके पुत्र श्रीअयोध्याप्रसाद और उनके पुत्र श्रीठाकुरदयालके श्रीमती हरवंशीसे दो पुत्र हुए। प्रथम श्रीरामस्वरूपजी (स्वामीजी) थे जिनकी पत्नी मकतूलादेवी थीं और द्वितीय पुत्र श्रीश्यामाचरण थे जिनकी पत्नीका नाम कलादेवी था। श्रीस्वामीजी अपने पुत्र भगवतीप्रसादके जन्मके पश्चात् विरक्त होकर चले गए।

विरक्त होनेके पश्चात् देहरादूनके पास चन्द्रमणि मठमें संन्यास ले चुकनेपर स्वामीजी दोराहेके नत्तां और सिब्ली गांवोंमें रहकर जब लुधियाने आए तब पहले कुछ दिन बूढ़ा नालेके उस पार चन्दूलालके बगीचेमें रहे, जहांसे पहले वे शेरशाह सूरीकी बनवाई हुई छतरीमें रहने लगे, उसके पश्चात् लाला मुन्नीलालजी ढंढा उन्हें सन् १९१४में ढंढोंके बागमें ले आए जहाँ वे सन्१९६२ तक रहे। पहले वे इस बगीचेके ईशान कोणकी एक छोटी-सी कोठरीमें रहते थे और वहीं उनका भोजन बनता था। उसके पश्चात् उनके लिये अलग कुटिया बनवा दी गई।

ढंढोंके बागके स्वामी निम्नांकित सात ढंढा—बन्धु थे— सर्वश्री मुन्नीलाल, रामलाल, प्यारेलाल, हरबंशलाल, जसवंतराय,

व्रतपाल और हंसराज। अब इस बागका नाम तपोवन हो गया है जिसका प्रबन्ध ढंढा चैरिटेबिल ट्रस्ट करता है जिसके निम्नांकित दस सदस्य हैं — श्री देवप्रकाश (अध्यक्ष), जयदेव, चमनलाल, दीपक, अजय, मंगतराय, राममूर्ति, बलराज, भीमसेन ढंढा तथा वासुदेव कपूर (मंत्री)।

इस तपोवनमें शिव–मन्दिर भी है जिसमें अनेक स्त्री-पुरुष नित्य पूजन और दंडी स्वामीजी की मूर्त्तिका दर्शन करने आते रहते हैं।

स्वामीजी महाराज लुधियानेमें कब आए, इस सम्बन्धमें कुछ १९०४ में, कुछ १९१४ में और कुछ सन् १९१८ में उनका आगमन बताते हैं। किन्तु गणनाके अनुसार वे १९०६ में ही लुधियाने आ गए थे।

* * *

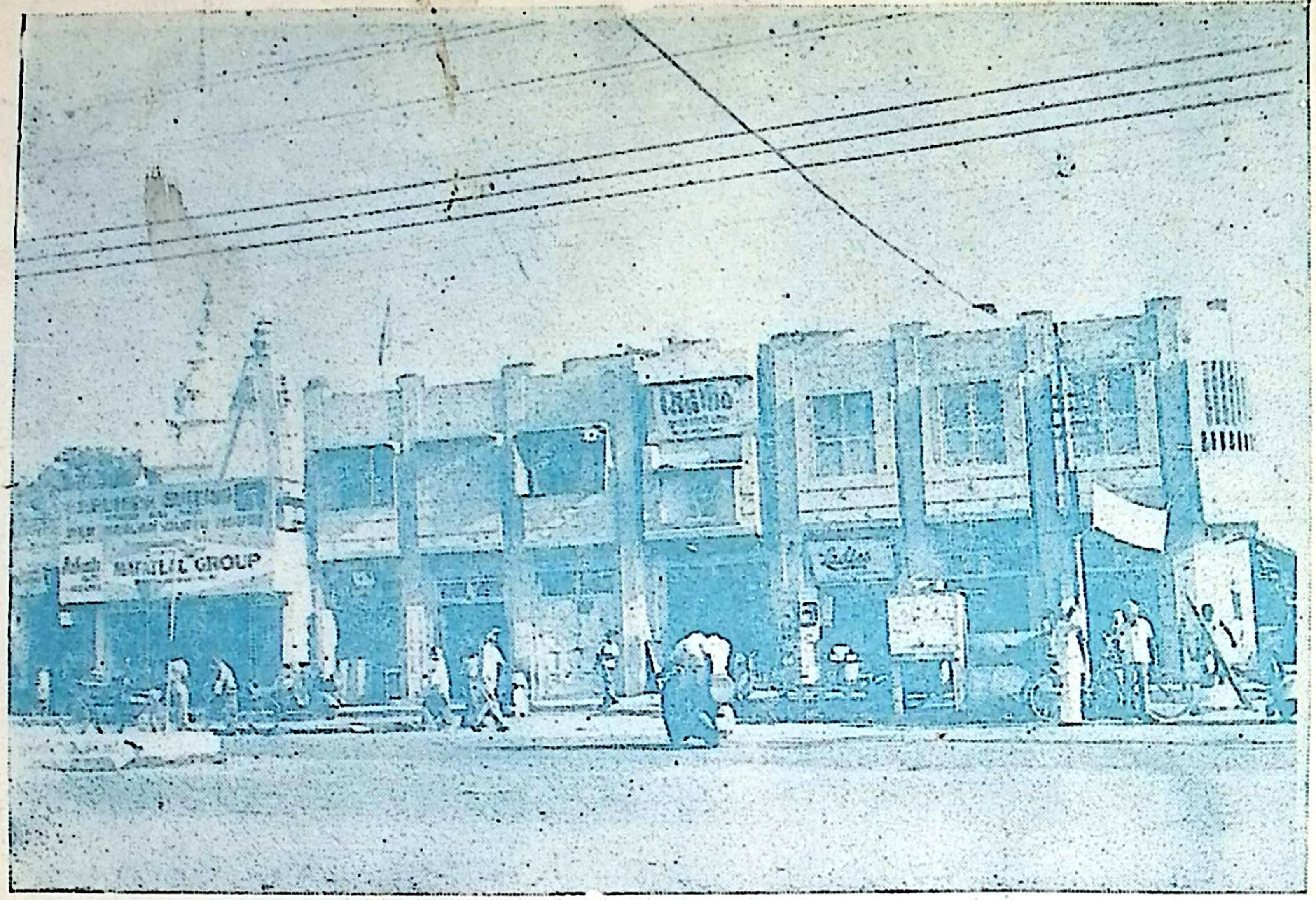
MAHALIL GROUP

सिद्ध-पीठ-स्थानका मुख्य द्वार